भूमिका

मैं श्री शिवकुमार शर्मा और श्री रमेशचन्द्र शर्मा की लिखी हुई "बुनियादी शिक्षा शिक्षण पद्धति" को सरसरी तौर से पढ़ गया हूँ। वह बुनियादी शिक्षा स्कूल के अनुभवी हेड-मास्टर हैं और उन्होंने इस विषय का अध्ययन अपने अनुभवों और प्रयोगों के आधार पर किया है।

बुनियादी शिक्षा को प्रारम्भिक स्तर पर शिक्षा का राष्ट्रीय आदर्श मान लिया गया है। फिर भी यह कहना गलत न होगा कि बुनियादी शिक्षा के माने क्या हैं इसके बारे में बहुत गलतफहमी है। मुझे लगता है इस गलतफहमी की जिम्मेदारी बुनियादी शिक्षा के विरोधियों और हिमायतियों दोनों पर बराबर-बराबर है। कुछ लोग तो समझते हैं कि यह एक तरह का मन्त्र है और कई बार इसका जाप कर लेने भर से शिक्षा की सारी समस्यायें हल हो जायेंगी। और दूसरों के लिये यह शब्द ही अभिशाप बन गया है। उन्हें बुनियादी शिक्षा में कोई अच्छाई ही नजर नहीं आती और उसे समझने की कोशिश किये बिना ही वे उसकी निन्दा करते हैं। यह गड़बड़ी इसलिये और भी बढ़ गई है कि लोग इस शब्द का प्रयोग अलग-अलग अर्थों में करते हैं।

ऐसी हालत में यह जरूरी है कि ज्यादा से ज्यादा अनुभवी अध्यापक अधिक से अधिक दृष्टिकोण से बुनियादी शिक्षा के विषय में व्यापक अध्ययन करें। शिक्षा के क्षेत्र में किसी को जड़ एकरूपता की आशा नहीं करनी चाहिये। यह एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें अध्यापक, छात्र को वाणी और कर्म से प्रभावित करता है। इसलिये, जो भी शिक्षक कहलाने का हक रखता हो उसके व्यक्तित्व का इसमें कुछ न कुछ योग अवश्य रहेगा। छात्र अध्यापक से वही ग्रहण करेंगे जिसे समझने की उनमें क्षमता होगी। इसलिये शिक्षा की किसी भी जीवन्त प्रणाली में नये-नये प्रयोगों और नये तत्वों के समावेश की गुंजाइश होनी चाहिये।

नये प्रयोगों और नये तत्वों के समावेश के लिये अवसर होना चाहिये यह ठीक है, फिर भी किसी हद तक राष्ट्रीय शिक्षा पद्धति में प्रयोजन और सिद्धान्त की अभिनिहित एकता का होना जरूरी है। बुनियादी शिक्षा में यह एकता कार्य-कलाप और सह-सम्बन्ध के सिद्धान्तों में मिलती है। कार्य-कलाप और सह-सम्बन्ध को उचित सामाजिक परिपार्श्व में रख कर समझा जाना चाहिये। कार्य-कलाप को किसी शिल्प विशेष के साथ एक करके देखना भयंकर भूल होगी। इस तरह सह-सम्बन्ध को भी समझदारी से ग्रहण करना चाहिये। कताई या बागवानी के द्वारा एलजबरा या

थर्मोडायनामिक्स पढ़ाये जा सकते हैं—इस तरह के बेहूदा दावे करना, बुनियादी शिक्षा को उन लोगों के लिये, हास्यास्पद बना देना है जिन्हें इस तरह के विषयों की कुछ समझ है।

श्री शिवकुमार शर्मा और रमेशचन्द्र शर्मा ने इस क्षेत्र में अपने निजी अनुभव के बल पर यह पुस्तिका लिखने का प्रयत्न किया है। कोई उनके निष्कर्षों से सहमत हो या न हो, इसका कोई खास महत्व नहीं। महत्व तो इस बात का है कि यह उनके अपने अनुभवों का विवरण है। उनकी सफलताओं और विफलताओं से बहुत कुछ सीखा जा सकता है और सीखा जाना [illegible]

नई दिल्ली : (हुमायुन कबिर)

२० नवम्बर १९५३

प्रस्तावना

बुनियादी तालीम को सिद्धान्ततः राष्ट्रीय शिक्षा पद्धति के रूप में स्वीकार कर लिया गया है। इस सिद्धान्त को क्रियान्वित करने का कार्य सारे भारत में तेजी के साथ चल रहा है। रूढ़िवादी शालाओं को बुनियादी शालाओं में बदला जा रहा है। पुराने अध्यापकों को बुनियादी शाला के अध्यापक बनाया जा रहा है। इस जरूरत को पूरा करने के लिए बुनियादी प्रशिक्षण विद्यालय खोले जा रहे हैं। परन्तु इस संक्रमण काल में बुनियादी प्रशिक्षण के पाठ्यक्रमानुसार उपयुक्त एवं पर्याप्त साहित्य का अभाव है। इस जरूरत को पूरा करने की नई जिम्मेदारी आज शिक्षा शास्त्रियों और विशेषकर उन व्यक्तियों पर, जो इस क्षेत्र में काम कर रहे हैं, आ गई है।

उपरोक्त जरूरत को पूरा करने की दृष्टि से शिक्षा के क्षेत्र में हमने अपनी सर्वप्रथम पुस्तक 'बुनियादी शिक्षा—सिद्धान्त एवं मनोविज्ञान' प्रस्तुत करने का साहस किया। माननीय डाक्टर श्रीमाली—उप-शिक्षा मन्त्री भारत सरकार ने उस पुस्तक की भूमिका लिखने की अनुपम कृपा कर शिक्षा जगत् से हमारा परिचय कराया। 'बुनियादी शिक्षा—शाला प्रबन्ध' नामक हमारी दूसरी पुस्तक शीघ्र ही शिक्षा जगत् की सेवा में अर्पित करने का अवसर आया। पूज्य डाक्टर जाकिर हुसैन साहब ने इस पुस्तक की भूमिका लिखने का कष्ट करना स्वीकार कर शिक्षा क्षेत्र में कार्य करने के हमारे साहस को दृढ़ किया। उपरोक्त प्रोत्साहन एवं शिक्षा के क्षेत्र में पूर्व पुस्तकों के स्वागत ने इस पुस्तक को प्रस्तुत करने के लिए प्रेरित किया है।

समवायी-पद्धति के प्रारम्भ के बाद से शिक्षण पद्धति के क्षेत्र में एक गलत-फहमी सी चल पड़ी है। लोग यह समझने लगे है कि समवायी शिक्षा में शिक्षा की अन्य पद्धतियाँ जैसे योजना पद्धति, समस्या पद्धति, अनुसंधान पद्धति आदि का महत्व नहीं है। जो थोड़ी सी पुस्तकें समवायी एवं बुनियादी शिक्षा पद्धति पर प्रकाशित हुई हैं उनमें शिक्षा की अन्य पद्धतियों को कोई स्थान न देने से समवायी शिक्षा पद्धति का विकास अवरुद्ध होता नजर आता है। आज जरूरत इस बात की है कि बुनियादी शिक्षा का अन्य शिक्षण पद्धतियों को दृष्टि में रखकर मूल्यांकन किया जावे, उसका अन्य शिक्षण पद्धतियों से तारतम्य मिलाया जावे और जहां उपयुक्त अवसर हों वहाँ बुनियादी शिक्षा के कलेवर को उनके समावेश के द्वारा परिष्कृत किया जावे। अत. इस पुस्तक में विभिन्न शिक्षा शास्त्रियों की शिक्षण पद्धतियों के क्रमिक विकास को स्पष्ट करते हुए उनका बुनियादी शिक्षा से तारतम्य मिलाने का प्रयत्न किया गया है।

हमारे इन प्रयासों में हमें आदरणीय श्री केदारनाथ जी श्रीवास्तव—डायरेक्टर सोशल एजूकेशन आर्गेनाइजर्स ट्रेनिंग सेन्टर, विद्या भवन, उदयपुर का आशीर्वाद एवं पथ-प्रदर्शन प्राप्त होता रहा है। इस [illegible] पूर्णता की ओर लाने में हमें उनका जो मार्ग दर्शन प्राप्त [illegible]। [illegible] हैं।

माननीय डाक्टर के० एल० [illegible] हुसैन साहब ने हमें इस क्षेत्र में अग्रसर होने के लिए [illegible] उसके लिए हम उनके चिर [illegible]।

आशा है, यह पुस्तक शिक्षा-जगत् की जिस जरूरत को पूरा करने के लिए लिखी गई है उसे अवश्य पूरा कर सकेगी।

मॉडल (भीलवाड़ा-राजस्थान) — शिवकुमार शर्मा
आषाढ़ कृष्ण त्रयोदशी सं० २०१४ — रमेशचन्द्र शर्मा

द्वितीय संस्करण

इस पुस्तक का प्रथम संस्करण आशातीत शीघ्रता से समाप्त हो गया। अतः इस द्वितीय संस्करण को शीघ्र ही प्रकाशित करना पड़ रहा है। प्रथम संस्करण के विषय में शुभमित्रों, साथियों और सहयोगियों के समस्त सुझावों को इसमें समाविष्ट कर इस पुस्तक की उपादेयता को बढ़ाने का प्रयत्न किया गया है।

हमें विश्वास है कि यह नवीन संस्करण पाठकों के लिए अधिक लाभप्रद सिद्ध होगा।

शिवकुमार शर्मा
(दि० १-६-५६) — रमेशचन्द्र शर्मा

तृतीय संस्करण

वर्तमान पुस्तक का यह तृतीय संशोधित संस्करण, इस क्षेत्र में कार्य करने वाले सहयोगियों और प्रमुखतः कुछेक नवीन, परन्तु प्रशंसनीय उत्साह से कार्यरत साथियों के सुझावों का समावेश कर प्रकाशित किया जा रहा है।

इस पुस्तक की उपादेयता बढ़ाने के प्रयत्न के अन्तर्गत राजस्थान, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश, पंजाब व अन्य प्रान्तों के इस विषय के पाठ्य-क्रमों को प्रमुखतः दृष्टि में रखा गया है।

हमें विश्वास है कि यह नवीन संस्करण पाठकों के लिए अधिक लाभप्रद सिद्ध होगा।

उदयपुर — शिवकुमार शर्मा
दि० २८-२-६१ — रमेशचन्द्र शर्मा

चतुर्थ संस्करण

इस पुस्तक का यह चतुर्थ संशोधित संस्करण पाठकों, शिक्षक-प्रशिक्षकों, शिक्षा विचारकों और मित्रों के सुझावों का पूरी तरह समावेश कर प्रकाशित किया जा रहा है।

उपरोक्त सुझावों का समावेश कर लेने पर इस पुस्तक के प्रारूप में काफी परिवर्तन हो गया है—काफी पाठ बढ़ाने पड़े हैं और कुछेक हटा भी दिये गये हैं। इस सब कुछ का उद्देश्य यही है कि इस पुस्तक की उपादेयता अधिकाधिक बढ़ाई जा . ऐसा [illegible] रूप में भी हो सका है तो लेखक अपने प्रयत्न को सफल

उदयपुर — शिवकुमार शर्मा
दिनांक १-१-६४ — रमेशचन्द्र शर्मा

विषय-सूची

प्रथम खण्ड—सामान्य शिक्षण पद्धति

अध्याय	विषय	पृष्ठ संख्या

द्वितीय खण्ड—पाठ्य विषय शिक्षण पद्धति

प्रथम खण्ड

सामान्य शिक्षण पद्धति

शिक्षण पद्धति का शिक्षा में स्थान

प्रस्तावना—महात्मा गाँधी ने एक स्थान पर कहा है कि अगर मुझे किसी अच्छे एवं ऊँचे उद्देश्य के लिये नीचा एवं दुषित मार्ग अपनाना पड़े तो ऐसा करने की बजाय मैं उस ऊँचे उद्देश्य को प्राप्त करने के इरादे को छोड़ देना अधिक पसंद करूंगा। इस दृष्टि से प्रत्येक अच्छा उद्देश्य अच्छे मार्ग एवं पद्धति के द्वारा प्राप्त हो यही एक महत्वपूर्ण बात है। प्रत्येक राष्ट्र और विशेषकर जनतन्त्री राष्ट्र यह चाहता है कि उसके नागरिक अधिक के अधिक संख्या में शिक्षित हों। इसी उद्देश्य के अन्तर्गत प्राचीन काल में भी और आज भी प्रत्येक राष्ट्र अपने नागरिकों की शिक्षा की व्यवस्था करना अपना उत्तरदायित्व समझता है। परन्तु प्राचीन काल से आज तक राष्ट्रों की धार्मिक, राजनैतिक एवं सामाजिक परिस्थितियों में लगातार परिवर्तन होता रहा है। शिक्षा का उद्देश्य भी इन परिस्थितियों के साथ बदले बिना नहीं रह सका। इस उद्देश्य परिवर्तन ने अपना प्रभाव शिक्षा के तरीके पर भी डाला जिसके फलस्वरूप पद्धतियों में भी समयानुसार परिवर्तन होते रहे और वे परिवर्तित स्थितियों की आवश्यकताओं की पूर्ति में सफल हो सकीं।

प्रभावित होने वाले मूल तत्व—राष्ट्र की बदलती हुई परिस्थितियाँ शिक्षा के उद्देश्य, उसके स्वरूप और तरीके पर प्रभाव ही नहीं डालतीं वरन् उनमें आमूल परिवर्तन भी कर देती हैं। शिक्षा के वे अंग जो कभी महत्वपूर्ण नहीं थे शिक्षा के केन्द्र भी बन जाते हैं। उपरोक्त दृष्टि से परिवर्तित एवं प्रभावित होने वाले मूल तत्व निम्न प्रकार हैं :—

(क) **शिक्षा का उद्देश्य**—शिक्षा का उद्देश्य समाज की आवश्यकताओं के साथ लगातार बदलता रहता है। शिक्षा कभी केवल ज्ञान प्राप्ति के लिये दी जाती थी, तो कभी जीविकोपार्जन के लिये, कभी शारीरिक, मानसिक एवं आत्मिक विकास के लिए दी जाती थी तो कभी चारित्रिक विकास के लिये।

(ख) **पाठ्य सामग्री**—शिक्षा द्वारा जिस उद्देश्य की ओर अग्रसर होने की भावना होती है उसी के अनुसार पाठ्य सामग्री को जुटाने का प्रयत्न किया जाता है। ब्राह्मण काल में गुरु शिष्यों को, ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य के विभिन्न कर्म करने के लिये तैयार करते थे। परन्तु बौद्ध काल में जब शिक्षा का उद्देश्य बालकों को केवल भिक्षु बनाना ही रह गया पाठ्य सामग्री का परिवर्तित हो जाना स्वाभाविक ही था। मुसलमानों के समय में, मौलवियों द्वारा कुरान पढ़ा देना मात्र ही शिक्षा का लक्ष्य रह गया था। अतः मुसलमानों के धार्मिक ग्रन्थ पाठ्य सामग्री के रूप में सामने आये। ऐसा ही परिवर्तन अंग्रेजी काल में आया। शिक्षा का उद्देश्य अंग्रेजों के शासन में लेखक तैयार करना रह गया था। उस समय प्रमुख पाठ्य सामग्री का स्थान अंग्रेजी

भाषा के रूप में धारण कर लिया। हाथ का काम अनाड़ी श्रमिकों के करने का काम रह गया। उस शिक्षा का कुप्रभाव राष्ट्र ने देखा और आज राष्ट्र अपने गांवों के विशृंखलित जीवन को फिर से संगठित करने के लिए प्रयत्नशील है। इसके लिए अनन्य अनुरक्ति चाहिए जो तभी प्राप्त हो सकती है जब कि सभी लोग हाथ से काम करने में अपनी इज्जत समझें। अत: आज पाठ्य सामग्री का केन्द्र बुनियादी उद्योग बन गया है और अंग्रेजी भाषा, जिसका पाठ्यक्रम में महत्त्वपूर्ण स्थान रहता आया है, गौण बन गई है। मातृभाषा ने उसका स्थान ले लिया है।

(ग) शिक्षा पद्धति—राष्ट्र की शासन व्यवस्था शिक्षा की पद्धति को पर्याप्त मात्रा में प्रभावित करती है। बालक की स्वतन्त्रता की गुंजाइश पाठशाला में तभी होती है जब मानव को समाज में स्वतन्त्रता से जीने का हक मिलने लगता है। मानव जब-जब राज्य द्वारा मशीनों से दबाया गया बालक भी कक्षा में छड़ी द्वारा अनुशासित रखा गया शिक्षा पद्धति में विकास का युग शिक्षा में 'आदर्शवाद' का स्थान यथार्थवाद द्वारा ले लेने पर शुरू होता है। इस प्रकार शिक्षा की पद्धति भी समयानुसार लगातार परिवर्तित होती रही है।

(घ) शिक्षा में दृष्टिकोण—पढ़ाते समय शिक्षक राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय आवश्यकताओं को दृष्टि में रखकर बालकों में अन्य राष्ट्रों के प्रति प्रेम, घृणा एवं सहयोग की भावना भरने के लिये विभिन्न प्रकार से सूचनात्मक ज्ञान देता है। दो विश्व-युद्धों के पश्चात् आज अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग की आवाज दिन-ब-दिन जोर पकड़ती जा रही है। शिक्षा का क्षेत्र भी इस आन्दोलन से अधिक से अधिक प्रभावित हो ऐसा प्रयत्न किया जा रहा है। प्रत्येक ज्ञान सहयोग के दृष्टिकोण को सामने रख कर दिया जावे ऐसा प्रयत्न आज की शिक्षा में हो रहा है। पुराने दृष्टिकोण के स्थान पर यह एक नया एवं परिवर्तित दृष्टिकोण है।

प्रभावित न होने वाले मूल तत्व—शिक्षा के वे मूल तत्व जिन पर समाज की बदलती हुई परिस्थितियों का प्रभाव नहीं पड़ता वे निम्न प्रकार हैं :—

(क) शिक्षक की स्थिति—शिक्षक की स्थिति अधिकांशतः सेवक के समान ही रही है। माता-पिता ने, समाज ने या सरकार ने उससे जो कुछ कहा वही वह पढ़ाता रहा। उसने अपनी शक्ति और सामर्थ्य को पहिचान कर और अपने धंधे को उस अनुसार बनाकर, समाज का निर्माता बनने का प्रयत्न करने की कल्पना ही नहीं की। अथवा ऐसी भावना रखने की दशा में भी अन्य शक्तियां उस पर इस प्रकार हावी होती रहीं कि उसे उनसे लोहा लेने की हिम्मत न पड़ी।

(ख) शिक्षा के स्वरूप के निर्णय का अधिकार—सम्पूर्ण इतिहास यह स्पष्ट करता है कि शिक्षा के स्वरूप का निर्णय माता-पिताओं ने, समाज ने, राजनीतिज्ञों ने या राष्ट्र ने निश्चित किया है और शिक्षा के मामले में निर्णय लिये जाने के अवसर जहाँ शिक्षक की राय निर्णायक मानी जानी चाहिये वहाँ भी शिक्षक की राय का ... हो रहा है।

(ग) शिक्षा में स्वतंत्रता—व्यक्ति को अपनी योग्यता के अनुसार अपना

विकास कर पाने की स्वतन्त्रता और अवसर प्राप्त नहीं हो सके और माता-पिता, समाज एवं राष्ट्र की आवश्यकता की पूर्ति के लिये उसे अधिकांशतः वैसा ही बन जाना पड़ा जैसा कि वे बनाना चाहते थे।

शिक्षा का केन्द्र और शिक्षण पद्धति—शिक्षा में स्वतंत्रता, अवसर एवं समानता की विचारधारा के प्रादुर्भाव के पश्चात् शिक्षा के स्वरूप में अनेकों परिवर्तन आये हैं और शिक्षा का केन्द्र भी एक स्थान से दूसरे स्थान की ओर परिवर्तित होता रहा है। जब तक शिक्षा के केन्द्र के रूप में शिक्षक एवं पाठ्य सामग्री का स्थान रहा तब तक बालक की स्थिति गौण ही बनी रही। ऐसी दशा में शिक्षा में किसी पद्धति विशेष का महत्व नहीं था। शिक्षक के कुटुम्ब में रहकर उसके प्रत्यक्ष जीवन से बालक शिक्षा ग्रहण किया करते थे और शिक्षक के संरक्षण में उन्हें कुछ पुस्तकें कण्ठस्थ भी करनी पड़ती थीं। छात्र को अध्ययन के हेतु जागरूक रहना पड़ता था और शिक्षा प्राप्ति के लिये गुरु की अधिक से अधिक सेवा ही उनका कर्त्तव्य था। शिक्षक भी कुपात्र को ज्ञान देने की अपेक्षा उस ज्ञान को स्वयं की जीवन लीला समाप्ति के साथ समाप्त हो जाने देना उत्तम समझते थे। इस प्रकार कुछ थोड़े से योग्य व्यक्ति ही त्याग और सेवा द्वारा गुरु से ज्ञान प्राप्त कर पाते थे। परन्तु धीरे-धीरे समय में परिवर्तन आया और शिक्षा समाज के विशेष वर्गों की प्राप्ति की वस्तु बनी रहने के बजाय सबका अधिकार बन गई। इसी के साथ शिक्षा में कुछ विशेषज्ञों ने यह आवाज उठाई कि बालक को उनके स्वभाव (प्रकृति) के अनुसार विकसित होने दो। शिक्षक का काम तो केवल इतना है कि वह ऐसी सब परिस्थितियाँ उत्पन्न करे जो बालक के विकास में सहायक हों। इस नई विचारधारा के प्रभाव से शिक्षा में विभिन्न पद्धतियों का श्रीगणेश हुआ। ये सभी पद्धतियाँ बालक को शिक्षा का केन्द्र बनाकर उसे अधिक से अधिक कार्य प्रवृत्त (Active) रखने का प्रयत्न करती हैं।

शिक्षा और शिक्षण पद्धति—राष्ट्र के नागरिकों की शिक्षा में किन तरीकों को अपनाया जावे? इस प्रश्न का उत्तर हमारी शिक्षण पद्धति देती है। समाज की स्थितियों के बदलने के साथ ही शिक्षण पद्धति में परिवर्तन आये बिना नहीं रहता। आज हम एक स्वतंत्र राष्ट्र के नागरिक हैं। हमने अपने राष्ट्र की व्यवस्था के लिये जनतन्त्री प्रणाली को चुना है। इस व्यवस्था द्वारा हम समाजवाद की स्थापना कर सर्वोदय की ओर अग्रसर होना चाहते हैं। समाज एवं राष्ट्र के निर्माण में शिक्षा का प्रमुख योग रहता है। वरन् हमें यह कहना चाहिए कि समाज के निर्माण का आधार ही शिक्षा है। इस दृष्टि से हमारी राष्ट्रीय शिक्षा पद्धति में वे सब तत्व होने चाहिएँ जिनकी हम भावी समाज में अपेक्षा करते हैं। इसी भावना को सामने रखकर राष्ट्रीय शिक्षा पद्धति को जीवन का तरीका कहकर सम्बोधित किया गया है। शिक्षा पद्धति को जीवन के तरीके के रूप में लाने की दृष्टि से ही हमने समवाय का सहारा लिया है। समवाय के प्रयोग के कारण ही इस शिक्षा पद्धति को हम 'समवायी शिक्षा पद्धति' भी कहते हैं। परन्तु इस पद्धति तक पहुँचने के पूर्व शिक्षा में कितने प्रयोग हो चुके हैं जिनके द्वारा हम हमारी कई विशिष्ट प्रकार की शिक्षण पद्धति का निर्माण

कर सकने में सफल हो सके, यह जानना भी आवश्यक है, जिसकी जानकारी आगामी अध्यायों में दी जावेगी। यहाँ तो सिर्फ यही स्पष्ट किया जाना आवश्यक है कि राष्ट्र के नागरिकों की शिक्षा हमारा साध्य है और शिक्षण पद्धति हमारा साधन है। उपयुक्त साधन के अभाव में साध्य तक पहुँचना असम्भव है।

सारांश

प्रस्तावना—शिक्षा का उद्देश्य प्राचीन काल से आज तक बदलता रहा है। इसी कारण पाठ्य सामग्री और शिक्षण पद्धति में भी परिवर्तन होता रहा है।

प्रभावित होने वाले मूल तत्व—(क) शिक्षा का उद्देश्य। (ख) पाठ्य सामग्री। (ग) शिक्षा पद्धति। (घ) शिक्षा में दृष्टिकोण।

प्रभावित न होने वाले मूल तत्व—(क) शिक्षक की स्थिति। (ख) शिक्षा के स्वरूप के निर्णय का अधिकार। (ग) शिक्षा में स्वतंत्रता।

शिक्षा का केन्द्र और शिक्षण पद्धति—शिक्षा का केन्द्र शिक्षण पद्धति पर भारी प्रभाव डालता है। शिक्षा का केन्द्र बालक माना जाने पर ही शिक्षा की पद्धति में विकास हो पाया है।

शिक्षा और शिक्षण पद्धति—शिक्षा उद्देश्य है और शिक्षण पद्धति उसका साधन है। अच्छे साधन के अभाव में उद्देश्य की प्राप्ति असंभव नहीं तो दुष्कर अवश्य है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

(१) समय में परिवर्तन के साथ शिक्षा के किन-किन अंगों में परिवर्तन होता रहा है? स्पष्ट कीजिए।

(२) शिक्षा और शिक्षण पद्धति में जो सम्बन्ध है उसका विस्तार से विवेचन कीजिए।

बुनियादी शिक्षा पद्धति का स्वरूप

शिक्षण पद्धति के शिक्षा में स्थान एवं उसकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के विषय में विवेचन कर लेने के पश्चात् यहाँ बुनियादी शिक्षा पद्धति के स्वरूप में परिचय प्राप्त करने का प्रयत्न किया जा रहा है। बुनियादी शिक्षा की पद्धति का परिचय प्राप्त करना इस कारण जरूरी है, क्योंकि आगामी अध्यायों में प्रमुख शिक्षा विशेषज्ञों की शिक्षण पद्धतियों से बुनियादी तालीम की तुलना की जाएगी। यह तुलना तभी उपयुक्त, नियमित एवं क्रमबद्ध हो सकेगी जबकि पाठकों को बुनियादी शिक्षा में एक पद्धति के रूप में परिचय प्राप्त हो।

बुनियादी शिक्षा—बुनियादी (मूल) उद्योगों एवं भारतीय दर्शन के बुनियाद (मूलभूत) आधार पर बुनियादी (प्राकृतिक) पद्धति से मानव-जीवन की बुनियादी (बाल्यावस्था) में ही सुसंस्कृत मानव-जीवन एवं भावी सत्समाज की बुनियादी (नींव) को जो शिक्षा मजबूत बनाने का सफल प्रयास करती है वही बुनियादी तालीम है।

यह शिक्षा बालक की गर्भावस्था तथा जन्म से ही प्रारम्भ होने वाली शिक्षा है, इस कारण बुनियादी शिक्षा है। यह शिक्षा प्राकृतिक पद्धति से, जैसे मानव सीखता है उस पद्धति से, बालक को शिक्षित करती है, इस कारण बुनियादी शिक्षा है। यह शिक्षा सुसंस्कृत मानव जीवन की बुनियाद तैयार करती है, इस कारण बुनियादी शिक्षा है। यह शिक्षा सम्पूर्ण जीवन की शिक्षा है, इस कारण बुनियादी शिक्षा है। यह शिक्षा सर्वोदयी समाज की स्थापना के अन्तिम लक्ष्य की बुनियाद तैयार करती है, इस कारण बुनियादी शिक्षा है। भारतीय दर्शन के बुनियादी तत्व—सत्य और अहिंसा—को अपना आधार मानती है, इस कारण बुनियादी शिक्षा है। यह बुनियादी उद्योगों के आधार पर बालकों को शिक्षित करने का प्रयत्न करती है, इस कारण बुनियादी शिक्षा है। इस प्रकार वर्धा शिक्षा योजना को बुनियादी शिक्षा कहना पूर्णतः सार्थक है।

मूल वर्धा शिक्षा योजना की रूप-रेखा—

मूल वर्धा शिक्षा योजना की रूप-रेखा इस प्रकार है:—

(१) सप्तवर्षीय निःशुल्क अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था हो।

(२) शिक्षा का माध्यम मातृभाषा हो।

(३) उद्योग को आधार बनाकर शिक्षा-विधि का संचालन हो।

(४) सम्पूर्ण शिक्षा इस सीमा तक स्वावलम्बी हो कि शिक्षक का वेतन निकल आवे।

बुनियादी शिक्षा के महत्वपूर्ण बिन्दु—बुनियादी तालीम की उपरोक्त विशेषता के अतिरिक्त निम्नलिखित बिन्दु भी विचारणीय हैं:—

(क) बुनियादी शिक्षा में उद्योग के अतिरिक्त, समवाय के केन्द्र के रूप सामाजिक वातावरण, सांस्कृतिक वातावरण और प्राकृतिक वातावरण का समावेश किया गया है।

(ख) बुनियादी शिक्षा की मूल योजना में आठ साल की सम्पूर्ण शिक्षा स्वावलम्बी माना गया था। परन्तु आज यह विचारधारा साधारणतया ओझल चुकी है।

(ग) प्रारम्भिक योजना में बापूजी ने सात वर्ष (जिसे बाद में आठ वर्ष दिया गया) की प्रारम्भिक शिक्षा को बुनियादी तालीम कहा था। बाद में उन्ह बुनियादी शिक्षा बनाम जीवन-शिक्षा का प्रचार किया। इस प्रकार शिक्षा के च भाग कर दिए—(१) पूर्व बुनियादी शिक्षा, (२) बुनियादी शिक्षा, (३) उत्तर बु मादी शिक्षा और (४) प्रौढ़ शिक्षा।

(घ) बुनियादी शिक्षा की सारे भारत में निःशुल्क व्यवस्था हो।

(ङ) बुनियादी शिक्षा में शिक्षा का माध्यम मातृभाषा हो।

(च) भारत में सर्वोदयी समाज की स्थापना इसी शिक्षा पद्धति द्वा सम्भव है।

अन्य ज्ञातव्य बातें :—

(१) शिक्षा हस्तकला एवं उद्योग पर आधारित बने—वर्धा-शिक्षा योज के पूर्व संसार में शिक्षा-सुधार की दृष्टि से अनेकों प्रयोग हो चुके थे। सभी शिा विशेषज्ञों ने बौद्धिक विकास के अतिरिक्त, हाथ के काम एवं क्रियात्मक अनुभव प भी बल दिया था। परन्तु अब तक शिक्षा में बालक के बौद्धिक विकास के आधा पर एवं केन्द्र के रूप में हाथ के काम एवं क्रियात्मक अनुभव को कभी स्थान न दिया गया था। बुनियादी शिक्षा पद्धति में यही एक विशेषता है। इसी केन्द्र आधार पर सम्पूर्ण बौद्धिक शिक्षा का क्रम चलता है। इसी कारण शिक्षा के आधा के रूप में चुने जाने वाले उद्योग में निम्न विशेषतायें होनी चाहियें :—

(क) वह उद्योग बालक एवं वातावरण की आवश्यकता की पूर्ति करता हे और बालक को उसके करने का कारण एवं उद्देश्य मालूम होना चाहिए।

(ख) उसकी जरूरत का कच्चा माल यथासम्भव वहीं आसानी से प्राप्त होना रहना चाहिए।

(ग) वह उद्योग उत्पादक होना चाहिए।

(घ) वह उद्योग बालक की रुचि के अनुकूल होना चाहिए।

(ङ) उस उद्योग से बौद्धिक ज्ञान को समन्वित किये जाने की पर्याप्त सम्भावना होनी चाहिए।

(च) वह उद्योग नैतिकता से परिपूर्ण हो और बुनियादी तालीम के मूल सिद्धान्त सत्य और अहिंसा के अनुकूल हो।

(२) सब काम सबके करने के काम हों—एक चौथी श्रेणी के कर्मचारी से लेकर बड़े से बड़े कर्मचारी का कार्य एवं शौचालय की सफाई से लेकर भोजन बनाने

या ऊँचे से ऊँचा काम शाला के प्रत्येक कर्मचारी के करने का काम होना चाहिए। शाला की यह जिम्मेदारी है कि वह बच्चों को जीवन में इन सब कार्यों के करने के लिए तैयार करे। इससे काम के आधार पर स्थापित भेद-भाव अवश्य दूर हो जावेगा।

(३) जीवन व्यतीत करने का तरीका ही शिक्षा-प्राप्ति का तरीका हो—हमारे जीवन में सीखने का और सीखे हुए ज्ञान को प्रयोग में लाने का समय अलग-अलग बँटा हुआ नहीं होता। हम तो काम करते हुए भी ज्ञान व अनुभव प्राप्त करते हैं और बुद्धि का विकास करते हैं तथा बुद्धि का विकास करते हुए ही काम करते हैं। इस प्रकार हम (१) अपनी बुद्धि का विकास, (२) हृदय एवं मन का विकास और (३) इन्द्रियों की साधना। ये तीनों काम साथ-साथ करते हैं। बुनियादी शाला के जीवन में इसी तरीके को अपनाये जाने की व्यवस्था की गई है।

(४) स्वावलम्बी जीवन ही स्वतन्त्र जीवन है—स्वावलम्बन के तीन अंग माने गये हैं जिसके अन्तर्गत बौद्धिक, आत्मिक और आर्थिक स्वावलम्बन आते हैं। बुनियादी शाला इन तीनों दिशाओं में स्वावलम्बी व्यक्ति तैयार करने का प्रयत्न करती है। आर्थिक स्वावलम्बन के अन्तर्गत मानव की प्रमुख तीन आवश्यकतायें कपड़ा, भोजन और शरण-स्थान आते हैं। इन्हीं तीन आवश्यकताओं को मूल मान कर बुनियादी तालीम में मूल उद्योग के रूप में कताई-बुनाई, कृषि एवं बागवानी, व भवन-निर्माण कला आते हैं। इन तीन उद्योगों में भी प्रथम दो में बौद्धिक ज्ञान को समन्वित करने का अधिक अवसर होने से इन्हें बुनियादी तालीम में अधिक महत्व-पूर्ण स्थान प्रदान किया गया है। अपने द्वारा किये गए काम का आनन्द तथा अपने द्वारा तैयार की गई वस्तु का उपभोग करने में स्वर्ग के सुख का अनुभव किया जाता है। मानव ऐसे जीवन में ही स्वतन्त्रता की सांस ले सकता है।

(५) संगठन का स्वरूप जनतान्त्रिक हो—शाला को जनतान्त्रिक पद्धति से संगठित किया जाता है। जिस प्रकार जनतान्त्रिक राष्ट्र के नागरिक राष्ट्र द्वारा दिये गए अपने अधिकारों का प्रयोग करते हैं तथा राष्ट्र के प्रति अपने कर्तव्य एवं उत्तर-दायित्व का पालन करते हैं उसी प्रकार शाला के सदस्यों के साथ व्यवहार किया जाता है। शासन सम्पूर्ण शाला समाज के हित को सामने रखकर शाला समाज की राय एवं सहयोग से चलाया जाता है।

बुनियादी शिक्षा के निर्णायक तत्व:—

(क) शिक्षा एक प्रक्रिया है, जो माता के गर्भ से प्रारम्भ होती है और मरण-पर्यन्त चलती है। वह भावी जीवन की तैयारी नहीं है। महात्मा जी ने जीवन के द्वारा, जीवन की शिक्षा को ही बुनियादी शिक्षा कहा है।

(ख) शिक्षा का साधन सूचनात्मक ज्ञान नहीं वरन् अनुभव है। अतः यह प्रक्रिया बालक के अनुभव से शुरू होनी चाहिए।

(ग) बालक को शिक्षित करते हुए केवल उसके मस्तिष्क को ही कार्य-प्रवृत्त नहीं रखना चाहिए वरन् उसके हृदय और हाथों को भी कार्य में लगा रखना चाहिए।

समवायी पद्धति—समवाय के विषय में बतलाते हुए पूज्य विनोबा जी ने कहा है—"जैसे चाबी से ताला खोला जाता है, ठीक वैसे ही उद्योग द्वारा जीवन को खोलना है।" जैसे ज्ञान का कर्म से अटूट सम्बन्ध है वैसे ही सम्पूर्ण ज्ञान भी एक समन्वय सम्मिलित है। उद्योग के आधार पर कर्म ज्ञान से सम्बन्ध दृढ़ करते हुए सम्पूर्ण ज्ञान को एक इकाई मानकर बालक को शिक्षित करने का तरीका ही समवायी पद्धति है। इसी समवायी शिक्षा पद्धति को बुनियादी शिक्षा पद्धति भी कहते हैं। उद्योग द्वारा समवायी शिक्षण पद्धति की सफलता योजना पर निर्भर है। जिसमें वर्ष भर के कार्य की योजना से लगाकर दैनिक पाठ योजना तक को निश्चित स्वरूप देना पड़ता है।

विषयवार अध्यापकों की बजाय कक्षावार अध्यापक.—

बुनियादी शिक्षा पद्धति के स्वरूप के अन्तर्गत, अन्तिम लेकिन बड़ा महत्वपूर्ण बिन्दु यह है कि उद्योग का शैक्षणिक आधार के रूप में कक्षा को पूरा-पूरा लाभ पहुँचे। इस हेतु यह जरूरी है कि उद्योग सहित सभी विषयों को एक कक्षा में एक ही अध्यापक पढ़ाये। महात्मा गांधी जी ने भी कहा है—"मैंने सीखने के विषयों को अलग-अलग नहीं किया बल्कि यह माना है कि सब एक दूसरे से ओतप्रोत हैं और सब एक ही से उत्पन्न हुए हैं, उसी तरह शिक्षक की भी एक ही कल्पना है। विषयवार अलग-अलग शिक्षक नहीं, पर एक ही। वर्गों के अनुसार अलग-अलग हो सकते हैं अर्थात् चार कक्षाएं होंगी तो चार शिक्षक होंगे"।[1]

सारांश

बुनियादी शिक्षा—यह गर्भावस्था एवं जन्म से प्रारम्भ होने वाली शिक्षा है जो सम्पूर्ण जीवन एवं समाज निर्माण के आधार के रूप में कार्य करती है। यह उद्योग के आधार पर बालक का विकास करती है।

वर्धा योजना की रूपरेखा—इसमें सप्तवर्षीय निःशुल्क अनिवार्य शिक्षा को मातृभाषा के माध्यम द्वारा व्यवस्था की गई थी और उद्योग को केन्द्र बना कर शिक्षा का संचालन करने एवं सम्पूर्ण शिक्षा के स्वावलम्बी होने पर बल दिया गया था।

बुनियादी शिक्षा के महत्वपूर्ण बिन्दु :—

(क) समवाय के आधार के रूप में उद्योग के अतिरिक्त प्राकृतिक और सामाजिक वातावरण को भी स्वीकार कर लिया गया है।

(ख) आज शाला की सम्पूर्ण शिक्षा के स्वावलम्बन की विचारधारा मात्र उत्पादन मात्रा में वृद्धि से ओझल हो चुकी है।

(ग) बापू जी ने बुनियादी शिक्षा को बाद में जीवन शिक्षा के नाम से सम्बोधित किया था और उसे सम्पूर्ण जीवन की शिक्षा बना दी थी।

१ महात्मा गांधी—बुनियादी शिक्षा, (नवजीवन, अहमदाबाद) पृष्ठ ५०।

(घ) आठ वर्ष की निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था सारे देश में हो।

(ङ) शिक्षा का माध्यम मातृभाषा हो।

(च) सर्वोदयी समाज की स्थापना बुनियादी शिक्षा पद्धति द्वारा संभव।

अन्य ज्ञातव्य बातें :—

(१) हस्तकला एवं उद्योग को शिक्षा का आधार मानकर शिक्षा हो।

(२) समाज में सब काम सबके करने के माने जावें।

(३) जीवन व्यतीत करने का तरीका ही शिक्षा प्राप्ति का तरीका हो।

(४) स्वावलम्बी जीवन ही स्वतन्त्र जीवन है।

(५) शाला संगठन का स्वरूप जनतान्त्रिक हो।

बुनियादी शिक्षा के निर्णायक तत्व :—

(क) शिक्षा जीवन भर चलने वाली एक प्रक्रिया है।

(ख) अनुभव ही शिक्षा का साधन होना चाहिए।

(ग) बालक के मस्तिष्क, हृदय और शरीर के अंग तीनों को, काम में लगाया जाकर साथ-साथ शिक्षित किया जाना चाहिए।

समवायी पद्धति—उद्योग के आधार पर, कर्म का ज्ञान से सम्बन्ध दृढ़ करते हुए, सम्पूर्ण ज्ञान को एक इकाई मानकर बालक को शिक्षित करने का तरीका ही समवायी पद्धति है। इसमें योजना का महत्वपूर्ण स्थान है।

विषयवार अध्यापकों की बजाय कक्षावार अध्यापक होने चाहियें।

अभ्यासार्थ प्रश्न

(१) वर्धा शिक्षा योजना को बुनियादी शिक्षा क्यों कहते हैं ? स्पष्ट कीजिए।

(२) समवायी शिक्षा पद्धति क्या है ? इसके निर्णायक तत्त्व कौन-कौन से हैं ? विस्तार से लिखिए।

⊙

पाठों के भेद

पाठ की व्याख्या—बालक को शिक्षित करने के लिए एक सत्र में जितना ज्ञान कराना है उसको विभिन्न विषयों में बाँटा जाता है। इसमें से प्रत्येक विषय प्रतिदिन निश्चित अवधि तक पढ़ाया जाता है। दैनिक समय-विभाग-चक्र के अनुसार इस एक अवधि को 'पीरियड' कहते हैं। इस एक 'पीरियड' में जिस विषय का जितना ज्ञान कराया जाता है वह उस विषय का पाठ कहलाता है।

वैसे तो प्रत्येक अध्यापक अपनी बुद्धि, रुचि, ज्ञान और क्षमता के अनुसार पाठ आयोजन करता है। अतः एक अध्यापक द्वारा पढ़ाए गए पाठ का ढंग दूसरे अध्यापक के ढंग से थोड़ा बहुत भिन्न होगा क्योंकि प्रत्येक पाठ की अपनी एक रूप-रेखा होती है। उसका अपना एक स्वरूप होता है। उसकी अपनी प्रणाली होती है और उसका अपना फल होता है तथापि यह निश्चित है कि बालक अपनी मानसिक क्षमता, अभिरुचि, बुद्धि, शारीरिक क्षमता आदि के आधार पर ही पाठ से शिक्षा ग्रहण करता है। अतः इसी मानसिक क्रिया के आधार पर पाठों के भेद कर दिए गए हैं।

पाठों के भेद—*शिक्षा ग्रहण करना मानसिक क्रिया पर निर्भर है।* मानसिक क्रिया की तीन अवस्थाएं होती हैं :—

(१) **ज्ञानात्मक अवस्था (कॉगनीशन)**—इन्द्रियों के सम्पर्क में वस्तु के आते ही *उससे परिचय होता है। उसका ज्ञान प्राप्त किया जाता है। इसी को कॉगनीशन* कहते हैं।

(२) **क्रियात्मक अवस्था (कोनेशन)**—वस्तु से परिचय प्राप्त करने के पश्चात् उसके प्रयोग की *इच्छा होती है। उसमें परिवर्तन करने की इच्छा होती है।* उसके द्वारा दूसरी वस्तुओं के निर्माण की इच्छा होती है। इसी को क्रिया अथवा कोनेशन कहते हैं।

(३) **रागात्मक अवस्था (एप्रिसियेशन)**—*पदार्थ के ज्ञान और प्रयोग के बाद* यह प्रश्न पैदा होता है कि उस वस्तु से कितना संतोष या सुख मिला है। अथवा कितना असन्तोष या दुःख मिला है। अर्थात् वह लाभकारी सिद्ध हुई है या अनिष्ट-कारी है। इस प्रकार के विचार जो हृदय में अंकित होते हैं उन्हें *रागात्मक कहते हैं* अथवा एफेक्शन या एप्रिसियेशन कहते हैं।

मानसिक क्रिया की इन तीनों अवस्थाओं पर पाठों को भी तीन भागों में बाँटा जाता है :—

(क) ज्ञानात्मक पाठ।
(ख) *क्रियात्मक पाठ।*
(ग) रागात्मक पाठ।

वैसे तो प्रत्येक प्रकार के पाठ में अन्य दोनों तरह के पाठ किसी न किसी रूप में विद्यमान होते हैं तथापि इन तीनों का अलग-अलग विवेचन किया जाएगा।

(क) ज्ञानात्मक पाठ (Information Lessons)—शाला में पढ़ाये जाने वाले प्रत्येक पाठ का उद्देश्य यद्यपि बुद्धि का विकास करना है, तथापि कुछ ऐसे पाठ होते हैं *जिनका उद्देश्य खास तौर से नई बातें सिखाना होता है। ज्ञान का अर्जन* कराना ही इन पाठों की विशेषता होती है। भूगोल, इतिहास, गणित के वे पाठ जिनसे नई बात सीखने को मिलती है ज्ञानात्मक पाठ कहलाते हैं।

ज्ञानात्मक पाठों के प्रकार—ज्ञान प्राप्त कराना शिक्षा का उद्देश्य है पर साथ ही शिक्षा इस बात का भी ध्यान रखती है कि प्राप्त ज्ञान भूल न जाएँ। अत इन्हीं दृष्टिकोणों से ज्ञानात्मक पाठ दो प्रकार के होते हैं।

(१) विकासात्मक पाठ--शिक्षा का उद्देश्य बालकों को ज्ञान प्रदान करने का है *जिससे बालक का समाज के उपयोगी नागरिक के रूप में निर्माण हो सके।*

विकासात्मक पाठो की योजना ऐसी होनी चाहिए कि बालकों की रुचि के अनुकूल ज्ञान प्राप्त हो सके। नया ज्ञान बोझ नही बन जाना चाहिए अन्यथा पाठ मे बालक रुचि न लेंगे। अत. अध्यापक को पहले बालकों से इस रूप में परिचित होना चाहिए कि बालक कितना जानते हैं। तत्पश्चात् इसी पूर्व ज्ञान को नवीन ज्ञान का आधार बनाना चाहिए। साथ ही नवीन ज्ञान के लिए छात्र मे उत्सुकता उत्पन्न करना आवश्यक है। तात्पर्य यह है कि ज्ञानार्जन के समय अध्यापक और छात्र मे पारस्परिक *सहयोग अत्यन्त आवश्यक है। नवीन ज्ञान की छात्र के सम्मुख ऐसी प्रस्तावना रखनी* चाहिए कि बालक पाठ मे सक्रिय भाग लेना प्रारम्भ कर दे। यह अवश्य ध्यान रखने की बात है कि कक्षा के साधारण स्तर के अनुकूल ही नवीन ज्ञान हो। नवीन ज्ञान *प्रदान करने के लिए सम्पूर्ण पाठ की योजना अध्यापक को पहले से ही बना लेना* आवश्यक है। पाठ की योजना के लिए महाशय हरबार्ट ने पाँच सोपान सुझाए हैं। इनके आधार पर आयोजित पाठ अधिक मनोवैज्ञानिक बनेगा। हरबार्ट के इन पाँच सोपानों का स्पष्टीकरण आगामी अध्याय में किया जावेगा।

(२) दृढ़ात्मक पाठ—दृढ़ात्मक पाठो का उद्देश्य अर्जित ज्ञान को दृढ़तापूर्वक मस्तिष्क में जमाना है। यह कार्य अभ्यास पाठ एवं पुनरावृत्ति पाठ द्वारा होता है।

(ख) अभ्यास पाठ—किसी भी प्रक्रिया अथवा सम्बन्ध को बार-बार दुहरा कर उसे स्थायी बनाने की *क्रिया को अभ्यास कहते हैं।* इस प्रकार अभ्यास सम्बन्ध अथवा आदतों को दृढ़ बनाता है। जब सम्बन्ध या आदत दृढ़ हो जाती है तो फिर उन्हें कार्य में प्रयोग करने के लिए न अधिक समय लगता है, न अधिक ध्यान अथवा *परिश्रम की आवश्यकता होती है। वह स्वयं चालित हो जाती है। यन्त्रवत्* हो जाती है। उनके स्मरण करने में देर नहीं लगती।

बालकों को अभ्यास तभी कराना चाहिए जबकि वे उसका भली-भाँति ज्ञान प्राप्त कर लें व समझ लें। अभ्यास नई बात नहीं सिखाता वह तो सीखी हुई बात को दृढ़ बनाता है। कहा भी है—"करत करत अभ्यास के जड़मति होत सुजान"।

पर अभ्यास में यह ध्यान रखना चाहिए कि गलत बात का अभ्यास करने पर वह 'सुजान' के स्थान पर 'अजान' भी बना सकता है।

अभ्यास पाठ की अवस्थाएँ—अभ्यास पाठ में निम्नलिखित अवस्थाएँ हुआ करती हैं :—

(१) **आवश्यक एवं उपयोगी आदत का निर्माण**—जिस आदत का बालक में निर्माण करना हो उसका आवश्यक एवं उचित ज्ञान बालक को करा देना चाहिए। यह कार्य विकासात्मक पाठ की क्रिया द्वारा किया जावेगा। साथ ही बालक में इस बात की प्रेरणा उत्पन्न करनी चाहिए कि वह उस आदत को बनाए रखना चाहता है। जब तक बालक में इस बात की लगन न होगी वह अभ्यास की ओर ध्यान न देगा।

(२) **अभ्यास क्रिया के सही तरीके का प्रयोग**—अभ्यास करने का सही तरीका बालक को समझाना चाहिए। वैसे अभ्यास करने की कई रीतियाँ हो सकती हैं उनमें से जो सबसे उपयुक्त रीति हो उसी को चुनना चाहिए।

(३) **अभ्यास कार्य**--यह पाठ का सबसे महत्त्वपूर्ण अंग है। अभ्यास प्रायः नीरस हो जाया करते हैं। अतः उसे नीरस होने से बचाना चाहिए तथा बालक की इच्छानुकूल ही अभ्यास कराना आवश्यक है अन्यथा वह उसे भारस्वरूप समझने लगेगा।

अभ्यास कार्य में अन्य आवश्यक बातें :—

(१) अभ्यास कार्य में कोई बात छूट नहीं जानी चाहिए।

(२) अभ्यास कार्य मे बालक की रुचि का पूर्ण ध्यान रखना चाहिए।

(३) अभ्यास में शिथिलता नहीं आनी चाहिए।

(४) अभ्यास कार्य तब तक करना चाहिए जब तक वह दृढ़ आदत एवं स्वयं चालित का रूप धारण न कर ले।

(५) अभ्यास की गति प्रारम्भ में धीमी तथा उत्तरोत्तर तीव्र होनी चाहिए।

(आ) पुनरावृत्ति पाठ—विषय की पूर्णता पर पहुंच कर पुनः सम्पूर्ण विषय पर एक नवीन दृष्टिकोण से ध्यान देना आवश्यक है। विषय सम्बन्धी सम्पूर्ण नवीन सामग्री प्रदान कर चुकने पर उनके परस्पर सम्बन्ध जोड़ने तथा तारतम्य मिलाने के दृष्टिकोण से जो पाठ दिया जाता है वह पुनरावृत्ति पाठ कहलाता है। अभ्यास पाठ में एक बार पढ़ी हुई सामग्री को पूर्ववत् ढंग से दुहराते जाते हैं। पर पुनरावृत्ति पाठ में सम्पूर्ण पढ़ी हुई सामग्री का नए एवं भिन्न दृष्टिकोण से अध्ययन किया जाता है जिससे यह प्रतीत हो जावे कि बालक सम्पूर्ण विषय को कितना ग्रहण कर चुका है।

यह पुनरावृत्ति कितने ही ढंग से की जा सकती है। एक विषय एक ही दिन में समाप्त नहीं हो जाता। कई दिनों तक चलता रहता है। अतः विषय की समाप्ति पर विषय की रिपोर्ट बनाने के रूप में, विषय की रूप-रेखा बनाने के रूप में, किसी एक समस्या के रूप में, प्रश्नोत्तर के रूप में, सम्पूर्ण विषय के सारांश के रूप में पुनरावृत्ति पाठ की योजना बनाई जा सकती है। यह पुनरावृत्ति पाठ एक दिन के

पर अभ्यास में यह ध्यान रखना चाहिए कि गलत बात का अभ्यास करने पर वह 'गुजान' के स्थान पर 'प्रजान' भी बना सकता है।

अभ्यास पाठ की अवस्थाएँ—अभ्यास पाठ में निम्नलिखित अवस्थाएँ हुआ करती हैं :—

(१) आवश्यक एवं उपयोगी आदत का निर्माण—जिस आदत का बालक में निर्माण करना हो उसका आवश्यक एवं उचित ज्ञान बालक को करा देना चाहिए। यह कार्य विकासात्मक पाठ की क्रिया द्वारा किया जावेगा। साथ ही बालक में इस बात की प्रेरणा उत्पन्न करनी चाहिए कि वह उस आदत को बनाए रखना चाहता है। जब तक बालक में इस बात की लगन न होगी वह अभ्यास की ओर ध्यान न देगा।

(२) अभ्यास क्रिया के सही तरीके का प्रयोग—अभ्यास करने का सही तरीका बालक को समझाना चाहिए। वैसे अभ्यास करने की कई रीतियाँ हो सकती हैं उनमें से जो सबसे उपयुक्त रीति हो उसी को चुनना चाहिए।

(३) अभ्यास कार्य—यह पाठ का सबसे महत्त्वपूर्ण अंग है। अभ्यास प्रायः नीरस हो जाया करते हैं। अतः उसे नीरस होने से बचाना चाहिए तथा बालक की इच्छानुकूल ही अभ्यास कराना आवश्यक है अन्यथा वह उसे भारस्वरूप समझने लगेगा।

अभ्यास कार्य में अन्य आवश्यक बातें :—

(१) अभ्यास कार्य में कोई बात छूट नहीं जानी चाहिए।

(२) अभ्यास कार्य में बालक की रुचि का पूर्ण ध्यान रखना चाहिए।

(३) अभ्यास में शिथिलता नहीं आनी चाहिए।

(४) अभ्यास कार्य तब तक करना चाहिए जब तक वह दृढ़ आदत एवं स्वयं चालित का रूप धारण न कर ले।

(५) अभ्यास की गति प्रारम्भ में धीमी तथा उत्तरोत्तर तीव्र होनी चाहिए।

(आ) पुनरावृत्ति पाठ—विषय की पूर्णता पर पहुँच कर पुनः सम्पूर्ण विषय पर एक नवीन दृष्टिकोण से ध्यान देना आवश्यक है। विषय सम्बन्धी सम्पूर्ण नवीन सामग्री प्रदान कर चुकने पर उनके परस्पर सम्बन्ध जोड़ने तथा तारतम्य मिलाने के दृष्टिकोण से जो पाठ दिया जाता है वह पुनरावृत्ति पाठ कहलाता है। अभ्यास पाठ में एक बार पढ़ी हुई सामग्री को पूर्ववत् ढंग से दुहराते जाते हैं। पर पुनरावृत्ति पाठ में सम्पूर्ण पढ़ी हुई सामग्री का नए एवं भिन्न दृष्टिकोण से अध्ययन किया जाता है जिससे यह प्रतीत हो जाये कि बालक सम्पूर्ण विषय को कितना ग्रहण कर चुका है।

यह पुनरावृत्ति कितने ही ढंग से की जा सकती है। एक विषय एक ही दिन में समाप्त नहीं हो जाता। कई दिनों तक चलता रहता है। अतः विषय की समाप्ति पर विषय की रिपोर्ट बनाने के रूप में, विषय की रूप-रेखा बनाने के रूप में, किसी एक समस्या के रूप में, प्रश्नोत्तर के रूप में, सम्पूर्ण विषय के सारांश के रूप में पुनरावृत्ति पाठ की योजना बनाई जा सकती है। यह पुनरावृत्ति पाठ एक दिन के

पर अभ्यास में यह ध्यान रखना चाहिए कि गलत बात का अभ्यास करने पर वह 'सुजान' के स्थान पर 'अजान' भी बना सकता है।

अभ्यास पाठ की अवस्थाएँ—अभ्यास पाठ में निम्नलिखित अवस्थाएँ हुआ करती हैं :—

(१) आवश्यक एवं उपयोगी आदत का निर्माण—जिस आदत का बालक में निर्माण करना हो उसका आवश्यक एवं उचित ज्ञान बालक को करा देना चाहिए। यह कार्य विकासात्मक पाठ की क्रिया द्वारा किया जावेगा। साथ ही बालक में इस बात की प्रेरणा उत्पन्न करनी चाहिए कि वह उस आदत को बनाए रखना चाहता है। जब तक बालक में इस बात की लगन न होगी वह अभ्यास की ओर ध्यान न देगा।

(२) अभ्यास क्रिया के सही तरीके का प्रयोग—अभ्यास करने का सही तरीका बालक को समझाना चाहिए। वैसे अभ्यास करने की कई रीतियाँ हो सकती हैं उनमें से जो सबसे उपयुक्त रीति हो उसी को चुनना चाहिए।

(३) अभ्यास कार्य—यह पाठ का सबसे महत्वपूर्ण अंग है। अभ्यास प्रायः नीरस हो जाया करते हैं। अतः उसे नीरस होने से बचाना चाहिए तथा बालक की इच्छानुकूल ही अभ्यास कराना आवश्यक है अन्यथा वह उसे भारस्वरूप समझने लगेगा।

अभ्यास कार्य में अन्य आवश्यक बातें :—

(१) अभ्यास कार्य में कोई बात छूट नहीं जानी चाहिए।

(२) अभ्यास कार्य में बालक की रुचि का पूर्ण ध्यान रखना चाहिए।

(३) अभ्यास में शिथिलता नहीं आनी चाहिए।

(४) अभ्यास कार्य तब तक करना चाहिए जब तक वह दृढ़ आदत एवं स्वयं चालित का रूप धारण न कर ले।

(५) अभ्यास की गति प्रारम्भ में धीमी तथा उत्तरोत्तर तीव्र होनी चाहिए।

(आ) पुनरावृत्ति पाठ—विषय की पूर्णता पर पहुँच कर पुनः सम्पूर्ण विषय पर एक नवीन दृष्टिकोण से ध्यान देना आवश्यक है। विषय सम्बन्धी सम्पूर्ण नवीन सामग्री प्रदान कर चुकने पर उनके परस्पर सम्बन्ध जोड़ने तथा तारतम्य मिलाने के दृष्टिकोण से जो पाठ दिया जाता है वह पुनरावृत्ति पाठ कहलाता है। अभ्यास पाठ में एक बार पढ़ी हुई सामग्री को पूर्ववत् क्रम में दुहराते जाते हैं। पर पुनरावृत्ति पाठ में सम्पूर्ण पढ़ी हुई सामग्री का नए एवं भिन्न दृष्टिकोण से अध्ययन किया जाता है जिससे यह प्रतीत हो जाय कि बालक सम्पूर्ण विषय को कितना ग्रहण कर चुका है।

यह पुनरावृत्ति कितने ही रूप में की जा सकती है। एक विषय एक ही दिन में समाप्त नहीं हो जाता। कई दिनों तक चलता रहता है। अतः विषय की समाप्ति पर विषय की रिपोर्ट बनाने के रूप में, विषय की रूप-रेखा बनाने के रूप में, किसी एक समस्या के रूप में, प्रश्नोत्तर के रूप में, सम्पूर्ण विषय के सारांश के रूप में पुनरावृत्ति पाठ की योजना बनाई जा सकती है। यह पुनरावृत्ति पाठ एक दिन के

पाठ के अन्त में भी हो सकता है तथा कई दिनों तक एक विषय को पढ़ा विषय पर पुनरावृत्ति पाठ भी पढ़ाया जा सकता है।

।) क्रियात्मक पाठ—बालक स्वभाव से क्रियाशील होता है। वह हाथ पर हीं बैठना चाहता। न ही वह गौण रूप से श्रोता ही बना रहना चाहता प्रत्येक वस्तु को अपने हाथ से छूकर, हेर-फेर कर, देख कर उसे अपनी बनाना चाहता है। इस प्रकार की चेष्टा बालक की मूल प्रवृत्तियों के म्मिलित की जाती है।

रम्भ में बालक को किसी कार्य के करने में कड़ा परिश्रम करना पड़ता है। , जिसने लिखने में कुशलता प्राप्त कर रखी हो, बिना किसी परिश्रम के लिख लेता है। पर एक बालक को प्रारम्भ में एक अक्षर लिखने में बड़ा म करना पड़ता है। लेखनी को ताकत से पकड़कर लिखने के प्रयास के पसीना आ जाता है। पर धीरे-धीरे जब वह अभ्यास कर उसमें कुशलता लेता है तो उसे आपत्ति नहीं होती। प्रारम्भ में तकली से सूत निकालने में बड़ी कठिनाई होती है पर कुशलता प्राप्त करने पर ऐसा नहीं होता। इसी प्त करने को प्रावीण्य कहते है। इस कुशलता को प्राप्त करने के लिए जो ढाते हैं उन्हें प्रावीण्य पाठ (Skill Lessons) कहते है।

ावीण्य पाठ (Skill Lessons)—प्रावीण्य पाठ को व्यवहार पाठ भी कहते य पाठ का उद्देश्य किसी आरम्भ की गई क्रिया में निपुणता प्राप्त करना लिपि लिखना, चित्रकला, कातना, बुनना, लोहारी, सुथारी काम, कृषि, ल, टाइप राइटिंग आदि में निपुणता प्राप्त करने में प्रावीण्य पाठों को त होती है। प्रावीण्य पाठ एक प्रकार से अभ्यास पाठ ही है। केवल अन्तर है कि अभ्यास पाठ मानसिक आदत को दृढ़ बनाता है और प्रावीण्य पाठ की क्रियात्मक आदत में निपुणता प्राप्त कराता है।

ावीण्य पाठ की अवस्थायें—प्रावीण्य पाठ में निम्नलिखित अवस्थायें होती

१) शिक्षक द्वारा रुचि की उत्पत्ति—जिस क्रियात्मक आदत में प्रवीणता ाठ दिया जाता है उसके प्रति बालक में रुचि उत्पन्न करना आवश्यक है। यह प्रतीत न होना चाहिए कि यह सब निष्प्रयोजन है। अतः पाठ की ऐसी होनी चाहिए, जो बालक में रुचि उत्पन्न कर सके।

२) कार्य का शिक्षक द्वारा प्रदर्शन (डिमॉन्सट्रेशन)—क्रिया को आरम्भ र्वप्रथम शिक्षक को सही तरीके का क्रमबद्ध प्रदर्शन करना चाहिए। यह हुत धीरे-धीरे होना चाहिए। प्रदर्शन के समय आवश्यकतानुसार पद्धति की करते जाना चाहिए। बालकों के प्रश्नों का, यदि पूछे जायें तो उत्तर देना

३) बालकों द्वारा निरीक्षण—शिक्षक द्वारा क्रिया के प्रदर्शन के समय छात्रों होकर ध्यानपूर्वक उसे देखना चाहिए। तकली से कातना सिखाते समय

बन्दना सदाचार की प्रेरणा देती है। सदाचार पर भाषण, सुभाषित आदि बालकों को सत्पथ पर अग्रसर करते हैं। प्रेरणात्मक शिक्षण चारित्रिक विकास के लिए अत्यन्त आवश्यक है। धार्मिक ग्रंथों, महापुरुषों की जीवनियों से नीति सम्बन्धी दृष्टान्त और कहानियाँ पढ़ा कर *प्रेरणात्मक शिक्षण किया जा सकता है।*

बुनियादी शिक्षानुसार पाठ योजना—बुनियादी शिक्षा समवाय के सिद्धान्त पर आधारित है अतः यथासमय ज्ञानात्मक, क्रियात्मक तथा रागात्मक पाठ पढ़ाये जा सकते हैं। यह अवश्य है कि अध्यापक को पहले से ही बहुत सोच-विचार कर पाठ योजना बना लेनी चाहिए अन्यथा वह कुशलतापूर्वक पाठ नहीं पढ़ा सकेगा।

उद्योग कार्य कराते समय अध्यापक को क्रियात्मक पाठ पद्धति का सहारा लेना चाहिए तथा उद्योग में निपुणता प्राप्त करने के लिए प्रावीण्य पाठ प्रणाली का सहारा लेना चाहिए। साथ ही उद्योग कार्य करते समय अध्यापक को शिक्षाप्रद अवसरों की खोज में रहना चाहिए ताकि अवसर प्राप्त होते ही उसे हाथ से न जाने देवे। अध्यापक को इसमें बड़ी सूझ-बूझ और बुद्धिमानी से काम लेना चाहिए। कार्य सदा ही क्रमबद्ध तथा स्वाभाविक गति लिये हुए होना चाहिए।

उद्योग के क्रियात्मक पाठ तथा प्रावीण्य पाठ के साथ-साथ अध्यापक ज्ञानात्मक एवं रागात्मक पाठ पढ़ा सकता है। बालकों की रुचि के अनुसार सामाजिक एवं *प्राकृतिक वातावरण का शिक्षण किया जा सकता है।* महापुरुषों के जन्म दिवस मनाने के रूप में, राष्ट्रीय उत्सव मनाने के रूप में तथा धार्मिक पर्वों के मनाने के रूप में रसानुभूति पाठ एवं प्रेरणात्मक पाठ पढ़ाए जा सकते है।

तात्पर्य यह है कि बुनियादी शिक्षा में पाठ की योजना अध्यापक की सूझ-बूझ पर निर्भर है। अध्यापक ही अपनी सजगता, जिज्ञासा, रुचि और क्षमता का, उपयुक्त अवसर तथा परिस्थिति के आने पर बालक के ज्ञान में अधिकाधिक उपयोग कर सकता है।

सारांश

पाठ की व्याख्या—समय-विभाग-चक्र के अनुसार एक विषय के जितने अंश का एक पीरियड में ज्ञान कराया जाता है वह उस विषय का पाठ कहलाता है।

पाठों के भेद—पाठ तीन प्रकार के होते हैं—(क) ज्ञानात्मक, (ख) क्रियात्मक, (ग) रागात्मक।

(क) ज्ञानात्मक पाठ—पाठों के प्रकार—(१) विकासात्मक पाठ, (२) दृढ़ात्मक पाठ। दृढ़ात्मक-पाठ के दो भाग—(१) अभ्यास पाठ, अभ्यास पाठ की अवस्थायें—आवश्यक एवं उपयोगी आदत का निर्माण—अभ्यास क्रिया के सही तरीके का प्रयोग—अभ्यास कार्य—अभ्यास कार्य में अन्य आवश्यक बातें। (२) [illegible] पाठ।

(ख) क्रियात्मक पाठ—प्रावीण्य पाठ—प्रावीण्य पाठ की अवस्थायें—शिक्षक

द्वारा रुचि की उत्पत्ति—कार्य का शिक्षक द्वारा प्रदर्शन—बालकों द्वारा निरीक्षण—प्रयोगात्मक प्रयास—आवृत्ति—क्रिया पर मनन—क्रियात्मक पाठ में अन्य आवश्यक बातें।

(ग) रागात्मक पाठ—रसानुभूति पाठ—रसानुभूति के प्रकार—रसानुभूति तथा अन्य पाठों में अन्तर—रसानुभूति पाठ के लिए वातावरण—रसानुभूति पाठ की अवस्थायें—प्रस्तावना—आत्मीकरण—अभ्यास—प्रेरणात्मक पाठ।

बुनियादी शिक्षानुसार पाठ योजना—बुनियादी शिक्षा समवाय के सिद्धांत पर आधारित है अतः यथावसर ज्ञानात्मक, क्रियात्मक तथा रागात्मक पाठ पढ़ाये जा सकते हैं।

अभ्यासार्थ प्रश्न

(१) पाठों के भेद पर संक्षेप में विवेचन कीजिए।

(२) ज्ञानात्मक पाठ से क्या तात्पर्य है? बुनियादी शिक्षा के आधार पर ज्ञानात्मक पाठ के किसी एक भाग की योजना पर प्रकाश डालिए।

(३) बुनियादी शिक्षा के दृष्टिकोण से क्रियात्मक पाठ के लिए आप किस प्रकार की योजना बनायेंगे?

(४) क्या रसानुभूति पाठ के लिए बुनियादी शिक्षा में गुंजाइश है? आप बुनियादी शिक्षा के आधार पर रसानुभूति पाठ किस प्रकार पढ़ायेंगे?

⊙

अध्याय ४

हरबार्ट के पांच सोपान

पाठ की सफलता—वैसे तो पाठ की सफलता कई बातों पर निर्भर है, पर उनमें प्रमुख है पढ़ाने की शैली और पाठ की तैयारी। अध्यापक को पढ़ाने के समय दोनों का ही इस प्रकार प्रयोग करना चाहिए कि पाठ पूर्ण रूप से सफल बने। इससे स्पष्ट है कि पाठ पढ़ाने के पूर्व ही अध्यापक को पढ़ाने की सामग्री तैयार करना है तथा उस सामग्री को वह किस शैली से पढ़ावेगा इसे भी विचार लेना है। यह तो विवादास्पद ही है कि अध्यापक पहले से सोच-विचार कर पाठ की तैयारी कर पढ़ाने जाये या वह आवश्यकता उत्पन्न होने पर केवल सूझ-बूझ से अवसर व वातावरण के अनुसार पढ़ावे। पर प्रायः यही मत जोर पकड़ता जा रहा है कि अध्यापक को पाठ की योजना पहले से तैयार करनी चाहिए और उस पर खूब मनन पहले ही कर लेना चाहिए तभी पाठ अधिक सफल हो सकेगा।

हरबार्ट को सिद्धान्त चतुष्पदी—पाठ पढ़ाने के लिए विषय की तैयारी कर लेने पर भी उसे मनोवैज्ञानिक ढंग से पढ़ाने के लिए प्रसिद्ध शिक्षा शास्त्री हरबार्ट ने एक निश्चित क्रम निर्धारित किया। उसने बालक की स्वाभाविक क्रियाओं और मस्तिष्क के विकास से मेल खाता हुआ एक शिक्षाक्रम निर्धारित किया जिसमें उसने पाठ की चार सीढ़ियाँ बताई :—

(१) स्पष्टता (क्लीयरनेस)—बालक के सामने पढ़ाई जाने वाली वस्तुओं तथा तत्वों को स्पष्टतया उपस्थित करना।

(२) संयोग (एसोसियेशन)—इन उपस्थित की जाने वाली वस्तुओं तथा तत्वों का तारतम्य (सम्बन्ध) बालक के पूर्व ज्ञान से जोड़ना।

(३) व्यवस्था (सिस्टम)—जो सम्बन्ध या सम्पर्क पूर्व ज्ञान और प्रस्तुत ज्ञान में जोड़ा गया है उसका वैज्ञानिक क्रम स्थापित करना।

(४) प्रयोग (मेथड)—नए ज्ञान और पूर्व ज्ञान के सामंजस्य से निष्कर्ष निकालना तथा नए उदाहरणों या परिस्थितियों में उसका अभ्यास करना।

हरबार्ट के पांच सोपान—हरबार्ट की इन चारों सीढ़ियों का उसके अनुयायियों ने गहरा अध्ययन किया तथा उनमें मनोवैज्ञानिक आधार पर रूपान्तर कर उन्हें इन पांच सोपानों के रूप में अंगीकार किया :—

(१) प्रस्तावना।
(२) उद्देश्य कथन।
(३) प्रस्तुतीकरण।
(४) पुनरावलोकन।
(५) प्रयोग।

१. प्रस्तावना—बालकों को जो नया ज्ञान देना है उससे सम्बन्धित कुछ न कुछ ज्ञान किसी न किसी रूप मे बालक को होता है। यह पूर्व ज्ञान पहले पढ़ी हुई वस्तुओं या अनुभव के आधार पर, दैनिक कार्यों के आधार पर, नित्य प्रति के व्यवहार के अनुभव पर तथा कुटुम्ब या मित्रों के सहयोग, आचरण और कथन के आधार पर निर्भर होता है। यह पूर्व ज्ञान प्रायः धूमिल-सा होता है। प्रस्तावना में अध्यापक को चाहिये कि इसी पूर्व ज्ञान को जागृत, व्यवस्थित, एवं निश्चित करे। इस कार्य के लिये अध्यापक द्वारा कई अन्य प्रणालियों के समान निम्नलिखित प्रणालियाँ प्रयोग में लाई जा सकती हैं :—

(१) पहले की जानकारी या ज्ञान को जागृत करने के लिये प्रश्न पूछना।
(२) अध्यापक का अपनी ओर से वर्णन करना।
(३) कोई कहानी कहना।
(४) पूर्व पढ़ाए गये पाठ की पुनरावृत्ति करना।
(५) सरल कविता प्रस्तुत करना।
(६) जीवन की आवश्यकता पर चर्चा करना।

प्रस्तावना उपरोक्त ढंगों में से किसी एक या एक से अधिक ढगों द्वारा या अन्य किसी उपयुक्त ढग द्वारा प्रस्तुत की जा सकती है, पर इसमे निम्नलिखित बातो का ध्यान रखना आवश्यक है :—

(१) वर्णन अथवा प्रश्न ऐसे हों कि नए पाठ की पीठिका तैयार करें न कि इधर उधर भटकावें।

(२) केवल पुरानी पढ़ी हुई बातों को दुहराना असंगत होगा।

(३) प्रस्तावना बहुत लम्बी न होनी चाहिये। सम्पूर्ण पीरियड का अधिक से अधिक पाँचवाँ भाग प्रस्तावना में लगाना चाहिए।

(४) प्रस्तावना अरुचिकर न होनी चाहिए।

(५) प्रस्तावना का अन्त ऐसा होना चाहिए कि नए पढ़ाए जाने वाले पाठ की समस्या बन जाए।

२. उद्देश्य कथन—प्रस्तावना की समाप्ति समस्या मूलक होनी चाहिये। जिससे बालकों को उसके हल को खोजने की प्रेरणा मिल सके। तभी बालक उस पाठ में रुचि ले सकेंगे। उद्देश्य कथन में निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिये :—

(१) उद्देश्य अधिक लम्बा न होना चाहिए। सूक्ष्म होना चाहिए। इसमें केवल एक या दो मिनट का ही समय खर्च होना चाहिए।

(२) उद्देश्य कथन में कोई सिद्धान्त, अवतरण, परिभाषा या टेकनिकल शब्दों का प्रयोग नहीं होना चाहिए।

(३) उद्देश्य कथन की भाषा सरल, स्पष्ट और आसान होनी चाहिए।

(४) उद्देश्य कथन उत्तम पुरुष में होना चाहिए जैसे "आज हम······पढ़ेंगे" आदि। अन्य पुरुष में भी किया जा सकता है पर वह प्रभावोत्पादक नहीं होता।

३. प्रस्तुतीकरण—यह पाठ का मूल भाग है। प्रस्तावना में उत्पन्न की समस्या का हल इसी के द्वारा प्राप्त होता है। छात्र के सामने पढ़ाए जाने वाले तथ्य को मनोवैज्ञानिक ढंग से रखा जाता है। सहायक सामग्री अर्थात् चित्र, मॉडल, मूर्ति मानचित्र आदि सभी इसी अवस्था में उपस्थित किये जाते हैं। इस अवस्था के लिये अध्यापक को निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए :—

(१) जो ज्ञान उस पीरियड में पाठ के रूप में देना है उसको दो या तीन अन्वितियों (यूनिट्स) में बाँट लेना चाहिए। पर यह ध्यान रहे कि उनका परस्पर सम्बन्ध न टूटे तथा वे स्वाभाविक तारतम्य के अनुसार एक के बाद दूसरी आते जायें।

(२) प्रत्येक अन्विति में तत्त्वों को मनोवैज्ञानिक ढंग से प्रस्तुत किया जाना चाहिए ताकि छात्र आसानी से सीख सकें अर्थात् सरल बात पहले और कठिन बात बाद में सिखाई जानी चाहिए।

(३) प्रस्तुतीकरण की अवस्था में शिक्षण सूत्रों के आधार पर ही अध्यापक को बालकों में सीखने की प्रेरणा, रुचि उत्पन्न कर उन्हें निष्कर्ष निकालने को प्रोत्साहित करना चाहिए।

(४) श्यामपट्ट का प्रयोग अधिक करना चाहिए साथ ही बालकों को भी उनकी कापी में लिखते रहने को प्रेरित करना चाहिए।

(५) बालकों का अधिकाधिक सहयोग प्राप्त कर उन्हें क्रियाशील रखना चाहिए।

(६) प्रश्नों द्वारा बालकों का सहयोग प्राप्त करते हुए पाठ को आगे बढ़ाना चाहिए।

(७) पढ़ाते समय शीघ्रता या उतावली प्रदर्शित करना उचित नहीं।

(८) पीरियड का अधिकांश समय इसी में व्यय होना चाहिए।

(९) आवश्यकतानुसार पाठ विशेष का अन्य विषयों से भी तुलनात्मक तारतम्य मिलाना चाहिए।

४. पुनरावलोकन—पाठ को पढ़ाए जाने के बाद, अर्थात् जितना ज्ञान उस समय देना आवश्यक था उसको दे देने के बाद, पाठ की मुख्य-मुख्य बातों को संक्षेप में दुहराना चाहिए। यह कार्य प्रश्नों द्वारा किया जाता है जिससे यह प्रतीत हो जाए कि बालक पाठ को कहाँ तक समझ पाये हैं। इस अवस्था में नीचे लिखी बातों का ध्यान रखना आवश्यक है :—

(१) पुनरावलोकन का अर्थ पुनः पढ़ाना नहीं है। अतः पाठ की खास-खास बातों को ही प्रश्नों द्वारा बालकों से निकलवा लेना चाहिए।

(२) इन बातों को भी क्रमवार व्यवस्थित रूप में निकलवाना चाहिए ताकि बालक के मस्तिष्क में उनका जमा हुआ क्रम न टूटे।

(३) पुनरावलोकन क्रिया में अधिक समय न लगाना चाहिए। अधिक से अधिक ५ या ६ मिनिट का समय लगाया जा सकता है।

(४) पाठ की प्रस्तुतीकरण की अवस्था भी इतनी लम्बी न हो जानी चाहिए कि पुनरावलोकन छूट ही जाय।

५. **प्रयोग या अभ्यास कार्य**—जो ज्ञान बालक ने प्राप्त किया है उस का अभ्यास या प्रयोग कराया जाना भी आवश्यक है ताकि यह पता चल जाय कि बालक को उस ज्ञान का उचित प्रयोग भी आ गया है या नहीं। विभिन्न परिस्थितियाँ उत्पन्न कर पढ़े हुए तथ्यों का बालक द्वारा प्रयोग कराया जाना चाहिए। इससे वे नये ज्ञान को व्यवहृत करना सीख जायेंगे। इसमें निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना आवश्यक है :—

(१) प्रयोग इतने कठिन न होने चाहिएँ कि बालक उनसे मुँह मोड़ ले।

(२) प्रयोग वर्णन लिखा कर, मानचित्र लिखा कर, चित्र तैयार करा कर या अन्य कई रूपों में कराये जा सकते हैं।

(३) यह उस पाठ एवं पीरियड की अन्तिम क्रिया है। पर कभी-कभी प्रयोग उसी पीरियड में समाप्त नहीं हो पाते अतः उन्हें गृह-कार्य के रूप में घर से कर लाने को भी दिया जा सकता है।

(४) प्रयोग या अभ्यास-कार्य की भी उतनी ही महत्ता है जितनी पाठ के अन्य सोपानों की। अतः इसे कभी छोड़ न देना चाहिए।

पाँचों सोपानों का विश्लेषण—हरबार्ट के ये सोपान पाठ को मनोवैज्ञानिक आधार पर क्रमबद्ध करते हैं। वैसे तो प्रत्येक समय के अच्छे अध्यापकों ने जाने अनजाने इन सोपानों का प्रयोग किया ही है तथापि हरबार्ट ने उनको मनोवैज्ञानिक आधार पर क्रमबद्ध किया। यही इस शिक्षाशास्त्री की विशेषता है। हरबार्ट के अनुयायियों ने उन सोपानों का क्रम अधिक सुधार कर उन्हें अधिकाधिक उपयोगी बनाने की विवेचना की।

पाठ पढ़ाने के लिए अध्यापक को तैयारी करना अत्यन्त आवश्यक है। कम से कम उसे पढ़ाई जाने वाली वस्तुओं पर शिक्षण सूत्रों के आधार पर यह अवश्य मनन कर लेना चाहिए कि बालक के सामने यह सरल ज्ञान सबसे पहले रखा जायगा और इस क्रम से आगे बढ़ा जायगा। क्रमबद्ध बढ़ने के इस दृष्टिकोण से हरबार्ट के ये सोपान बड़े ही महत्वपूर्ण हैं।

ये सोपान ही प्रत्येक पाठ का आधार हैं। चाहे पाठ कक्षा में पढ़ाया जाने वाला हो या कक्षा के बाहर। इन सोपानों के आधार पर उसका क्रम बाँधने से अवश्य सफलता मिलेगी। हरबार्ट की शिक्षा जगत को यही बड़ी भारी देन है।

बुनियादी शिक्षा तथा पाँच सोपान—शिक्षा क्षेत्र में पठन-पाठन की कई पद्धतियाँ प्रचलित हैं जैसे डाल्टन प्लान, प्रोजेक्ट मैथड, मॉन्टेसरी प्रणाली, विनेटिका, बटेविया, ह्यूरिस्टिक मैथड आदि। हरबार्ट के पाँचों सोपान प्रत्येक शिक्षण पद्धति में अलग-अलग रूप से अपनाए जाते हैं। प्रोजेक्ट पद्धति में एक ही प्रोजेक्ट कई दिनों तक चलता है। अतः उसकी प्रस्तावना पहले पहल आवश्यकता उत्पन्न करने के दृष्टिकोण से ही होगी। इसी प्रकार अन्य सोपान भी आवश्यकतानुसार ही प्रयोग में लाये जायेंगे।

बुनियादी शिक्षा में भी यह बात है। बुनियादी शिक्षा में समवाय शिक्षा यदि विधिपूर्वक चले तो पहले विषय का पुनरावलोकन ही अन्त में नई समस्या उत्पन्न करता हुआ नए पाठ की प्रस्तावना बन जाएगा। इस प्रकार अभ्यास कार्य अथवा प्रयोग समवायी पाठ के समाप्त होने पर ही होगा। यही नहीं बुनियादी शिक्षा में इन पाँचों सोपानों के प्रयोग में भिन्नता तब भी लक्षित होगी जब कि अध्यापक एक समय एकविषयी समवायी पाठ पढ़ा रहा हो। दूसरी बार द्विविषयी समवायी पाठ पढ़ा रहा हो। या बहुविषयी समवायी पाठ पढ़ा रहा हो। इन सभी प्रकार के पाठों के पढ़ाने के ढंग में इन पाँचों सोपानों के प्रयोग में अवश्य भिन्नता लक्षित होगी। बुनियादी शिक्षा में इन पाठों के पढ़ाने के ढंग भी आजकल दो रूप से देखे गए हैं। जहाँ द्विविषयी समवायी पाठ या बहुविषयी समवायी पाठ पढ़ाने का ध्येय है वहाँ पहले उद्योग कार्य कराकर उसी से एक विषय का समवाय बाँधा जाता है और फिर इस विषय से दूसरे विषय का और इसी तरह से आगे भी। पर दूसरी प्रणाली यह देखने में आती है कि उद्योग से एक विषय का समवाय बाँध कर फिर पुनः उद्योग से दूसरे विषय का और फिर उद्योग से तीसरे विषय का और इसी प्रकार चौथे विषय का समवाय भी उसी उद्योग से बाँधा जाता है। कुछ विद्वानों का मत है कि ऐसे पाठों को बहुविषयी समवायी पाठ नहीं कहा जा सकता। इन्हें एक साथ पढ़ाये जाने वाले चार एकविषयी समवायी पाठ कहना ही उपयुक्त होगा। इनकी सार्थकता पर तो आगे समवाय के अध्याय में विवेचन किया जायगा पर यहाँ यह अवश्य है कि इन दोनों प्रकार की प्रणालियों में पंच सोपानों के प्रयोग मे भिन्नता आ जाएगी। दूसरी प्रणाली के द्वारा अध्ययन के समय पुनरावलोकन आगे के पाठ की प्रस्तावना नहीं बनेगा। वरन् दूसरे विषय के पाठ के पढ़ाने के समय पुनः उद्योग सम्बन्धी प्रस्तावना दुहरानी पड़ेगी और यही क्रम आगे के विषयों के पढ़ाने के लिए भी लागू होगा।

इस प्रकार बुनियादी शिक्षा हरबार्ट की शिक्षा जगत् को देन की अवहेलना नहीं करती। इन सोपानों की वैज्ञानिकता को यह अक्षरशः निभाती है।

सारांश

पाठ की सफलता—पाठ की सफलता अन्य कई बातों के साथ पढ़ाने की शैली और पाठ की तैयारी पर निर्भर है। अतः अध्यापक को पाठ की योजना पहले से तैयार करनी चाहिए।

हरबार्ट की सिद्धान्त चतुष्पदी—हरबार्ट ने बालक की स्वाभाविक क्रियाओं और मस्तिष्क के विकास से मेल खाता हुआ एक शिक्षा क्रम निर्धारित किया जिसमें उसने पाठ की चार सीढ़ियाँ बताईं—(१) स्पष्टता, (२) संयोग, (३) व्यवस्था, (४) प्रयोग।

हरबार्ट के पाँच सोपान—हरबार्ट के इन चारों सिद्धान्तों में अनुयायियों ने परिवर्तन कर उन्हें इन पाँच सोपानों के रूप में अंगीकार किया—(१) प्रस्तावना, (२) उद्देश्य कथन, (३) प्रस्तुतीकरण, (४) पुनरावलोकन, (५) प्रयोग।

प्रस्तावना—बालकों के पूर्व ज्ञान को नए ज्ञान से जोड़ने की शृंखला को

प्रस्तावना कहते हैं। यह रोचक व संक्षेप में होनी चाहिये और अन्त में समस्या उत्पन्न होनी चाहिये।

उद्देश्य कथन—प्रस्तावना के पश्चात् उस समस्या का हल स्पष्ट करने के प्रयास से जो कथन कहा जाता है उसे उद्देश्य कथन कहते हैं।

प्रस्तुतीकरण—यह कम से कम एक और अधिक से अधिक तीन अन्वितियों में बँटा हुआ मूल पाठ है।

पुनरावलोकन—पढ़ाये गए पाठ की खास-खास बातों को दुहराना आवश्यक है। इसी क्रिया को पुनरावलोकन या पुनरावृत्ति कहते हैं।

प्रयोग या अभ्यास कार्य—बालक ने जो ज्ञान प्राप्त किया है उसके अभ्यास के लिए जो क्रिया की जाती है उसे अभ्यास कार्य कहते हैं।

पाँचों सोपानों का विश्लेषण—हरबार्ट के पांचों सोपानों की क्रियाओं को अच्छे अध्यापक पहले भी किसी न किसी रूप में प्रयोग करते थे पर हरबार्ट ने उनको क्रमबद्ध कर शिक्षा जगत में बड़ा महत्वपूर्ण कार्य किया है।

बुनियादी शिक्षा तथा पांच सोपान—शिक्षा क्षेत्र में प्रचलित शिक्षण पद्धतियां इन सोपानों को आवश्यकतानुसार प्रयोग करती हैं। बुनियादी शिक्षा भी इन सोपानों की अवहेलना नहीं करती वरन् इनकी मनोवैज्ञानिकता को अक्षरशः निभाती है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

(१) हरबार्ट की शिक्षा चतुष्पदी से क्या तात्पर्य है? यह शिक्षा जगत की महत्वपूर्ण देन क्यों कही जाती है?

(२) हरबार्ट के पाँच सोपान कौन-कौन से हैं? उनमें से प्रत्येक की संक्षिप्त विवेचना कीजिए।

(३) बुनियादी शिक्षा में पाँचों सोपानों को अपनाने की क्षमता कहाँ तक है तथा क्या उनको रूपान्तरित कर अपनाना आवश्यक है? विवेचना कीजिए।

अध्यापन की युक्तियाँ (टीचिंग डिवाईसेज़)

(क)

मौखिक शिक्षण

(कथन, भाषण और व्याख्या)

मौखिक शिक्षण का स्वरूप—बालक दो प्रकार से ज्ञान प्राप्त करता है। प्रथम स्वयं अनुभव द्वारा अर्थात् बालक वातावरण से अपनी ज्ञानेन्द्रियों द्वारा स्वयं ज्ञान प्राप्त करता है। द्वितीय प्रकार यह है कि वह दूसरों के बताने से ज्ञान प्राप्त करता है। यह बताना भी दो प्रकार का होता है, एक तो मौखिक शिक्षण द्वारा और दूसरा लिखित विधि अर्थात् पुस्तक विधि द्वारा। बालक को कुटुम्बी जन, मित्र, अध्यापक आदि जो कहकर बात समझाते हैं या ज्ञान कराते हैं वह मौखिक विधि से प्राप्त किया हुआ ज्ञान है। बालक स्वयं पुस्तक पढ़कर जो ज्ञान प्राप्त करता है यह पुस्तक विधि से प्राप्त किया हुआ ज्ञान है। दूसरों के द्वारा बताये जाने के आधार पर प्राप्त होने वाले ज्ञान की इन दोनों विधियों में से पुस्तक विधि का वर्णन एक अलग अध्याय में किया जायेगा। यहाँ केवल मौखिक शिक्षण पर ही प्रकाश डाला जायेगा।

शिक्षा बालक को ज्ञान प्राप्त कराती है। अतः अध्यापक का प्रयास यही होता है कि बालक को ज्ञान प्रदान करे। वह स्वयं कुछ तथ्यों, सिद्धान्तों और बातों को जानता है। वह अनुभवी भी है। उन्हीं सब बातों को वह कह कर बालकों को बताता है। इस विधि को मौखिक विधि कहते हैं।

मौखिक शिक्षण की विशेषतायें—शिक्षा के आरम्भ और उसके इतिहास के अध्ययन से पता चलता है कि शिक्षण की यही विधि सबसे प्राचीन है। मनुष्य ने जो अनुभव या ज्ञान प्राप्त किया है उसका वर्णन वह अपने कुटुम्बीजनों, मित्रों, साथियों के सम्मुख कर देता था। उस कथन को सुनकर श्रोता ज्ञान प्राप्त कर लेता था। शनैः शनैः गुरुकुल एवं आश्रम खुले। गुरु शिष्यों को मौखिक शिक्षा देते थे। इस समय पुस्तकों का अभाव था क्योंकि मुद्रण कला के अभाव में हस्तलिखित पुस्तकों की रचना एवं उनकी प्रतिलिपियाँ अत्यन्त कष्ट-साध्य थीं। धीरे-धीरे मुद्रण कला के आविष्कार ने पुस्तकों की सुविधा कर ज्ञान प्राप्ति को सुविधाजनक बना दिया है तथापि पुस्तक से पाठ के पढ़ाते समय अध्यापक को मुँह से स्पष्ट भी करना ही होता है। अतः वर्तमान शिक्षा में पुस्तक विधि एवं मौखिक विधि का मिश्रण है। इस मौखिक शिक्षण की निम्न विशेषताएँ हैं :—

(१) मौखिक शिक्षण बालकों का ध्यान आकृष्ट करने में अधिक सफल होता है क्योंकि अध्यापक बोलते समय अपने उच्चारण प्रभावोत्पादक बना लेता है जिसका पुस्तक विधि में अभाव है।

(२) बालक की व्यक्तिगत रुचि एवं क्षमता के अनुसार अध्यापक बालक को शिक्षा दे सकता है पर पुस्तक विधि एक ही डंडे से सभी भेड़ों को हाँकने वाली कहावत को चरितार्थ करती है।

(३) अध्यापक द्वारा दिया गया ज्ञान नवीनतम भी होगा जब कि पुस्तक पुरानी पड़ जाने पर उसका ज्ञान भी पिछड़ा हुआ हो सकता है।

(४) मौखिक विधि से पढ़ाई तीव्र गति से सम्भव हो सकती है।

(५) अध्यापक विषय को सरलतम बना कर बालकों के सामने रख सकता है।

मौखिक शिक्षण के दोष—मौखिक शिक्षण में विशेषताओं की अपेक्षा दोष अधिक हैं। ये दोष भी इसलिए उत्पन्न हुए हैं कि अध्यापक मौखिक विधि का ही प्रयोग कक्षा में अधिक करते हैं। शिक्षा की नवीनतम पद्धतियों में बनाई गई विधियों का प्रयोग नहीं करते। मौखिक विधि के कुछ दोष इस प्रकार हैं —

(१) मौखिक शिक्षण में बालक गौण रूप में श्रोता बना रहता है। वह निष्क्रिय बना रहता है जबकि बालक को कक्षा में सक्रिय रहना चाहिए। इस प्रकार यह विधि मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों के अनुकूल नहीं ठहरती।

(२) अध्यापक का बोलना यदि रुचिकर नहीं है तो बालक ऊँघने लग जाते हैं या अनुशासन भंग करते हैं।

(३) कभी-कभी अध्यापक बोलने पर नियन्त्रण न रखकर आवश्यकता से अधिक व्याख्या करने लग जाते हैं। जिससे समय नष्ट हो जाता है।

(४) अध्यापक का बोलना यदि बहुत अधिक प्रभावोत्पादक है तो बालक अध्यापक के प्रदर्शन में रुचि रख कर विषय की ओर ध्यान नहीं देते।

(५) मौखिक शिक्षण से बताई गई बात को बालक केवल एक ही बार सुन पाता है और यदि वह भूल गया तो पुनः जानने का अन्य कोई साधन नहीं रहता।

(६) अध्यापक बोलते समय प्रवाह में बहते हुए कठिन शब्दों या आलंकारिक भाषा का प्रयोग करने लग जाते हैं, जो बालकों की समझने की शक्ति के परे होती है।

मौखिक शिक्षण के प्रकार—वैसे तो मौखिक शिक्षण कई प्रकार का होता है पर उनमें से निम्नलिखित मुख्य हैं :—

(१) कथन (Narration) विधि।

(२) भाषण (Lecture work) विधि।

(३) व्याख्या (Exposition) विधि।

(४) प्रश्नोत्तर (Questions and Answers) विधि।

(५) चर्चा (Discussion) विधि।

इनमें से प्रथम तीन में तो परस्पर कोई विशेष अन्तर नहीं। केवल सुगमता के लिए इन्हें अलग-अलग मान लिया गया है।

१. **कथन विधि**—बालकों को कहानियाँ, घटनाओं का विवरण, मनोरंजक

बातें, आत्म-चरित या जीवन-चरित बताए जाते हैं। इन्हीं के बताने को कथन विधि कहते हैं। बालक स्वाभाविक रूप से इनमें बड़ी रुचि लेते हैं। इनके द्वारा बालक में वीरता, धैर्य, परोपकार, कर्त्तव्यनिष्ठा, धर्मनिष्ठा, नैतिकता, स्वावलम्बन आदि गुण उत्पन्न किये जा सकते हैं। इस विधि द्वारा, भूगोल, इतिहास, विज्ञान साहित्य आदि विषयों को रोचक ढंग से पढ़ाया जा सकता है। अन्य विषय भी इस विधि द्वारा बड़ी सरलता से पढ़ाये जा सकते हैं। इस विधि के प्रयोग के समय निम्नलिखित बातों का शिक्षक को ध्यान रखना चाहिये :—

(१) कथन को अलग-अलग अन्वितियों में बाँट लेना चाहिये। तत्पश्चात् सरलतापूर्वक बालक के सामने रखना चाहिए। जैसे घटना के वर्णन में (१) कारण, (२) गति, (३) परिणाम अलग-अलग स्पष्ट होने चाहिएँ। जीवनचरित व आत्म-चरित को बाल्यावस्था, युवावस्था, वृद्धावस्था तथा उनके कार्यों में विभाजित कर लेना चाहिए। इसी प्रकार कहानी को प्रारम्भ, मध्य और अन्त में बाँट लेना चाहिए।

(२) कथन का ढंग एवं कथावस्तु छात्रों की आयु, बौद्धिक स्तर, रुचि और क्षमता के अनुकूल होनी चाहिये।

(३) विवरण ऐसा होना चाहिए कि छात्रों की कल्पना शक्ति जागृत हो।

(४) कथन के समय अध्यापक का बार-बार रुकना, सोचना या अटकना उचित नहीं।

(५) कथन का निष्कर्ष अपनी ओर से न कहकर बालकों से निकलवाना चाहिये।

(६) कथन का वस्तुसार (Matter) जीवन से दूर नहीं होना चाहिये वरन् काल्पनिक होते हुये भी उसमें सत्यता, यथार्थता स्पष्ट झलकनी चाहिये। बालकों के सामने पूरा दृश्य खिंच जाना चाहिये।

(७) कथन के समय अध्यापक के हाव-भाव कथन की गति एवं वर्णन के अनुकूल होने चाहिएँ।

(८) कथन में उसे आवश्यक सामग्री—चित्र, मॉडल आदि की सहायता लेनी चाहिये।

(९) छात्रों को कहानी कहने को प्रेरित करना चाहिये।

२. भाषण विधि—जब लगातार एक ही विषय पर बोला जाता है तब उसे भाषण कहते हैं। यह भाषण विधि मौखिक विधि की सबसे निकृष्ट प्रणाली है। यह छोटे बालकों के अनुकूल कदापि नहीं ठहरती। इस भाषण विधि का प्रयोग ऊँची कक्षा के बड़े छात्रों के लिये ही उपयुक्त ठहरता है। इस विधि में रोज छात्रों का निष्क्रिय होकर सुनना, लड़कों का गौण रूप से बैठा रहना, वक्ता और श्रोता में सहयोग का अभाव आदि कई असंतोषप्रद बातें हैं। उच्च शिक्षा में प्रायः इसी विधि का प्रयोग होता आ रहा है और छोटे बालक भी इस विधि के शिकार बनाये जाने लगे हैं। अतः जहाँ तक हो सके बालकों को इस विधि से पढ़ाने के ढंग से बचाना

चाहिये। पर नितान्त आवश्यकता आ पड़ने पर निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिये :—

(१) जो कुछ पढ़ाना हो उसका क्रम पहले से निर्धारित कर उसी क्रम से भाषण देना चाहिये ताकि बाद में यह कहना न पड़े कि यह मुझे पहले बता देना चाहिये था।

(२) बोलने की गति बड़ी ही धीमी होनी चाहिये क्योंकि छात्रों को सुनकर समझने मे कुछ समय चाहिए।

(३) जिस विषय पर भाषण देना हो उस विषय को छात्रों को एक दिन पहले पढ़कर आने को कह देना चाहिए ताकि वे भाषण को ठीक प्रकार समझ सकें।

(४) भाषण के अन्त में खास-खास बातो को पुनरावृत्ति के रूप में बता देना चाहिये।

(५) भाषा सरल एवं बोधगम्य होनी चाहिये।

(६) भाषण सुनते समय छात्रों को नोट्स लेने के लिए प्रेरित करना चाहिए यदि भाषण स्वयं अध्यापक न देकर उस विषय पर बालकों द्वारा भाषण दिलाने का प्रयास करे तो उत्तम होगा। बालकों को भाषण देने के लिये प्रोत्साहित करने में उनसे पूरी तैयारी करानी होगी जिससे बालक विषय को पूरी तरह समझ जाते हैं। उन्हें अपने विचारों को व्यक्त करने की शैली को सीखने का अवसर मिल जाता है। इसके लिए निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना आवश्यक है :—

(१) कक्षा या पूरी शाला में वाद-विवाद का विषय रखकर बालकों से भाषण दिलाये जा सकते हैं।

(२) विषय के चुनाव में भी छात्रों की सहायता ली जानी चाहिए ताकि वे भाषण की तैयारी और बोलने मे रुचि ले सकें।

(३) छात्रों को भाषण की तैयारी करने के लिए पर्याप्त समय देना चाहिए तथा उनकी तैयारी में सहायता देनी चाहिये।

(४) अच्छे भाषण देने वाले बालकों को प्रोत्साहित करना चाहिए।

(५) जो ठीक ढंग से भाषण न दे सकें उन्हें हतोत्साहित नहीं करना चाहिए वरन् उनकी कमियों को अध्यापक को दूर करना चाहिए।

३. व्याख्या विधि—व्याख्या से तात्पर्य है किसी कठिन कथन, वाक्य या शब्द को समझाने की दृष्टि से उसका अर्थ स्पष्ट करना अर्थात् कठिन बात को सरलता से समझाना। भाषा के शिक्षण ही में व्याख्या की आवश्यकता अधिक होती है। व्याख्या विधि मे अध्यापक को निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए :—

(१) अध्यापक का भाषा पर अधिकार होना चाहिए। उसका अध्ययन विस्तृत होना चाहिए तथा तत्काल उदाहरणों द्वारा बात को स्पष्ट करने का गुण उसमें होना चाहिये।

(२) व्याख्या आवश्यकता से अधिक लम्बी न होनी चाहिए।

(३) सरल शब्द की व्याख्या करना आवश्यक नहीं। केवल कठिन शब्द या वाक्य ही की व्याख्या करना आवश्यक है।

(४) व्याख्या उचित स्थल पर ही करना आवश्यक है। प्रसंग के उपस्थित होते ही व्याख्या की जानी चाहिए।

(५) व्याख्या सरल होनी चाहिए। कठिन बात को यदि अध्यापक क्लिष्ट शब्दों में ही स्पष्ट करेगा तो उससे कोई प्रयोजन सिद्ध न होगा।

(६) यथासंभव हो यदि व्याख्या बालकों से ही कराई जाय, अध्यापक तो केवल उनको सहयोग ही दे।

(७) व्याख्या अर्थ कथन, पर्यायवाची शब्द द्वारा, परिभाषा बतला कर वस्तु दिखला कर या उसका मॉडल, चित्र, नमूना, दिखा कर, श्याम पट्ट पर चित्र खींचकर अभिनय द्वारा जैसे भ्रूभंगिमा के लिए अध्यापक स्वयं का प्रदर्शन कर, शब्द के विग्रह द्वारा, संधि विच्छेद द्वारा, व्युत्पत्ति द्वारा शब्द का मातृ-भाषा में अनुवाद द्वारा स्पष्ट की जा सकती है। अतः अध्यापक को इन साधनों में से उपयुक्त साधन प्रयोग में लाने चाहिएँ।

प्रश्नोत्तर विधि और चर्चा विधि का विवेचन आगामी अध्यायों में किया जायेगा।

सारांश

मौखिक शिक्षण का स्वरूप—बालकों को कह कर जो ज्ञान प्राप्त कराया जाता है उसे मौखिक शिक्षण कहते हैं।

मौखिक शिक्षण की विशेषताएँ—मौखिक विधि अध्यापन की सब से प्राचीन विधि है। इसमें ये विशेषताएँ हैं :—(१) बालकों का ध्यान आकृष्ट करने में अधिक सफल है। (२) बालक की व्यक्तिगत रुचि एवं क्षमता के अनुकूल इसका प्रयोग किया जा सकता है। (३) नवीनतम ज्ञान दिया जाता है। (४) पढ़ाई की गति में तीव्रता रहती है। (५) विषय को सरलतम बनाया जा सकता है।

मौखिक शिक्षण के दोष—इस विधि में गुणों की अपेक्षा दोष अधिक हैं :—(१) बालक निष्क्रिय रहता है। (२) अरुचिकर अध्ययन पर बालक ऊँघने लग जाते हैं। (३) अध्यापक आवश्यकता से अधिक व्याख्या कर बैठते हैं। (४) बालक विषय की ओर ध्यान न देकर अध्यापक के बोलने की ओर ध्यान देने लग जाता है। (५) बालक को केवल एक ही बार बात को सुनने का अवसर मिलता है। (६) अध्यापक कठिन शब्दों का प्रयोग करने लग जाते हैं।

मौखिक शिक्षण के प्रकार—चार प्रकार मुख्य हैं :—(१) कथन विधि, (२) भाषण विधि, (३) व्याख्या विधि तथा (४) प्रश्नोत्तर विधि।

१. कथन विधि—बालकों को कहानियाँ, घटनाओं का विवरण, मनोरंजक बातें, आत्म-चरित या जीवन चरित बताए जाते हैं। इन्हीं के बताने को कथन

विधि कहते हैं।

२. भाषण विधि—लगातार एक ही विषय पर बोला जाता है उसे भाषण विधि कहते हैं। यह असन्तोषप्रद विधि है। इस विधि में इस प्रकार सुधार किया जा सकता है कि अध्यापक स्वयं भाषण न देकर बालकों से भाषण दिलाने का प्रयत्न करे।

३. व्याख्या विधि—किसी कठिन कथन, वाक्य या शब्द को सरलतापूर्वक समझाने को ही व्याख्या विधि कहते है। भाषा के शिक्षण ही में व्याख्या की आवश्यकता होती है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

(१) मौखिक विधि से क्या तात्पर्य है ? उसके गुण-दोषों की विवेचना कीजिए।

(२) मौखिक विधि कितने प्रकार की होती है ? उनमें से किसी एक प्रकार पर प्रकाश डालिए।

(३) भाषण विधि में क्या-क्या दोष है ? उसको उपयोगी कैसे बनाया जा सकता है ?

अध्यापन की युक्तियाँ (टीचिंग डिवाईसेज़)

(ख)

मौखिक शिक्षण (प्रश्नोत्तर)

इससे पूर्व के अध्याय में मौखिक शिक्षण विधि पाँच प्रकार की बताई गई है। उनमें से तीन का विवेचन उसी में किया गया है। चौथी विधि है प्रश्नोत्तर विधि। यहाँ इसी विधि का विवेचन किया जायगा।

प्रश्नोत्तर विधि की महत्ता—प्रत्येक शिक्षक यह जानता है कि अध्यापन में प्रश्नों का बड़ा महत्त्व है। प्रश्नों के द्वारा ही अध्यापक बालक को आसानी से ज्ञान करा सकता है। अध्यापन की सफलता बहुत कुछ प्रश्न पूछने की कला और उनके उत्तर प्राप्त करने पर निर्भर है। प्रश्न पूछे जाने के निम्न प्रयोजन होते हैं :—

(१) प्रश्न पूछकर अध्यापक यह जान सकता है कि बालक को कितना ज्ञान है और आगे की पढ़ाई कहाँ से शुरू करनी चाहिए। बालक पढ़ाई के लिए तैयार है या नहीं।

(२) पाठ पढ़ाते समय प्रश्न पूछ कर यह पता लगाया जा सकता है कि बालक का ध्यान अन्यत्र तो नहीं है। उसका मस्तिष्क क्रियाशील है अथवा नहीं।

(३) प्रश्न पूछ कर बालक को स्वयं सोचने की ओर प्रवृत्त किया जा सकता है। उसकी रुचि और जिज्ञासा को जागृत किया जा सकता है।

(४) बालक ने कितना ज्ञान प्राप्त कर लिया है, इसे पढ़ाए हुए पाठ पर प्रश्न पूछ कर मालूम किया जा सकता है।

(५) पूरे सत्र की पढ़ाई पर प्रश्न पूछकर छात्र को आगे की कक्षा में चढ़ाने के लिए उसका मूल्यांकन किया जा सकता है।

इस प्रकार पढ़ाते समय प्रश्न सप्रयोजन पूछे जाते हैं। ये बालक के पूर्व ज्ञान का पता लगाने और नया ज्ञान देने के लिए पृष्ठभूमि तैयार करने के सफल साधन हैं। यह प्रश्नोत्तर विधि प्राचीन काल से चली आ रही है। सुकरात की पढ़ाने की विधि में भी प्रश्नोत्तर विधि को महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त था।

पर यह अवश्य है कि प्रश्नोत्तर विधि पढ़ाने की अकेली विधि नहीं हो सकती। नया ज्ञान केवल प्रश्न पूछकर नहीं दिया जा सकता। प्रश्न पूछकर तो यह पता लगाया जा सकता है कि बालक किस सीमा तक ज्ञान से परिचित है तथा नया ज्ञान कहाँ से व किस प्रकार से प्रदान किया जा सकता है। अतः प्रश्नोत्तर विधि पढ़ाने के लिए एक सहायक विधि है, क्योंकि प्रश्नों के उत्तर प्राप्त कर उनकी कमियों को दूर करते हुए नया ज्ञान बताया जाता है।

प्रश्नों के प्रकार—प्रश्नों के कोई सर्वमान्य भेद नहीं हैं। प्रत्येक विचारक

अपने दृष्टिकोण से प्रश्नों के भेद कर डालता है। साधारणतया किसी-न-किसी उद्देश्य या अवस्था को लेकर प्रश्नों के भेद कर दिये जाते हैं। प्रश्नों के निम्नलिखित भेद अब तक किए जा चुके हैं :—

(१) बालक की मानसिक क्रिया के आधार पर—बालक की मानसिक क्रिया के आधार पर प्रश्न दो प्रकार से विभाजित किये जा सकते हैं। (क) स्मृति प्रश्न—प्राप्त ज्ञान को दुहराने के लिए किए जाते हैं। (ख) विचारोत्तेजक प्रश्न—नई बात के लिए सोचने को बाध्य करते हैं।

(२) पाठ्य-सामग्री के आधार पर—पाठ्य-सामग्री के आधार पर प्रश्न दो प्रकार के हो सकते हैं। (क) खंडशः प्रश्न—विषय के किसी एक खंड पर पूछे जाएँ। (ख) विषयागी प्रश्न—पूर्ण विषय पर पूछे जाएँ।

(३) उद्देश्य के आधार पर—उद्देश्य के आधार पर प्रश्न दो प्रकार के होते हैं। (क) परीक्षण प्रश्न—पूर्ण ज्ञान की जानकारी प्राप्त करने हेतु पूछे जाते हैं। (ख) शिक्षण प्रश्न—बालक को पाठ पढ़ाते समय शिक्षण को आगे बढ़ाने के लिए पूछे जाते हैं।

(४) ज्ञान प्राप्ति के आधार पर—बालक ने विषय का कितना ज्ञान प्राप्त कर लिया है इस दृष्टि से प्रश्न दो प्रकार के पूछे जाते हैं। (क) तथ्य प्रश्न—पढ़ाए गए पाठ के तथ्यों को बालक से निकलवाने के लिए पूछे जाते है। (ख) विचार प्रश्न—पाठ को आगे बढ़ाने के लिए पूछे जाते हैं।

(५) हरबार्ट के पंच सोपान के आधार पर—हरबार्ट द्वारा बनाई गई पाठ योजना के पाँचों सोपानों के आधार पर प्रश्नों का वर्गीकरण इस प्रकार हो सकता है—(क) प्रस्तावना सम्बन्धी प्रश्न—पूर्व ज्ञान को उत्तेजित करने के लिए तथा पाठ पढ़ाने के लिए उचित पृष्ठ-भूमि, रुचि और जिज्ञासा उत्पन्न करने के लिए पूछे जाते हैं। (ख) समस्यात्मक प्रश्न—प्रस्तावना के अन्त में बालक के सामने एक समस्या उत्पन्न की जाती है जिसके आधार पर उद्देश्य कथन पर प्रश्न का हल पाठ मे पढ़ा कर अध्यापक बालकों द्वारा प्राप्त करता है। (ग) विकासात्मक प्रश्न—पाठ को पढ़ाने के समय नया ज्ञान प्राप्त करने के लिए बालकों को उत्तेजित करने, एकाग्र करने के लिए जो प्रश्न पूछे जाते हैं उन्हें विकासात्मक प्रश्न कहते हैं। ये प्रश्न प्रस्तुतीकरण सोपान के अन्तर्गत आते है। (घ) आवृत्यात्मक प्रश्न—पढ़ाए गए पाठ को दुहराने के लिए किए जाते हैं। ये प्रश्न प्रत्येक अन्विति के अन्त में तथा सम्पूर्ण पाठ के अन्त मे किए जाते हैं। (ङ.) प्रयोगात्मक या अभ्यासार्थ प्रश्न—पाठ पर अभ्यास कार्य हेतु प्रश्न पूछे जाते हैं या गृह-कार्य के रूप में दिए जाते हैं।

(६) अन्य प्रकार—कई अन्य प्रकार के प्रश्न होते हैं उनमे से कुछ निम्नलिखित हैं :—(क) विवेचनात्मक प्रश्न—इन प्रश्नों का उद्देश्य बालकों को सत्य-असत्य, शुद्ध अशुद्ध, उचित अनुचित, गलत सही का निर्णय करना सिखाना होता है। (ख) तुलनात्मक प्रश्न—तुलना करने की शक्ति को बढ़ावा देने के लिए किए जाते हैं।

प्रश्न पूछने में ध्यान देने योग्य बातें—अध्यापक के लिए पढ़ाते समय आव-

आवश्यकतानुसार प्रश्न पूछना आवश्यक है। प्रश्न पूछते समय निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए

(१) प्रश्न की भाषा सरल व बोधगम्य होनी चाहिए।

(२) प्रश्न बहुत लम्बा न होकर संक्षिप्त होना चाहिए। अनावश्यक वाक्यांश जैसे कौन बताएगा कि…… क्या कोई बता सकता है कि…, हाँ बताओ कि…, आदि प्रश्न के साथ नहीं बोलना चाहिए। प्रश्न का वाक्य छोटा होना चाहिए।

(३) प्रश्न बालकों के साधारण ज्ञान के स्तर से ऊँचा नहीं होना चाहिए। गूढ़ प्रश्न कभी नहीं पूछे जाने चाहिएँ।

(४) प्रश्न को बार बार दुहराना नहीं चाहिए अन्यथा बालकों में बुरी आदत का निर्माण हो जाएगा।

(५) प्रश्न अनिश्चित उत्तर प्राप्त करने वाले नहीं होने चाहिएँ। जैसे, शिवाजी के बारे में तुम क्या जानते हो? इस चित्र में क्या देखते हो? वस्तु किस किस प्रकार की है? आदि।

(६) ऐसे प्रश्न नहीं पूछने चाहिएँ जिनका उत्तर 'हाँ' या 'ना' होता हो।

(७) प्रश्न किसी व्यक्तिगत छात्र को सम्बोधित करके नहीं पूछना चाहिए। जैसे, मोहन तुम बताओ कि…… प्रश्न सम्पूर्ण कक्षा से पूछना चाहिए। तत्पश्चात् किसी एक छात्र से उत्तर देने को कहना चाहिए।

(८) प्रश्न पूछकर कुछ देर बालकों को सोचने का समय देकर तब उत्तर प्राप्त करना चाहिए। प्रश्न बालकों के सामने रखते ही उत्तर प्राप्त करना उचित नहीं।

(९) अत्यन्त सरल प्रश्न जिनका उत्तर बालकों के साधारण स्तर से निम्न है अथवा अत्यन्त कठिन प्रश्न नहीं पूछने चाहिएँ।

(१०) प्रश्न ऐसा न हो कि जिसके उत्तर का संकेत उसी प्रश्न में विद्यमान हो जैसे, क्या महात्मा गांधी राष्ट्रपिता थे? क्या रावण अत्याचारी था? ऐसे सांकेतिक प्रश्न पूछना उचित नहीं।

(११) कक्षा में पूछे गये सभी प्रश्नों की भाषा व शैली एकसी नहीं होनी चाहिए।

(१२) प्रश्न ऐसे नहीं होने चाहिएँ जिनका छात्र, रटा हुआ उत्तर देवें।

(१३) ऐसे प्रश्न नहीं होने चाहिएँ जिनका उत्तर बहुत लम्बा हो।

(१४) कोई बात बताकर तत्काल उस पर प्रश्न नहीं पूछना चाहिए। जैसे, राजस्थान की राजधानी जयपुर है बताकर तत्काल पूछ लिया जाय राजस्थान की राजधानी क्या है?

(१५) प्रश्न कक्षा के किसी एक ही छात्र से बार-बार नहीं पूछने चाहिएँ। कक्षा के सभी छात्रों में प्रश्नों का उचित बँटवारा होना चाहिये। कोई कोई अध्यापक केवल आगे बैठने वाले छात्रों से ही प्रश्न किया करते हैं। यह उचित नहीं।

(१६) प्रश्न ऐसे पूछे जाने चाहिएँ जिनके उत्तर अध्यापक को भी स्पष्टतया ज्ञात हों।

(१७) प्रश्न विचारशक्ति का विकास करने वाले होने चाहियें।

(१८) प्रश्न की भाषा ऐसी होनी चाहिए जिसके एक से अधिक उत्तर निकलते हों।

(१९) प्रश्न शान्तिपूर्वक पूछना चाहिए। क्रोध करके नहीं।

(२०) प्रश्नों का निश्चित क्रम होना चाहिए। पहले प्रश्न का जो उत्तर प्राप्त हुआ उसी के आधार पर नया प्रश्न पूछना चाहिये।

बालकों के प्रश्न—पढ़ाने के समय अध्यापक प्रश्न पूछता है और बालकों से उनका उत्तर निकलवाता है। पर पढ़ाई गई बात कभी बालक के मस्तिष्क में पहुंच कर उसकी मानसिक क्रिया के आधार पर एक दम स्वीकार नहीं कर ली जाती। बालक उस पर प्रश्न पूछना चाहता है। बालक ज्यों-ज्यों बड़ा होता जाता है उसकी प्रश्न पूछने की इच्छा तीव्र होती जाती है। बालक प्रश्न पूछता है। कई अध्यापक इसे बुरा मानते हैं। पर वास्तव में बालक द्वारा प्रश्न पूछा जाना यह स्पष्ट करता है कि बालक पढ़ने में एकाग्र है।

बालक के पूछे गये प्रश्न का उत्तर कक्षा के अन्य बालकों से निकलवाने का प्रयत्न करना चाहिए। आवश्यकतानुसार अध्यापक बालकों के उत्तर में सहयोग देकर उसे पूर्ण बना सकता है।

बालकों के द्वारा प्रश्न पूछने पर उनकी उचित प्रशंसा करनी चाहिये। पर इसका फल यह भी हो सकता है कि बालक अनावश्यक प्रश्नों की झड़ी लगा दें तथा अनुशासन भंग करने लगें। अध्यापक को चाहिए कि बालकों में से एक-एक को क्रमवार प्रश्न पूछने का अवसर दे। ऐसा भी हो सकता है कि बालक द्वारा पूछे गये प्रश्न का उत्तर अध्यापक को ज्ञात न हो, तो गलत उत्तर देने के स्थान पर अध्यापक को यह कह देना चाहिए कि वह इस प्रश्न का उत्तर ज्ञात करके दूसरे दिन बतायेगा।

उत्तर—बालक ज्ञान प्राप्त करने में कितने दत्तचित्त हैं इस बात का पता उनसे पूछे गये प्रश्नों के उत्तरों से ज्ञात हो जाता है। बालकों के उत्तरों से ही उनकी अभिरुचि, विकास और मनोवैज्ञानिक अवस्थाओं की जानकारी हो सकती है। अतः छात्रों से उत्तर प्राप्त करने में अध्यापक को निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए :—

(१) उत्तर पूर्ण वाक्य में होना चाहिए। अधूरे उत्तर स्वीकार न किये जायें। यदि अधूरे उत्तर आ रहे हों तो उनको पूरे वाक्यों में देने के लिये छात्रों को प्रेरित करना चाहिए।

(२) उत्तर की भाषा शुद्ध व स्पष्ट होनी चाहिये।

(३) उत्तर प्रश्न के अनुकूल होना चाहिए। असम्बन्धित उत्तर स्वीकार नहीं किये जाने चाहिये।

(४) यदि उत्तर गलत है तो केवल "गलत है" कह देने से काम न चलेगा, विद्यार्थियों को उनकी गलती समझानी चाहिए।

(५) बालक की उत्तर देते समय आवाज न बहुत धीमी होनी चाहिए और

न बहुत तेज ।

(६) अशुद्ध उत्तर देने वाले छात्र के उत्साह को भंग न करना चाहिए ।

(७) हर एक उत्तर पर 'शाबाश', 'बहुत अच्छा', आदि शब्द नहीं कहने चाहियें । ऐसे शब्दों का कभी-कभी प्रयोग करना उचित होगा ।

(८) बालकों द्वारा दिये गये उत्तरों को अध्यापक को दोहराना नहीं चाहिये ।

(९) यदि बालक का उत्तर अंशतः सही है तो उसे अन्य बालकों की सहायता से पूरा शुद्ध करना चाहिये ।

(१०) कभी-कभी गलत उत्तर देने के कारण प्रश्न को ठीक नहीं समझना, पाठ को न समझ पाना, अनुशासन का अभाव आदि हो सकते हैं अतः कमियों को दूर करना चाहिए ।

बुनियादी शिक्षा एवं मौखिक शिक्षण विधि—बुनियादी शिक्षा स्थानीय वातावरण एवं समय के अनुसार शिक्षा देने को श्रेष्ठ समझती है । इसीलिए इसमें निश्चित पाठ्य पुस्तकों का प्रयोग बहुत कम होता है । बालकों के लिए इस प्रकार का क्षेत्र उपस्थित किया जाता है कि बालक स्वयं ज्ञान प्राप्त करें । समस्याओं पर सोचें और उनका हल अध्यापक की सहायता से निकालें । अतः अध्यापक उनको मौखिक सहायता ही अधिक देगा पर बालक को निष्क्रिय बनाकर नहीं, जैसा कि मौखिक शिक्षण की अन्य विधियाँ करती हैं ।

बुनियादी शिक्षा में कथन विधि को स्थान प्राप्त है । बुनियादी शिक्षा बालकों की रुचि का प्रयोग करती है । आवश्यकता पड़ने पर रुचि को उभारना पड़ता है जिसके लिए कहानी का, मनोरंजक बात या घटना का सहारा लेना अत्यन्त आवश्यक होता है । इसी प्रकार बालकों में नैतिकता के विकास, नेतृत्व के विकास, स्वावलम्बन के विकास, चारित्रिकता के विकास के लिए आत्म-चरित एवं जीवन-चरित का सहारा लेना पड़ता है । बुनियादी शिक्षा मे त्यौहारों, पर्वों और जयन्तियों का बड़ा महत्व है । अतः बालक की शिक्षा में उनका प्रयोग अधिक किया जाता है ऐसे अवसरों पर कथन प्रणाली द्वारा उत्सव की महत्ता बतलाई जाती है ।

बुनियादी शिक्षा अध्यापक द्वारा दी जाने वाली भाषण प्रणाली को तो स्वीकार नहीं करती पर छात्रों को भाषण देने के लिए प्रेरित अवश्य करती है । त्यौहारों, पर्वों पर बालकों को बोलने के लिए उत्साहित किया जाता है जिससे वे भाषण देने की कला सीखते हैं तथा विचारों को व्यक्त करने की शैली का ज्ञान होता है । हिम्मत खुलती है और बालक का विकास उचित रीति से होता है ।

बुनियादी शिक्षा भाषा-शिक्षण का बहुत अधिक ध्यान रखती है । उद्योग से समवाय का सम्बन्ध बाँध कर भाषा शिक्षण कराते समय व्याख्या विधि का प्रयोग किया जाता है । बालक के सामने कठिन बातों को सरलतापूर्वक समझाने का प्रयत्न अध्यापक करता है पर इसमें भी बालक ही को प्रधानतः सक्रिय रहना पड़ता है । व्याख्या के समय बालक का सहयोग प्राप्त किया जाता है । वस्तु, मॉडल, चित्र दिखा कर या श्याम पट्ट पर चित्र अंकित कर, अध्यापक कठिन बात को सरल करने का

करता है। पर उसकी व्याख्या बालक से ही कराता है। इसके लिए अभिनय
ी का सहारा भी उत्तम है।

प्रश्नोत्तर विधि का बुनियादी शिक्षा में सुधरा हुआ रूप प्रयोग में लाया जाता
ध्यापक अपनी ओर से बालकों को आवश्यकतानुसार प्रश्न पूछता ही है जो
े विकास के लिए अत्यन्त आवश्यक है। पर बुनियादी शिक्षा पद्धति में बालक
अध्यापक परस्पर इतने नजदीक सपर्क में आते हैं कि बालक अपने प्रश्नो को
पक से पूछकर अपनी उलझनों को सुलझाता है। बालकों को प्रश्न पूछने के
अध्यापक भी उत्साहित करता है। साथ ही ज्योंही समस्या उत्पन्न हुई तत्काल
त्मक प्रणाली द्वारा अध्यापक उसका हल निकालने के लिए बालक के सम्मुख
वरण व क्षेत्र उपस्थित कर देता है। इस तरह बालक बुनियादी शिक्षा पद्धति
अध्ययन करते समय अधिक सजीव, क्रियाशील, स्पष्ट व सुलझा हुआ प्रतीत
है।

सारांश

प्रश्नोत्तर विधि की महत्ता—शिक्षण में प्रश्नों का बड़ा महत्व है। यह
प्राचीनकाल से चली आ रही है। पूर्व ज्ञान को जानने, पाठ का विकास मालूम
, बालक की रुचि व जिज्ञासा जागृत करने व बालक के प्राप्त ज्ञान का मूल्यांकन
के लिए यह विधि महत्वपूर्ण है।

प्रश्नों के प्रकार—प्रश्नों के आवश्यकतानुसार कई वर्गीकरण कर लिए गए
(१) बालक की मानसिक क्रिया के आधार पर— (क) स्मृति प्रश्न, (ख)
ारोत्तेजक प्रश्न। (२) पाठ्य सामग्री के आधार पर—(क) खंडशः प्रश्न, (ख)
यांगी प्रश्न। (३) उद्देश्य के आधार पर—(क) परीक्षण प्रश्न, (ख) शिक्षण
। (४) ज्ञान प्राप्ति के आधार पर—(क) तथ्य प्रश्न, (ख) विचार प्रश्न।
) हरबार्ट के पंच सोपान के आधार पर—(क) प्रस्तावना सम्बन्धी प्रश्न, (ख)
स्यात्मक प्रश्न, (ग) विकासात्मक प्रश्न, (घ) आवृत्यात्मक प्रश्न, (ङ) प्रयोगात्मक
अभ्यासार्थ प्रश्न। (६) अन्य प्रकार—(क) विवेचनात्मक प्रश्न, (ख) तुलनात्मक
न।

प्रश्न पूछने में ध्यान देने योग्य बातें—प्रश्न पूछने में भाषा, प्रश्नों की
बाई, स्पष्टता, बोधगम्यता आदि बातों का ध्यान रखना चाहिए।

बालकों के प्रश्न—बालकों को प्रश्न पूछने का अवसर देना चाहिए तथा
के प्रश्नों का उत्तर कक्षा से ही निकलवाने का प्रयत्न करना चाहिए। यह ध्यान
ना चाहिए कि बालकों के प्रश्नों की झड़ी से अनुशासन भंग न हो।

उत्तर—बालकों से प्रश्नों के उत्तर पूर्ण वाक्य में, शुद्ध भाषा में व स्पष्ट
। से प्राप्त करने चाहियें।

बुनियादी शिक्षा एवं मौखिक शिक्षण विधि—बुनियादी शिक्षा पूर्णतः

पाठ्य पुस्तकों की शिक्षा नहीं। इसमें मौखिक विधि का प्रयोग उसके सुधरे हु
में किया जाता है। कथन विधि से बालकों में रुचि उत्पन्न की जा सकती है। भ
विधि में अध्यापक भाषण न देकर बालकों को भाषण देने के लिए उत्तेजित क
अधिक उत्तम होगा। भाषण शिक्षण व्याख्या प्रणाली के आधार पर किया जा स
है। प्रश्नोत्तर विधि में बालक स्वयं ज्ञान प्राप्त करते हुए अध्यापक से प्रश्न पूछे
क्षेत्र अध्यापक को तैयार करना चाहिए तथा उनके उत्तर अध्यापक स्वयं न
क्रियात्मक प्रणाली द्वारा बालकों से ही निकलवाये तो उत्तम होगा।

अभ्यासार्थ प्रश्न

(१) प्रश्नोत्तर विधि से क्या तात्पर्य है ? वह किन किन प्रयोजनों को पूरा करती है ?

(२) प्रश्नोत्तर विधि के कितने भेद लिए जा सकते हैं ? विवेचना कीजिए।

(३) प्रश्न पूछने में किन-किन बातों का ध्यान रखना चाहिए ?

(४) बालकों से उत्तर किस प्रकार निकलवाने चाहिएँ ? बुनियादी शिक्षा के दृष्टिकोण से उत्तर प्राप्त करने में किन-किन बातों की ओर विशेष ध्यान देंगे ?

८

अध्यापन की युक्तियाँ (टीचिंग डिवाईसेज)

(ग)

मौखिक शिक्षण (चर्चा)

मौखिक शिक्षण विधि के विभिन्न प्रकारों में चर्चा विधि भी महत्त्वपूर्ण है। ज्यों-ज्यों हम इस बात पर अधिक बल देते जा रहे हैं कि बालकों को शिक्षण-कार्य में अधिकाधिक सहयोगी बनाया जावे, त्यों-त्यों चर्चा-विधि एवं इसके समकक्ष अन्य विधियों के प्रयोग का प्रचलन बढ़ता जा रहा है।

चर्चा-विधि के प्रयोग के अवसर—जिस समय कोई ऐसा पाठ पढ़ाने के लिए प्रस्तुत होता है, जिसमें बालकों के अनुभवों का लाभ उठाया जाना सम्भव हो, उस समय सम्पूर्ण ज्ञान को केवल शिक्षक की ओर से ही कथन-विधि या भाषण-विधि या व्याख्या-विधि के द्वारा देने के बजाय चर्चा-विधि से देना पड़ता है। चर्चा-विधि चौथी एवं पाँचवीं या इससे आगे की कक्षाओं के लिए उपयुक्त रहती है।

चर्चा-विधि क्या है—इस विधि में शिक्षक छात्रों के सामने किसी विषय को इस प्रकार प्रस्तुत करता है कि कक्षा के अधिक से अधिक छात्र जो कुछ भी उन्होंने देखा है, अनुभव किया है या जो कुछ वे अनुभव कर रहे हैं, उसका वर्णन करने को उत्सुक हो जाते हैं। प्रस्तुत विषय की चर्चा इस प्रकार गतिमान होती है कि बालकों के आपसी सहयोग से उस विषय का विवेचन होता रहता है और शिक्षक को अपनी ओर से कम से कम बोलने की जरूरत पड़ती है—यही चर्चा विधि है।

चर्चा-विधि की दो प्रारम्भिक स्थितियाँ—शिक्षण की अन्य विधियों की तुलना में चर्चा-विधि को अपनाना कठिन काम अवश्य है। जब कोई विषय कक्षा के सामने चर्चा के लिए प्रस्तुत किया जाता है तो दो स्थितियाँ पैदा हो सकती हैं—प्रथम तो यह कि छात्रों को उस विषय पर इतने अधिक विचार याद आवें कि वे अपने विचार प्रस्तुत करने को उतारू हो उठें और उनको नियन्त्रण में रखना कठिन हो जाय। यों इस स्थिति का सामना करना तो फिर भी सरल है क्योंकि शिक्षक प्रत्येक बालक को अपने विचार प्रकट करने के लिए दूसरे दिन भी अपने समयान्तर में अवसर दे सकता है। परन्तु दूसरी स्थिति इससे अधिक कठिन होती है, जब बालक उस विषय की चर्चा में हिस्सा बँटाने में अपने को असमर्थ पाते हैं। ऐसे अवसर पर चर्चा को आगे बढ़ाने का जिम्मा शिक्षक पर ही आ पड़ता है। उसे तब अपने दृष्टिकोण या अनुभव को इस प्रकार प्रस्तुत करने का यत्न करना पड़ेगा कि बालक ऐसा महसूस करें कि ये बातें तो हमें भी मालूम हैं और फिर वे क्रमशः अपनी ओर से भी उस चर्चा में योगदान देने के लिए प्रेरित और उत्साहित हो उठें।

उपरोक्त दोनों स्थितियों का सफलतापूर्वक सामना कर लेने के पश्चात् निम्न-

लिखित बातों पर भी शिक्षक को ध्यान देना चाहिये।

चर्चा के अवसर पर ध्यान में रखने के प्रमुख बिन्दु—जब बालक चर्चा कर रहे हों, शिक्षक को निम्नलिखित बिन्दुओं पर ध्यान देना चाहिए :—

(१) कभी-कभी चर्चा प्रमुख विषय से दूर होने लगती है। ऐसे अवसर पर शिक्षक को सदस्यों का ध्यान खुद या किसी अन्य सदस्य की सहायता से प्रमुख बिन्दु की ओर केन्द्रित करने का यत्न करना चाहिए।

(२) जब भी कोई सदस्य पूर्व वक्ता द्वारा कहे गये विचारों को फिर से दुहराने लगे तो यह स्पष्ट कराया जावे कि उन विचारों को यथासम्भव दुहराया न जावे और नवीन विचार ही व्यक्त किये जावें।

(३) जब कोई सदस्य बहुत से विचारों को इस प्रकार से व्यक्त करे कि वे क्रमवार न हो तो उन विचारों को एक निश्चित क्रम में करने की प्रेरणा दी जावे और कहे गए उन विचारों को क्रमबद्ध कराया जावे।

(४) अगर कुछेक सदस्य चर्चा में हिस्सा नहीं ले रहे हों तो उन्हें भी अपने विचार व्यक्त करने का अवसर दिया जावे, तथा ऐसा करने के लिए उन्हें प्रोत्साहित किया जावे।

(५) अगर कोई सदस्य बार-बार खड़ा होकर अपने विचारों को मान लेने का आग्रह करे तो उन कारणों को मालूम करने का यत्न किया जावे जिनसे प्रभावित होकर वह ऐसा करता है। ऐसा करने से उस सदस्य का व्यवहार सामान्य बनाने में मदद मिलेगी।

(६) अगर विरोधी विचार वाले दो सदस्यों या दो समुदायों में वाग्युद्ध-स्वरूप मनमुटाव की स्थिति पैदा होने का खतरा हो तो उससे बचने का यत्न किया जावे और अन्यों को भी विचार व्यक्त करने का अवसर दिया जाने के पश्चात् अगर निर्णय ही लिया जाना है तो निर्णय की स्थिति लाई जावे।

(७) चर्चा के विचार सबके लिये स्पष्ट होते रहे और उसे आगे बढ़ाने में भी सहायता मिले, इस दृष्टि से श्यामपट्ट या चर्चा से सम्बन्धित अन्य सहायक सामग्री को भी उपलब्ध किया जावे।

(८) ऐसे सदस्य जो कि प्रभावहीन नजर आते हैं अगर कभी कोई सूझ-बूझ की बातें कहे, तो उस बात को सब सदस्य ध्यान से सुनें और उसके महत्त्व को समझने की चेष्टा करें, वातावरण बनाये रखने के लिए पूरा-पूरा प्रयत्न किया जाना चाहिए।

(९) अगर कोई सदस्य अपनी बात पूरी तरह से कह पाने में अपने को असमर्थ पा रहा हो तो उसे सहायता दी जावे।

(१०) अगर कोई सदस्य ऐसी भी बात कह बैठे जो सम्बद्ध विषय की दृष्टि से हास्यास्पद हो, फिर भी उस समय दल के अन्य सदस्य संयम बनाये रखें, ऐसा अनुशासन कायम किया जावे। क्योंकि ऐसी स्थिति नहीं बनी रहने पर वह सदस्य सबकी दृष्टि में उपहास का पात्र बनकर निराशावादी बन सकता है।

(११) चर्चा को निश्चित समय में समाप्त कराने की दृष्टि से भी जागरूक रहना चाहिए। अगर वह जल्दी समाप्त होने को हो तो उसे आगे बढ़ाया जाय और अगर समय पर उसके समाप्त न हो सकने का खतरा हो तो उसे संक्षिप्त करने का यत्न किया जावे।

उपरोक्त बिन्दुओं की दृष्टि से सतर्क रहने पर यह स्पष्ट है कि चर्चा व्यवस्थित, नियमित, लाभकारी, आनन्दपूर्ण और सफल हो सकेगी। इन बातों के बारे में सदस्य जितना ही अधिक सजग रहेंगे, उतनी ही अधिक सफलता भी उन्हें प्राप्त हो सकेगी।

चर्चा विधि से लाभ—ज्यों-ज्यों हम शिक्षा मे जनतन्त्र की दृष्टि का अधिकाधिक समावेश करते जा रहे हैं, हमारे लिए यह आवश्यक होता जा रहा है कि हम शिक्षा में ऐसी विधियों का समावेश करते जावें जिनमे बालकों का ज्यादा से ज्यादा योगदान हो। इस दृष्टि से चर्चा विधि द्वारा हम निम्नलिखित लाभ इस विधि के व्यवहार से अपेक्षित समझते हैं:—

(१) छात्र व्यवस्थित प्रकार से सोचने का प्रशिक्षण पाते हैं।

(२) छात्रों मे अपने विचारो को व्यक्त करने की दक्षता बढ़ती है।

(३) छात्र अपनी शिक्षा के कार्य मे खुद सहयोगी बनना सीखते हैं।

(४) छात्र दूसरे के विचारों का आदर करना सीखकर उदार दृष्टिकोण विकसित करने मे सफल हो सकते हैं।

(५) छात्रों को कक्षा में अपनी तुलनात्मक स्थिति का ज्ञान होने से कमजोर छात्र अधिक मेहनत करने को प्रेरित हो सकते हैं।

(६) छात्र स्वयं अपने समूह द्वारा निकाले गए निर्णयों के प्रति अपनत्व का अनुभव करके उन्हे जीवन मे उतारने तथा उसके अनुसार कार्य करने के लिए नैतिक दबाव महसूस करते हैं।

(७) छात्रों में नेतृत्व की भावना के विकास का पथ प्रशस्त होता है।

इस प्रकार के ये अनेक लाभ इस पद्धति को अपनाने पर बालकों को मिल सकने की आशा की जा सकती है।

चर्चा विधि के दोष—इस विधि के कतिपय दोष निम्नलिखित हैं:—

(१) इस विधि को अपनाने मे समय अधिक व्यय होता है।

(२) इसमें प्रतिभावान छात्रों का उत्साह तो तेजी से बढ़ता है परन्तु पिछड़े छात्रों में हीनता की भावना के विकास का भी भय रहता है।

(३) विभिन्न विरोधी मत वाले छात्रों में मनमुटाव पैदा होने का खतरा रहता है।

ये कुछ दोष हैं पर ऐसे नहीं कि उनका निवारण न हो सके। इन दोषों से निश्चित रूप से बचा जा सकता है अगर शिक्षक सूझबूझ से काम लें और ऊपर दिये गये मार्ग से चर्चा-विधि को अपनावें। उस दशा में बालकों को इस विधि से निश्चय ही लाभ पहुँचेगा और बालकों का सामञ्जस्यपूर्ण विकास करने में मदद मिलेगी।

(४) दूसरों के विचारों के प्रति उदारता की दृष्टि का विकास।

(५) तुलनात्मक स्थिति का ज्ञान।

(६) खुद के निर्णय के प्रति नैतिक दबाव का लाभ।

(७) नेतृत्व की भावना का विकास।

चर्चा-विधि के दोष :—

(१) समय का अधिक व्यय।

(२) पिछड़े छात्रों में हीनता की भावना के विकास का भय।

(३) विरोधी मत वालों में मनमुटाव का भय।

समाहार—इसके दुसके उक्त दोषों के बावजूद यदि यह विधि नियमित रूप से और पूरे ध्यान के साथ अपनायी जावे तो छात्रों को निश्चय ही लाभ होगा।

अभ्यासार्थ प्रश्न

(१) चर्चा-विधि से क्या तात्पर्य है? इसके गुण-दोषों का वर्णन कीजिये।

(२) कक्षा शिक्षण में चर्चा-विधि को अपनाने की दशा में शिक्षक को किन-किन बातों पर विशेष ध्यान देना चाहिए?

⊙

पुस्तक-विधि और बुनियादी शिक्षा में पाठ्य पुस्तकों का स्थान

बालक के शिक्षण में पुस्तक विधि—जैसा पहले बताया जा चुका है बालक के शिक्षण की दो विधियाँ हैं : (१) मौखिक विधि तथा (२) लिखित या पुस्तक-विधि। बालक स्वयं इच्छानुकूल पुस्तक पढ़कर अथवा कक्षा में पढ़ाई जाने वाली पुस्तकें पढ़कर ज्ञान प्राप्त करता है। पुस्तकें शिक्षण की सहायक सामग्री के अन्तर्गत भी गिनी जाती हैं। पुस्तकों को नेत्र उपकरण माना गया है अर्थात् अध्यापक अपने कथन की पुष्टि पुस्तक में लिखे हुए को बताकर करा सकता है। जब बालक स्वयं प्रेरणा पाकर इच्छानुकूल पुस्तक का अध्ययन कर ज्ञान प्राप्त करता है तब उसे उतना दोषपूर्ण नहीं कहा जाता जितना कि बालक को इच्छा न होते हुए भी विवश होकर पुस्तक पढ़नी पड़ती है।

पाठ्य-पुस्तक-प्रधान वर्तमान शिक्षा—हमारी प्रचलित वर्तमान शिक्षा का यही बड़ा भारी दोष है कि वह पुस्तक-प्रधान है। प्रत्येक विषय में निर्धारित पाठ्य-पुस्तकें हैं। बालक को निश्चित समय में इन पाठ्य-पुस्तकों को पढ़ ही लेना पड़ता है चाहे उनसे उसने ज्ञान प्राप्त किया हो अथवा नहीं। परीक्षा के समय उसे पुस्तक से खास-खास बातें रटकर परीक्षा पास कर ही लेनी पड़ती है। इस प्रकार पुस्तक रट कर परीक्षा पास करने की प्रणाली का उद्देश्य जीवन में शीघ्रातिशीघ्र नौकरी प्राप्त कर लेना रहा है। पर सत्य तो यह है कि इसी पाठ्य-पुस्तक विधि से ज्ञान प्राप्त करने वाले युवक समाज के बेकार नागरिक बन जाते हैं और इस तरह समाज पर भार बढ़ाते हैं। इसीलिए उड़ीसा के मुख्य मन्त्री श्री विश्वनाथ दास ने वर्धा सम्मेलन में भाग लेते हुए कहा था :—

"एक अर्से से मैं महसूस कर रहा हूँ कि यदि हम अपनी तमाम मौजूदा पाठ्य-पुस्तकों को इकट्ठा कर इनमें आग लगा दें तो मेरी राय में उनसे मुल्क का कोई नुकसान न होगा।"

बुनियादी शिक्षा का शिक्षक इस कथन से अक्षरशः सहमत तो न होगा पर हाँ यह अवश्य है कि उन सभी पाठ्य-पुस्तकों को इकट्ठा कर वह अपना पुस्तकालय सजा लेगा। वास्तव में पाठ्य पुस्तकीय विधि द्वारा अध्ययन से मन, मस्तिष्क, हृदय, हाथ, पैर आदि का कोई सम्बन्ध नहीं होता। उनका उचित विकास नहीं हो पाता।

पाठ्य-पुस्तकों के प्रयोग के लिए विभिन्न मत—समाज में पाठ्य-पुस्तक विधि के द्वारा पढ़ाये जाने वाले बेकार नागरिकों की वृद्धि को देखकर समाज का एक वर्ग पुस्तकों का पूर्णतः बहिष्कार करता है। यह वर्ग शिक्षा से पुस्तकों के प्रयोग को कतई नहीं चाहता।

पर इसके विपरीत पक्ष वाले लोग कहते हैं कि पुस्तकें ही हमारे विकास का साधन बनी हैं। पुस्तकों का बड़ा मूल्य है। चिरकाल से इनमें अपूर्व निधियां सचित हैं। इनमें कई अमूल्य रत्न संग्रहीत हैं। अतः पुस्तकों का यदि बहिष्कार किया गया तो हम ज्ञान शून्य होते जायेंगे। अतः शिक्षा पाठ्य पुस्तकों के आधार पर ही दी जानी चाहिए।

एक तीसरा वर्ग है जो इन दोनों चरम बिन्दुओं में मेल की भावना रखता है। यह वर्ग पुस्तकों का बहिष्कार तो नही करता पर केवल उन्हीं के द्वारा शिक्षण कार्य सपादन करने के पक्ष मे भी नहीं है। यह वर्ग पाठ्य पुस्तको को बुरा नहीं मानता पर उनके अत्यधिक प्रयोग को भी अच्छा नही मानता है।

बुनियादी शिक्षा एवं पाठ्य-पुस्तकें—बुनियादी शिक्षा उपरोक्त तीसरे मत को स्वीकार करती है। बुनियादी शिक्षा कर्म और ज्ञान की समवायी प्रणाली है। इसमें कर्म के द्वारा ज्ञान प्राप्त करने के ढग का अनुसरण किया जाता है। अतः यह यथार्थ ज्ञान प्राप्त कराती है। वस्तु से सीधा सम्पर्क बालक के मस्तिष्क को प्राप्त होता है। अतः यह शिक्षा पूर्ण व्यवहारिक है।

अतः इस शिक्षा पद्धति में ऐसी पाठ्य पुस्तकों का होना आवश्यक है जो व्यावहारिक ज्ञान में सहयोग दें तथा बालक की मौलिक समस्याओं को सुलझावें। कृषि कार्य के लिए खेत तैयार करते-करते जमीन की किस्म के विषय मे समस्या उत्पन्न हुई तो बालक अध्यापक से जानकारी करना चाहेगा। अध्यापक स्वयं बताने के साथ-साथ खास पुस्तकें पढ़ने की सम्मति देगा। इसी तरह खाद के विषय में, फसल को कीड़े मकोड़ों से बचाने के उपाय के विषय मे तथा इसी प्रकार अन्य आपत्तियाँ उत्पन्न होने पर उनके समाधान के लिए पुस्तको का प्रयोग करेगा। अध्यापक का कार्य यह है कि ज्यों ही समस्या उत्पन्न हुई उसके हल के लिए बालक को ऐसी पुस्तकें बतावें जिन्हें पढ़कर वे हल निकाल सकें।

अतः इस दृष्टि से यह स्पष्ट हुआ कि शाला मे पुस्तकालय का होना नितान्त आवश्यक है तथापि पाठ्य पुस्तकें भी रखनी ही होंगी। इन पाठ्य पुस्तकों की संख्या अत्यधिक नहीं होनी चाहिए। इन पाठ्य पुस्तको की रचना के लिए निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए :—

(१) पाठ्य पुस्तकें व्यवहारिक हों तथा अपने पास पड़ोस के ज्ञान से प्रारम्भ होती हुई गाँव का ज्ञान, जिले का ज्ञान, डिवीजन का ज्ञान, प्रान्त का ज्ञान तथा देश का ज्ञान कराने वाली हों। अर्थात् एक कक्षा की पाठ्य पुस्तक में केवल गाँव सम्बन्धी ज्ञान हो। दूसरी कक्षा की पाठ्य-पुस्तक में जिले सम्बन्धी ज्ञान हो तथा इसी प्रकार आगे की कक्षाओं में बँटवारा हो।

(२) पाठ्य-पुस्तक में जिस स्थान का वर्णन है, वहाँ के निवासियों के दैनिक जीवन, उद्योग-धन्धे, सांस्कृतिक जीवन, उनकी कठिनाइयाँ आदि का वर्णन हो।

(३) पाठ्य पुस्तकें कल्पना शक्ति का विकास करने वाली होनी चाहियें अर्थात् स्थान-स्थान पर उनको सोचने का अवसर मिले।

(२) पाठ्य पुस्तकें सचित्र एवं सुन्दर होनी चाहियें।

(३) पाठ्य पुस्तकों में सरल भाषा, मनोरंजक, छोटे-छोटे वाक्यों में ही छपी होनी चाहियें तथा पुस्तकों का आकार बहुत बड़ा नहीं होना चाहिए।

(४) बालकों के मनोवैज्ञानिक विकास के अनुकूल लिखी हुई होनी चाहिएँ।

(५) बालकों का शारीरिक एवं नैतिक विकास करने में सक्षम होनी चाहिएँ। यद्यपि बुनियादी शिक्षा पुस्तकों का प्रयोग तत्कालिक शिक्षा से भिन्न तरीके से करती है तथापि यहाँ भी पुस्तकों का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

बुनियादी शाला में पुस्तकालय—यद्यपि पुस्तकालय की व्यवस्था शाला प्रबन्ध का एक अंग है तथापि प्रस्तुत विषय के दृष्टिकोण से थोड़ा प्रकाश डालना अनुचित प्रतीत न होगा।

बुनियादी शिक्षा में पुस्तकों का उपयोग जीवन के प्रसार के लिए है। पारिवारिक व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त करने के लिए है। अतः पुस्तकालय में पुस्तकें बालकों के दृष्टिकोण से तथा अध्यापकों के दृष्टिकोण से उपयोगी होनी चाहिएँ। वैसे तो पुस्तकालयों की व्यवस्था शाला का प्रधानाध्यापक स्वयं किया करता ही है तथापि प्रधानाध्यापक को कार्य के विशेषज्ञों का सहयोग, बालकों का सहयोग एवं शाला समिति का सहयोग लेकर पुस्तकालय की पुस्तकों में वृद्धि करनी चाहिए। ऐसी पुस्तकों को मंगाने का प्रबन्ध किया जाना चाहिये जो बालकों की व्यावहारिक समस्याओं अर्थात् दैनिक जीवन की समस्याओं को सुलझाने में सहायक हों। अध्यापक को स्वयं को भी नित्य कर्म में पुस्तकों के पढ़ने का समय रखना चाहिए तथा बालकों को भी पुस्तकें पढ़ने की ओर उत्साहित करना चाहिए।

सारांश

बालक के शिक्षण में पुस्तक विधि—बालक को शिक्षा प्रदान करने की दो विधियों में से प्रथम मौखिक विधि तथा द्वितीय पुस्तक विधि है। पुस्तकें शिक्षण की सहायक सामग्री भी मानी जाती हैं।

पाठ्य-पुस्तक-प्रधान वर्तमान शिक्षा—वर्तमान शिक्षा का यह भी एक बड़ा भारी दोष है कि वह पाठ्य-पुस्तक-प्रधान शिक्षा है जो बालक को व्यावहारिक ज्ञान नहीं देती।

पाठ्य-पुस्तकों के प्रयोग के लिए विभिन्न मत—एक मत पाठ्य पुस्तकों को कदापि प्रयोग में नहीं लाना चाहता। दूसरा मत केवल पाठ्य पुस्तकों द्वारा शिक्षा देने के पक्ष में है। तीसरा मत इन दोनों मतों का समन्वय करता है।

बुनियादी शिक्षा एवं पाठ्य पुस्तकें—बुनियादी शिक्षा तीसरे मत को स्वीकार करती है। व्यावहारिक ज्ञान कराने वाली पुस्तकों को चाहती है। पुस्तकालय की पुस्तकों के अधिक प्रयोग पर जोर देती है तथा बहुत ही कम संख्या में पाठ्य पुस्तकों को चाहती है। ये पाठ्य पुस्तकें भी बालक के मनोवैज्ञानिक विकास के

अनुकूल सचित्र, सुन्दर एवं व्यावहारिक ज्ञान कराने वाली होनी चाहिएँ।

बुनियादी शाला में पुस्तकालय—बुनियादी शाला के पुस्तकालय में अध्यापकोपयोगी एवं छात्रोपयोगी दोनों प्रकार की पुस्तकें होना आवश्यक है। पुस्तकालय में पुस्तकों की संख्या बढ़ाने के लिए ग्रामवासियों, बालकों एवं अध्यापकों का सहयोग वांछनीय है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

(१) वर्तमान शिक्षा प्रणाली पाठ्य-पुस्तकों की दृष्टि से क्यों व किस प्रकार दोषपूर्ण मानी जाती है? कक्षा में पाठ्य पुस्तकों के पढ़ाने के सम्बन्ध में आपका क्या मत है?

(२) बुनियादी शिक्षा पुस्तकों एवं पाठ्य पुस्तकों का कौन सा दृष्टिकोण अपनाती है? कक्षा तीन की सामाजिक ज्ञान विषय की पाठ्य-पुस्तक तैयार करते समय आप किन किन बातों का ध्यान रखेंगे?

(३) बुनियादी शाला में पुस्तकालय का क्या स्थान है? आप पुस्तकों की संख्या वर्धन के लिए क्या-क्या उपाय प्रयोग में लायेंगे?

अध्याय 6

शिक्षण में सहायक उपकरण

शिक्षण में सहायक उपकरणों की आवश्यकता—शिक्षण को अधिकाधिक सुविधाजनक बनाने के लिए आवश्यक सामग्रियों का प्रयोग किया जाता है। इन सामग्रियों के प्रयोग से बालक सरलतापूर्वक ज्ञान प्राप्त कर लेता है। सूक्ष्म भावों और विचारों को इन उपकरणों की आवश्यकता से सरलतापूर्वक हृदयंगम कराया जा सकता है। प्रसिद्ध शिक्षा शास्त्री कमेनियस ने पाठ्य पुस्तकों को अधिक प्रभावोत्पादक बनाने के लिए उनको चित्रात्मक बनाने की प्रथा चलाई। चित्रों की सहायता से वर्णमाला का ज्ञान कराने में बड़ी सफलता मिली। शिक्षा जगत में मनोविज्ञान के प्रवेश ने इन सामग्रियों की महत्ता को अधिक प्रभावकारी सिद्ध किया। बालक की ज्ञानेन्द्रियाँ स्थूल वस्तुओं के सम्पर्क से आसानी से ज्ञान प्राप्त कर लेती हैं। इसी दृष्टिकोण से प्रत्येक शिक्षण पद्धति में इन सहायक सामग्रियों के प्रयोग पर बल दिया जाने लगा है।

सहायक उपकरणों का वर्गीकरण—पाँचों ज्ञानेन्द्रियों में से सबसे अधिक ज्ञान कराने वाली दो ही ज्ञानेन्द्रियाँ हैं—(१) श्रवण और (२) नेत्र। सूक्ष्म विचारों को समझने के लिए कान और आँख ही अधिक सफलता प्राप्त कराते हैं। इनके प्रयोग के बिना अध्यापक का शिक्षण असम्भव नहीं तो अत्यन्त दुरूह एवं कष्ट-साध्य अवश्य है। अतः इन्हीं दोनों ज्ञानेन्द्रियों के आधार पर सहायक उपकरणों को तीन वर्गों में बाँटा जा सकता है :—

(क) श्रवण उपकरण।
(ख) नेत्र-उपकरण।
(ग) संयुक्त उपकरण।

(क) श्रवण उपकरण—वे उपकरण, जिनके प्रयोग के लिए श्रवणेन्द्रिय का उपयोग किया जाता है, श्रवण उपकरण कहलाते हैं। विज्ञान के आविष्कारों ने शिक्षा जगत् में भी कई सुविधाएं प्रदान की हैं। श्रवण उपकरणों के लिए विज्ञान ने शिक्षा जगत् को निम्नलिखित यन्त्र प्रदान किये हैं। वैसे तो इन यन्त्रों का प्रयोग मनोरंजन के लिए ही साधारणतया होता है पर शिक्षण में इनके प्रयोग ने अध्यापन को अधिक सरल व सुगम बना दिया है :—

(१) रेडियो।
(२) ग्रामोफोन एवं प्लेबैक यन्त्रादि।

१. रेडियो—वर्तमान युग में रेडियो शिक्षण का अनुपम साधन है। इसके द्वारा अध्यापन कार्य कई गुना प्रभावपूर्ण बनाया जा सकता है। प्रत्येक शाला में देश के अच्छे विद्वानों, महान् व्यक्तियों एवं कलाकारों को नहीं बुलाया जा सकता। पर रेडियो के द्वारा उनका लाभ आसानी से उठाया जा सकता है। इसी प्रकार रेडियो

से भाषा, साहित्य, संगीत, कहानी, नाटक, कविता, विज्ञान आदि का ज्ञान आसानी से कराया जा सकता है। रेडियो विश्व भर की घटनाओं का ज्ञान कराने में सहायक होता है।

रेडियो के प्रयोग में भी अध्यापक को सावधानी बरतनी चाहिए। अध्यापक को इस बात का ज्ञान होना चाहिए कि कौन-कौन से समय किस-किस स्टेशन से बालोपयोगी कार्यक्रम प्रसारित किया जाता है तथा किस दिन क्या कार्यक्रम है। तब उस निश्चित समय से पूर्व छात्रों को कक्षा में बिठाकर अध्यापक को चाहिए कि वह कार्यक्रम के विषय में ज्ञान करा दे। रेडियो द्वारा कार्यक्रम सुन लेने के पश्चात् अध्यापक को बालकों की समस्याओं को, यदि कोई हो तो, सुलझाना चाहिए। तात्पर्य यह है कि रेडियो कार्यक्रम की भी अध्यापक को पाठ योजना तैयार कर लेनी चाहिए।

रेडियो द्वारा शिक्षण, मनोविज्ञान के सिद्धान्तों के अनुकूल तो नहीं है क्योंकि बालक निष्क्रिय श्रोता के रूप में ही बैठा रहता है। छात्र और शिक्षक का सम्पर्क उसमें नहीं रहता। प्रश्नोत्तर और शंका समाधान भी नहीं हो पाते। केवल अध्यापक ही रेडियो द्वारा शिक्षण सफल बना सकता है। नगरों की शालाओं में रेडियो का प्रबन्ध सम्भव हो सकता है पर गाँव की शालाओं में आर्थिक कठिनाइयों के कारण यह व्यवस्था सम्भव नहीं। बिजली के अभाव में बैटरी से चलने वाले रेडियो महँगे पड़ते हैं तथापि हमारे देश में ऐसे प्रयत्न अवश्य हो रहे हैं कि शिक्षण में रेडियो की सुविधा से अधिकाधिक लाभ उठाया जाए।

२. ग्रामोफोन एवं प्लेबैक यन्त्रादि--ग्रामोफोन का शिक्षण में प्रयोग भी अधिक सफल हुआ है। किसी भी व्यक्ति की आवाज को उसके मरने के बाद भी रिकार्डों द्वारा सुरक्षित रखा जा सकता है। गांधी जी के अमर सन्देश रेकार्डों में सुरक्षित हैं जिनको बालकों को सुनाया जा सकता है जिससे उनको चरित्र निर्माण की शिक्षा प्राप्त होगी। ग्रामोफोन रेकार्ड स्थायी होते हैं पर अस्थायी साधन भी निकले हैं। तार, सूत के धागे या फीते पर ध्वनि को रेकार्ड कर लिया जाता है और उन्हें वापस ध्वनि प्रसारण यन्त्र पर चढ़ाकर उनकी आवाज सुनी जा सकती है। कई विषयों के अध्यापन में रेडियो की अपेक्षा ये ग्रामोफोन अधिक सफल सिद्ध हुए हैं, विशेषतया भाषण शिक्षण में उच्चारण का अभ्यास कराने, वर्तनी (spelling) का अभ्यास कराने, अनुवाद का अभ्यास कराने में अधिक सफलता मिली है। संगीत, नृत्य, संवाद, अभिनय, कविता, पाठ, भाषण, वार्तालाप, वर्णन करना आदि के सिखाने में भी ग्रामोफोन का प्रयोग अधिक सफल सिद्ध हुआ है क्योंकि बार-बार पुनरावृत्ति से बालकों के मस्तिष्क में सिखाई जाने वाली बातें दृढ़तापूर्वक जम जाती हैं।

(ख) नेत्र उपकरण—जिन उपकरणों से केवल नेत्रों द्वारा ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है उनको नेत्र उपकरण या दृश्य उपकरण कहते हैं। वैसे तो दृश्य उपकरण प्रत्येक दिखाई देने वाली वस्तु है तथापि शिक्षण में अधिक प्रयोग में लाई जाने

वाली वस्तुओं का विवरण नीचे दिया जाता है :—

१. मॉडल—शिक्षण के समय कितने ही अवसर ऐसे आते हैं जबकि वास्तविक वस्तु बताये बिना उद्देश्य पूर्ति नहीं होती। पर उस वस्तु को उठाकर लाना भी असम्भव होता है। यदि अध्यापक आदर्श घर के विषय में पढ़ा रहा है तो उसे आदर्श घर का मॉडल बच्चों को बताना ही पड़ेगा तभी बालकों की गुत्थी सुलझेगी। ताजमहल के विषय में पढ़ाते समय भी ताजमहल का मॉडल बनाना अधिक उपयोगी होगा। मॉडल वास्तविक वस्तु के छोटे रूप या बड़े रूप होते हैं। ताजमहल का मॉडल छोटा होगा पर मच्छर का मॉडल मच्छर से कई गुना बड़ा होना चाहिए ताकि उसके विभिन्न अंगों को स्पष्ट दिखाया जा सके। आजकल बड़ी मशीनों के ऐसे छोटे मॉडल भी तैयार होने लगे है जो उसी मशीन की तरह काम करते हैं। रेल के इंजन का मॉडल असली इंजन की ही तरह पटरी पर चलता है और छोटे-छोटे डिब्बों को खींचता है। इस प्रकार मॉडल ज्ञान प्राप्त कराने के सफल साधन हैं। अच्छा हो कि मॉडल जहाँ तक हो सके बालकों ही से तैयार कराए जायें ताकि उत्पादक कार्य के साथ वस्तु का पूर्ण ज्ञान हो जाए।

२. नमूने—शिक्षण के समय आवश्यकता पड़ने पर वस्तुओं के नमूने भी बताने पड़ते हैं तभी समस्या सुलझती है। यदि अध्यापक कपास के विषय में पढ़ा रहा है तो कपास के सभी प्रकार के नमूने बालकों को बताने चाहियें। केवल विवरण से काम नहीं चल सकता। इसी प्रकार आवश्यकतानुसार खाद के नमूने, पत्थर के नमूने, पत्तियों के नमूने बनाकर वास्तविक ज्ञान कराया जा सकता है। बालकों को इन्हें निजी संग्रह करने के लिए प्रेरित करना चाहिए तथा शाला के संग्रहालय में इनको रखना चाहिए।

३. चित्र—जिन वस्तुओं के मॉडल या नमूने आसानी से प्राप्त नहीं हो सकते हों तथा बनाना सम्भव न हो तो उनका चित्र ज्ञान प्राप्त करने में सहायक होगा। चित्र आसानी से प्राप्त हो जाते हैं। नेताओं, विद्वानों, साहित्यकारों के चित्र, ऐतिहासिक पुरुषों, इमारतों के चित्र, मानव विकास के चित्र, भौगोलिक स्थानों के चित्र, पशु पक्षियों के चित्र, प्राकृतिक सौन्दर्य के चित्र, विज्ञान सम्बन्धी चित्र आसानी से प्राप्त हो जाते हैं। पढ़ाते समय आवश्यकतानुसार इनका प्रयोग करना चाहिए। कमरे तथा शाला भवन को चित्रों द्वारा बालकों से सजवाना चाहिए तथा बालकों द्वारा ही चित्र बनवाये जाने चाहियें। पढ़ाई के समय कक्षा में बताये जाने वाले चित्र आकर्षक, सुन्दर, रंग-बिरंगे तथा रोचक होने चाहिएँ तथा इतने बड़े हों कि कक्षा के सभी छात्रों को स्पष्ट दिखाई दें।

४. मानचित्र रेखाचित्र आदि—छपे हुए मानचित्र एवं रेखाचित्र शालाओं में प्रायः विद्यमान रहते हैं। अतः उनका प्रयोग भूगोल, इतिहास, वनस्पति, जीवन आदि के शिक्षण में किया जा सकता है। शरीर विज्ञान के रेखाचित्र भी तैयार मिलते हैं। यदि मानचित्र, रेखाचित्र शाला में तैयार न हों तो अध्यापक को पहले से ही तैयार कर रखना चाहिए ताकि उनका समय पर प्रयोग किया जा सके।

अध्यापक तत्काल, यदि अभ्यास है तो, श्यामपट्ट पर भी बना सकता है। अच्छा हो यदि बालकों द्वारा मानचित्र एवं रेखाचित्र बनवाए जाएँ।

५. श्यामपट्ट—श्यामपट्ट के प्रयोग के बिना अध्यापक का शिक्षण सफल नहीं हो पाता क्योंकि श्यामपट्ट पर लिखी गई बात आँखों के सामने अधिक ठहरती है जिससे बालक उसे सरलता से ग्रहण कर लेता है। श्यामपट्ट के प्रयोग में निम्न-लिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए :—

(१) श्यामपट्ट पर लिखते समय अध्यापक को एक कोने की ओर खड़ा होकर लिखना चाहिए ताकि वह छात्रों के लिए आड़ न बन सकें।

(२) श्यामपट्ट पर लिखावट सुन्दर होनी चाहिए।

(३) श्यामपट्ट पर लिखते समय अध्यापक को श्यामपट्ट की ओर मुँह करके बोलते जाना या पढ़ते जाना उचित नहीं।

(४) श्यामपट्ट पर लिखते समय कभी-कभी एक निगाह बालकों पर भी डालनी चाहिए ताकि कोई अनुशासन भंग न करे तथा वे अपनी-अपनी कापियों में लिखते रहें।

(५) जिन बालकों की आँखें कमजोर हैं उन्हें सबसे आगे श्यामपट्ट के नजदीक बिठाना चाहिए।

(६) श्यामपट्ट पर अक्षर इतने बड़े होने चाहिएँ कि कक्षा में अन्त में बैठे हुए छात्रों को भी स्पष्ट दिखाई देवें।

(७) श्यामपट्ट पर अध्यापक को कभी अशुद्ध नहीं लिखना चाहिए।

(८) पाठ की प्रत्येक अन्विति का सार प्रश्नों द्वारा बालकों से निकलवाते जाना चाहिए और श्यामपट्ट पर लिखना चाहिए। श्यामपट्ट पर लिख लेने के बाद कक्षा में घूमकर देखना चाहिए कि बालकों ने लिख लिया है या नहीं।

(९) श्यामपट्ट पर लिखी गई एक बात का प्रसंग समाप्त होते ही उसे मिटा देना चाहिए।

(१०) श्यामपट्ट कमरे में ऐसे कोने में रखना चाहिए जहाँ प्रकाश की चमक श्यामपट्ट पर न पड़े।

(११) श्यामपट्ट पर लिख लेने के बाद उसे कक्षा में एक बार जोर से पढ़ देना चाहिए पर अध्यापक को बालकों की तरफ पीठ करके नहीं बोलना चाहिए। एक कोने में खड़ा होकर बोलना चाहिए। अच्छा हो कि छात्र से पढ़वाया जाए।

(१२) कभी-कभी बालक को श्यामपट्ट पर लिखने के लिए बुलाकर उससे लिखाना चाहिए।

६. वस्तुएँ, खिलौने आदि—पढ़ाते समय वास्तविक वस्तुओं तथा खिलौनों के प्रदर्शन की भी बड़ी आवश्यकता होती है। अतः जीवनोपयोगी वस्तुओं को वास्तविक रूप में दिखाने से बालकों को आसानी से ज्ञान कराया जा सकता है। विभिन्न प्रकार के औजार आदि को प्रत्यक्ष दिखा कर ज्ञान कराया जा सकता है।

७. रेत—रेत में खेलना, दौड़ना, भागना, लुढ़कना बालकों को बहुत पसन्द

है। रेत के घर, मन्दिर, लड्डू आदि वस्तुएँ बनाना बालकों की क्रियात्मक शक्ति के विकास का एक साधन है। बुनियादी शिक्षा पद्धति द्वारा शिक्षण में रेत का महत्वपूर्ण स्थान है। रेत, कागज, स्लेट तथा श्यामपट्ट का कार्य कर सकता है। उस पर अक्षर रचना, मानचित्र बनाना, गणित, रेखाचित्र आदि खेल ही खेल में आसानी से सिखाये जा सकते हैं।

८. मैजिक लैन्टर्न, शिक्षण स्लाइडें, फ्लैश कार्ड आदि—मैजिक लेन्टर्न ऐसा यन्त्र है जिसके द्वारा बिना बिजली की सहायता के अधेरे कमरे में गैस लेन्टर्न आदि के प्रकाश द्वारा दीवार पर चित्र बनाये जाते हैं। इस यन्त्र में स्लाइडें रक्खी जाती हैं जिस पर शिक्षण सम्बन्धी चित्र, कथन आदि होते हैं। जितनी देर चाहे उतनी देर तक तस्वीर को दीवार पर रखा जा सकता है। अध्यापक को चाहिए कि चित्र या कथन का वह साथ ही साथ स्पष्टीकरण करता जाए और बाद में छात्रों से प्रश्न पूछ कर यह जाने कि बालक ने कितना ज्ञान ग्रहण किया है। इन स्लाइडों से सफाई, बीमारी, खेती, विज्ञान, जीव-जन्तु, आदि का ज्ञान, नेताओं के कथन आदि का परिचय कराया जा सकता है।

फ्लैश कार्ड द्वारा बालक को पढ़ाये गए पाठ की स्मृति कराई जा सकती है। स्मरण कराई जाने वाली बात की एक दो मुख्य बातों को बालकों को एक कार्ड पर अचानक पढ़ाया जाता है जिससे उससे सम्बन्धित सारा ज्ञान मस्तिष्क में स्मरण हो जाता है।

९. विज्ञापन पत्र (पोस्टर)—आज के युग में वस्तु का विज्ञापन उसके व्यापार की वृद्धि के लिए बड़ा महत्वपूर्ण है। किसी भी गाँव या शहर में जगह-जगह विज्ञापन-पत्र चिपके हुए या दीवारों पर लिखे हुए दिखाई देते हैं। शिक्षण में पोस्टर का प्रयोग पाठ की प्रस्तावना, विकास और पुनरावृत्ति की अवस्था में किया जा सकता है। हमारे देश की चुनाव पद्धति का ज्ञान पोस्टरों द्वारा कराया जा सकता है। बालकों द्वारा भी पोस्टर तैयार कराये जाने चाहिएँ। विशेषतया नागरिकता के ज्ञान के पोस्टर जैसे सड़क के बाईं ओर चलना, कूड़ा करकट एक स्थान पर डालना आदि के पोस्टर बनाए जा सकते हैं।

१०. शैक्षणिक पर्यटन—कहा जाता है कि जो जितनी अधिक यात्राएँ करता है, भ्रमण करता है या पर्यटन करता है वह उतना ही अधिक ज्ञानी और अनुभवी होता है। इस दृष्टि से शिक्षा के क्षेत्र में भी पर्यटन का बड़ा महत्व है। पर्यटन के द्वारा ही बालकों को वस्तुओं, स्थानों, इमारतों, जलवायु, प्राकृतिक छटा का वास्तविक अनुभव हो सकता है। बालकों के घूमने के शौक का सदुपयोग उनके ज्ञान-वर्धन में किया जा सकता है। पर्यटन के लिए निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए :—

(१) पर्यटन शिक्षण किसी उद्देश्य को लेकर किया जाना चाहिए जैसे भूगोल शिक्षण पर्यटन, इतिहास शिक्षण पर्यटन, सौन्दर्य शिक्षण पर्यटन, वनस्पति शिक्षण पर्यटन, खनिज शिक्षण पर्यटन आदि।

(२) पर्यटन योजनाबद्ध होना चाहिए अर्थात् यात्रा की सुविधा बालकों की आयु, सामग्री, व्यवस्था, आवागमन के साधन, माता-पिताओं की आज्ञा, समय की उपयुक्तता आदि विषयों पर गहराई से सोचकर इनकी व्यवस्था कर लेनी चाहिए।

(३) स्थान पर पहुँच कर बालकों को पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने का अवसर देना चाहिये।

(४) ज्ञान प्राप्त करने में बालकों की समस्याएँ सुलझानी चाहिएँ तथा उनसे प्रश्न पूछ कर पता लगाना चाहिये कि उन्होंने कितना ज्ञान प्राप्त किया है।

११. पाठ्य पुस्तकें—इनका विवेचन अलग अध्याय में किया जायेगा।

(ग) संयुक्त उपकरण—कई ऐसे उपकरण होते है जो श्रवण और नेत्र दोनों के द्वारा साथ-साथ ज्ञान कराते हैं। इनको संयुक्त उपकरण कहते हैं। इनका विवेचन नीचे किया जाता है :—

(१) नाटक—नाटक मनोरंजक क्रियाशील कला है। यह अनुकरण प्रवृत्ति से उत्पन्न हुई क्रिया है। बालक में अनुकरण प्रवृत्ति की प्रधानता होती है। अतः शिक्षा के क्षेत्र में नाटक से बहुत लाभ उठाया जा सकता है। अतः कक्षा में या सम्पूर्ण शाला में नाटकों का आयोजन समय-समय पर होता रहना चाहिये। नाटक की सारी तैयारी बालकों से कराई जानी चाहिए ताकि उनका ज्ञान विकसित हो, अनुकरण प्रवृत्ति को विकास का उचित मार्ग मिले, बालक क्रियाशील बनें, वाक्‌शक्ति का विकास हो, सभ्यता सीख सकें।

(२) चल-चित्र—चल-चित्र शिक्षण का प्रभावकारी साधन है। वर्तमान समय में नगरों के बालकों में चारित्रिक पतन का मुख्य कारण हमारे वर्तमान चल-चित्रों का दोषपूर्ण होना माना जाता है। इन्हीं से बालक बुरी आदतें सीखते हैं। पाश्चात्य देशों में बालोपयोगी चल-चित्रों ने बालकों पर अच्छा प्रभाव डाला है। हमारे देश में बालोपयोगी फिल्मों का अभाव है। चल-चित्रों द्वारा भूगोल, इतिहास, कृषि, कला, विज्ञान, विभिन्न व्यवसाय, कताई, बुनाई, वस्त्र व्यवसाय, मधुमक्खी पालन, रेशमी कीड़े का पालन आदि, धर्म, दर्शन, साहित्य, यातायात, खनिज पदार्थों आदि का अध्ययन सुगमता से कराया जा सकता है।

(३) टेलीविजन—जिस प्रकार रेडियो ध्वनि को फौरन श्रोताओं तक पहुँचाता है उसी प्रकार टेलीविजन ध्वनि एवं ध्वनिकार तथा दृश्य को तत्काल श्रोता-दर्शक के पास पहुँचा देता है। रेडियो को शिक्षण के रूप में स्वीकार करने में दृश्य की जो आपत्ति थी वह इससे दूर हो गई है। भाषण देने वाला, संगीतकार या अभिनेता अर्थात् ज्ञान कराने वाले का चित्र उसके हाव-भावों के साथ तत्काल रेडियो के रजत पट पर दिखाई देता है अतः इसमें शिक्षण अधिक प्रभावोत्पादक होगा पर टेलीविजन अत्यन्त मूल्यवान है जिसका शालाओं में पहुँचना सम्भव नहीं है। विज्ञान की प्रगति को देखते हुए निकट भविष्य में टेलीविजन द्वारा शिक्षण सफलतापूर्वक किया जा सकेगा।

सहायक उपकरण और संग्रहालय—शाला में एक संग्रहालय होना चाहिये

जिससे अध्यापक पढ़ाने के समय आवश्यक सामग्रियों को वहीं से प्राप्त कर लें और शिक्षण समाप्त होने पर वापस पहुँचा दें। संग्रहालय की बुनियादी शिक्षा के दृष्टिकोण से शाला में नितान्त आवश्यकता है। यह शाला प्रबन्ध का अंग है।

बुनियादी शिक्षा एवं सहायक उपकरण—रूढ़िगत शिक्षा पद्धति की अपेक्षा बुनियादी शिक्षा पद्धति में सहायक उपकरणों के प्रयोग की नितान्त आवश्यकता है। बुनियादी शिक्षा वास्तविक जीवन का ज्ञान कराती है। बालक जब तक प्रत्येक वस्तु को प्रत्यक्ष रूप में देख न ले, छू न ले अथवा प्रयोग न करले तब तक उस वस्तु सम्बन्धी वह पूर्ण ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता। अतः अध्यापक को अधिकाधिक वास्तविक ज्ञान कराने के लिए उपलब्ध उपकरणों का प्रयोग करना चाहिए। इसके लिये अध्यापक को निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिये :—

(१) पाठ योजना के अनुसार उपकरणों को पहले से तैयार कर लो और उनका क्रम बाँध लो।

(२) पढ़ाने के समय उपकरणों को यथास्थान ही प्रदर्शित करना चाहिये। गलत स्थान पर उनके प्रयोग से बुरा प्रभाव पड़ेगा।

(३) उपकरण सुन्दर, रोचक व काफी बड़े होने चाहिएँ ताकि कक्षा के अन्त के बालक भी देख सकें।

(४) उपकरणों के प्रयोग के साथ विषय की महत्ता प्रश्न पूछ कर अथवा यथावश्यक स्वयं वर्णन कर बतानी चाहिए।

(५) उपकरणों के प्रयोग के समय यदि बालक प्रश्न पूछें तो पूछने देना चाहिए।

(६) यदि सम्भव हो तो उपकरण का संचालन बालकों से कराया जाना चाहिये।

(७) उपकरणों की भरमार भी न होनी चाहिये जिससे कक्षा का कमरा दुकान बन जाये।

सारांश

शिक्षण में सहायक उपकरणों की आवश्यकता—शिक्षण के समय उपकरणों का प्रयोग ज्ञान प्राप्ति को सरल बना देता है। इनका प्रयोग मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों के अनुकूल है।

सहायक उपकरणों का वर्गीकरण—इनको तीन भागों में बाँटा जा सकता है। (क) श्रवण उपकरण, (ख) नेत्र उपकरण, (ग) संयुक्त उपकरण।

(क) **श्रवण उपकरण**—(१) रेडियो—रेडियो यद्यपि अनुपम साधन माना जाता है तथापि इसके द्वारा शिक्षण के समय बालक निष्क्रिय श्रोता ही बना रहता है।

(२) ग्रामोफोन एवं प्लेबैक यन्त्रादि—ग्रामोफोन अभ्यास कार्य में अधिक सफल सिद्ध हुए हैं।

(ख) नेत्र उपकरण (१) माडल—वस्तुओं को जब ज्यों का त्यों बताना सम्भव न हो तो उनके माडल बताए जाने चाहिएँ। (२) नमूने—शिक्षण के समय विभिन्न वस्तुओं के नमूने बताये जाने चाहिएँ। (३) चित्र—जिन वस्तुओं के माडल या नमूने उपस्थित न किये जा सकें उनके चित्र उपस्थित करने चाहिएँ। (४) मानचित्र, रेखाचित्र आदि—आवश्यकतानुसार इनका प्रयोग स्थिति को स्पष्ट करता है। (५) श्यामपट्ट—श्यामपट्ट का अधिकाधिक प्रयोग होना चाहिए तथा बालकों से भी श्यामपट्ट पर लिखाना चाहिए। (६) वस्तुएँ, खिलौने आदि—यथा समय इनका प्रयोग ज्ञान प्राप्ति को सरल बना देगा। (७) रेत—बुनियादी शिक्षा पाठ योजना द्वारा रेत पर भी शिक्षण कार्य किया जा सकता है। (८) मैजिक लेन्टर्न, शिक्षण स्लाइडें, फ्लेश कार्ड आदि—इनसे खेती, सफाई, बीमारी का ज्ञान आसानी से कराया जा सकता है (९) विज्ञापन (पोस्टर)—नागरिक ज्ञान पोस्टरों द्वारा कराया जाना चाहिए। (१०) शैक्षणिक पर्यटन—इनकी व्यवस्था बालकों को अनुभवी बनाने में सहायक होगी। (११) पाठ्य पुस्तकें—इनका वर्णन अलग अध्याय में किया जायगा।

(ग) संयुक्त उपकरण—(१) नाटक—बालकों के विकास के लिए आवश्यक है। (२) चलचित्र—बालोपयोगी फिल्मों द्वारा विभिन्न विषयों का ज्ञान कराया जा सकता है (३) टेलीविजन—रेडियो की अपेक्षा टेलीविजन अधिक सफल साधन सिद्ध होगा।

सहायक उपकरण और संग्रहालय—संग्रहालय की व्यवस्था शाला में होनी चाहिये ताकि शिक्षण के लिए आवश्यक उपकरण अध्यापक वहाँ से प्राप्त कर सकें। बुनियादी शिक्षा एवं सहायक उपकरण—रूढ़िगत शिक्षा की अपेक्षा बुनियादी शिक्षा में सहायक उपकरणों का प्रयोग शिक्षण को जीवन की वास्तविकता के अधिकाधिक निकट ले जावेगा।

अभ्यासार्थ प्रश्न

(१) शिक्षण में सहायक उपकरणों का क्या महत्व है? वे कितने भागों में बाँटे जा सकते हैं? किसी एक भाग का विवेचन कीजिये।

(२) नेत्र उपकरण कौन-कौन से हैं? बुनियादी शिक्षा में आप उनका प्रयोग कैसे करेंगे?

(३) संयुक्त उपकरणों द्वारा बुनियादी शिक्षण पद्धति के आधार पर पाठ को कैसे सफल बनाया जा सकता है?

बुनियादी शिक्षा में समन्वय

कार्य को सुव्यवस्थित रूप से करने के लिए उसे अलग-अलग भागों में बाँटकर प्रत्येक भाग के लिए एक या एक से अधिक व्यक्तियों को जिम्मेदार ठहराये जाने का तरीका सभी लोग जानते हैं। इसी सम्बन्ध में यह सिद्धान्त भी माननीय है कि प्रत्येक भाग के लिये उत्तरदायी व्यक्तियों को अपने क्षेत्र में काम करने की पूरी आजादी मिलनी चाहिये परन्तु इस आजादी की विचारधारा को स्वीकार करते समय यह विचार कभी स्वीकार नहीं किया जाता कि एक अंग में सम्बन्धित कार्यकर्ता इतने स्वतन्त्र हो जावें कि दूसरे अंग के प्रति जिम्मेदार व्यक्तियों से अपना सम्बन्ध ही तोड़ दें। अगर ऐसा होता तो फिर जिस सुव्यवस्था को दृष्टि में रखकर कार्य विभाजन किया गया था उसकी प्राप्ति के स्थान पर अव्यवस्था के अतिरिक्त कुछ नहीं मिलता। शिक्षा के क्षेत्र में भी ऐसा ही हुआ। विभिन्न विषय, जिनका पृथक्कीकरण आरम्भ में सुव्यवस्थित ढंग से शिक्षा चलाने की दृष्टि से किया गया था, उन्नीसवीं सदी में इस स्थिति पर जा पहुँचे कि प्रत्येक विषय ही नहीं परन्तु एक विषय के विभिन्न अंग भी अपने आप में पूर्ण रूपेण स्वतन्त्र होकर अपनी ऐसी इकाइयाँ बना बैठे कि जिनका दूसरी इकाई से किसी प्रकार का कोई सम्बन्ध ही नहीं रहा। इस प्रकार "ज्ञान एक अखण्ड समष्टि है" की भावना दृष्टि से ओझल होने लगी।

समन्वय की विचारधारा का विकास—उन्नीसवीं सदी में पृथक्कीकरण की विचारधारा जब चरमसीमा पर पहुँच गई और शिक्षा शास्त्रियों को इसके दुष्परिणाम स्पष्ट रूप से दिखाई देने लगे तब एकीकरण के प्रयास प्रारम्भ हुये। महाशय हरबार्ट प्रथम व्यक्ति थे जिन्होंने इस विषय में शिक्षा जगत को सचेत करते हुए पाठ्यक्रम के विभिन्न विषयों में समन्वय करने की आवश्यकता पर बल दिया। उन्होंने कहा कि प्रत्येक बालक में पूर्व अनुभव एवं अध्ययन के आधार पर संचित ज्ञान विद्यमान रहता है। विभिन्न विषयों का ज्ञान बालक अपनी चेतना में अलग-अलग संचित न कर एक इकाई के रूप में संचित करता है। पूर्व विचार एवं पूर्व ज्ञान से अनुकूल नवीन विचारों का समावेश होता जाता है। बालक की चेतना में पूर्व ज्ञान जिस प्रकार से संचित होता है उसी प्रकार उसे नवीन ज्ञान दिया जाना चाहिए अर्थात् विभिन्न विषयों को परस्पर सम्बद्ध करके इस प्रकार पढ़ाया जावे कि छात्रों को उनमें एकता का अनुभव हो। हरबार्ट के पश्चात् इसी विचारधारा की व्याख्या को फ्रोबेल ने यह कहते हुए व्यक्त किया कि एकता का निरन्तर चलने वाला नियम संसार की सभी वस्तुओं पर बराबर लागू होता है। इसी विचार को शिक्षा विशेषज्ञ जान ड्यूई ने अपने प्रयोजनवाद में स्वीकार कर विषयों के सामञ्जस्यीकरण के रूप में

व्यक्त किया है। उनका मत है कि विभिन्न विषयों को सम्बद्ध एवं समन्वित कर पढ़ाया जाना चाहिए।

समन्वय का अर्थ—उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि समन्वय का शिक्षा में श्रीगणेश क्योंकर हुआ और कैसे इस विचारधारा का विकास हुआ ? परन्तु समन्वय को पूर्ण रूप से समझने के लिए यह सूचना पर्याप्त नहीं है। समन्वय शब्द का अर्थ है सह-सम्बन्ध। इसी सह-सम्बन्ध को अनुबन्ध भी कहते हैं। इसका सिद्धान्त यह है कि कोई भी विषय भली-भाँति समझ में उस समय तक नहीं आ सकता जब तक कि अन्य विषयों के प्रकाश में उसका अध्ययन नहीं किया जाता। इस प्रकार समन्वय से अर्थ है एक विषय के पढ़ाने में अन्य विषयों की उस सीमा तक सहायता प्राप्त करना जहाँ तक प्रस्तुत विषय के समझने में वे सहायक हों।

समन्वय के प्रकार– (क) एक ही विषय के विभिन्न अंग, विभिन्न विषय एवं कार्य के आपसी सम्बन्ध के आधार पर समन्वय को निम्नलिखित भागों में बाँटा जाता है :—

(१) एक विषय के विभिन्न अंगों का समन्वय—एक ही विषय के कई अंग होते हैं। जैसे भाषा शिक्षण में गद्य, पद्य, व्याकरण, लेख आदि शामिल हैं। गद्य पढ़ाते समय व्याकरण का भी ज्ञान कराया जा सकता है। इसी प्रकार किसी भी एक अंग के साथ दूसरों का ज्ञान दिया जाना सम्भव है।

(२) पाठ्यक्रम के विभिन्न विषयों का समन्वय—पाठ्यक्रम में विभिन्न विषय होते हैं जैसे भाषा, गणित, सामाजिक ज्ञान और सामान्य विज्ञान आदि। एक विषय को पढ़ाते समय अन्य विषयों के ऐसे ज्ञान का जो उस विषय की ज्ञान प्राप्ति में सहायक हों, उपयोग किया जाना चाहिए। काश्मीर का भूगोल पढ़ाते समय वहाँ के प्राकृतिक सौन्दर्य को स्पष्ट करने के लिए कुछ ऐसी रचनाओं का प्रयोग किया जा सकता है जिसमें कवियों ने वहाँ की सुन्दरता को मूर्त रूप देने का प्रयत्न किया हो।

(३) ज्ञान और कर्म में समन्वय—बालक पहले कार्य करते हैं और उस कार्य से सम्बन्धित जानकारी प्राप्त करने के हेतु अध्ययन करते हैं अथवा शिक्षक से ज्ञान प्राप्त करते हैं। कभी-कभी छात्र पहले सैद्धान्तिक ज्ञान प्राप्त करते हैं और उसके पश्चात् उस ज्ञान को कार्य रूप में परिणत करते हैं। इस प्रकार के समन्वय को बुनियादी तालीम में समवाय कहते हैं। इस विषय में विस्तार से हम आगामी पाठ में पढ़ेंगे।

(ख) कक्षा समय-विभाग-चक्र में विषयों के जमाव के अनुसार समन्वय को निम्न भागों में बाँटा जाता है :—

(१) लम्ब-रेख-समन्वय (वर्टीकल कोरिलेशन)—समय-विभाग-चक्र के अन्दर एक विषय के पीरियड में प्रतिदिन के कार्यक्रम में गद्य, पद्य, व्याकरण, लेख, पत्र आदि लम्ब रेखा की दिशा में ऊपर से नीचे की ओर लिखे जाते हैं। इस जमाव को ही आधार मानकर एक विषय के विभिन्न अंगों के समन्वय को लम्ब-रेख-समन्वय कहते हैं।

(२) क्षितिज-रेखा-समन्वय (हॉरीजेण्टल कोरिलेशन)—समय-विभाग-चक्र के अन्दर विभिन्न विषय जैसे गणित, हिन्दी, सामाजिक ज्ञान आदि विभिन्न पीरियडों में पढ़ाये जाने के कारण एक क्षितिज रेखा की दिशा में बायीं से दायीं ओर लिखे हुए होते हैं। इस जमाव को ही आधार मानकर विभिन्न विषयों के समन्वय को क्षितिज-रेखा-समन्वय कहते हैं।

(ग) व्यवस्था के अनुसार समन्वय को निम्न भागों में बाँटा जाता है :—

(१) सुव्यवस्थित समन्वय—इस प्रकार के समन्वय के लिए विभिन्न विषय पढ़ाने वाला एक ही शिक्षक या विभिन्न विषयों के शिक्षक अपने एक दिन में पढ़ाये जाने वाले विभिन्न पाठों का आयोजन इस प्रकार करते हैं कि पहले पीरियड में पढ़ाये जाने वाले विषय का दूसरे पीरियड में पढ़ाए जाने वाले अन्य विषय के साथ सुव्यवस्थित रूप से समन्वय किया जा सके। इसी प्रकार से अन्य पीरियडों में पढ़ाये जाने वाले विषयों का भी आपस में समन्वय किया जाता है। इस पद्धति से एक विषय का पढ़ाने वाला शिक्षक अन्य विषयों के शिक्षण से पूर्व आयोजन एवं व्यवस्था के अनुसार सहायता लेता है और अपने विषयों को अधिक योजना से पढ़ाने में सफल होता है।

(२) आकस्मिक समन्वय—किसी एक विषय को पढ़ाते समय ऐसे अनेकों अवसर आते हैं जबकि शिक्षक अपने पाठ को अधिक सुन्दर एवं लाभप्रद बनाने के लिए अन्य विषयों से बिना किसी विशेष आयोजन के आकस्मिक रूप में सम्बन्ध स्थापित कर सकता है। ऐसे सह-सम्बन्ध को ही आकस्मिक समन्वय कहते हैं।

उपसंहार—उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि विभिन्न विषयों के अंग विभिन्न-विषय, समय-विभाग-चक्र, एवं व्यवस्था की दृष्टि से समन्वय के अनेकों प्रकार हो सकते हैं परन्तु प्रत्येक प्रकार के समन्वय में ज्ञान के एक अंग का दूसरे अंग से निश्चित ही आकस्मिक रूप में या व्यवस्थित रूप से सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयत्न किया जाता है। आज की दोषपूर्ण शिक्षा, जिसमें प्रत्येक विषय अपने आप में एक स्वतन्त्र इकाई बन चला है, सुधार की ओर तभी अग्रसर हो सकेगी, जबकि वह सब विषय के ज्ञान को एक इकाई मानकर चलेगी। इसी ओर एक महत्वपूर्ण कदम राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने बुनियादी शिक्षा के अन्तर्गत आज से करीब २० वर्ष पूर्व उठाया था। इस बुनियादी शिक्षा में समन्वय को अपना वह स्थान, जिसका वह अधिकारी है, प्राप्त हुआ है। परम्परागत शिक्षा पद्धति के अनेकों दोष, समन्वय के द्वारा ही दूर किए जा सकते हैं।

सारांश

विभिन्न विषयों का पृथक्करण जब चरम सीमा पर पहुँच गया तब, ... में एकीकरण की आवाज उठाई गई और शिक्षा समन्वय का सिद्धान्त ...

समन्वय से अर्थ—समन्वय से अर्थ है एक विषय के पढ़ाने में अन्य विषयों को उस सीमा तक सहायता प्राप्त करना जहाँ तक प्रस्तुत विषय के समझने में सहायता प्राप्त हो।

समन्वय के प्रकार—(क) एक विषय के अंग, विभिन्न विषय एवं कार्य के आपसी सम्बन्ध के आधार से :—

(१) एक विषय के विभिन्न अंगों का समन्वय।

(२) पाठ्यक्रम के विभिन्न विषयों का समन्वय।

(३) ज्ञान और कर्म का समन्वय।

(ख) कक्षा समय-विभाग-चक्र के विषयों के जमाव के अनुसार :—

(१) लम्ब-रेख-समन्वय।

(२) क्षितिज-रेख-समन्वय।

(ग) व्यवस्था के अनुसार :—

(१) सुव्यवस्थित समन्वय।

(२) आकस्मिक समन्वय।

उपसंहार—परम्परित शिक्षा को सुधार की ओर अग्रसर होने के लिए यह जरूरी है कि वह समन्वय की पद्धति को स्वीकार कर ले।

अभ्यासार्थ प्रश्न

(१) समन्वय का अर्थ स्पष्ट करते हुए इसके महत्व पर विस्तार से प्रकाश डालिए।

(२) समन्वय कितने प्रकार का है? किन्हीं दो प्रकार के समन्वय पर प्रकाश डालिए।

बुनियादी शिक्षा में समवाय

पूर्व अध्याय में समन्वय के प्रकरण के अन्तर्गत यह स्पष्ट किया गया है कि समन्वय का वह स्वरूप, जिसमें कर्म का ज्ञान से समन्वय किया जावे, समवाय कहा जाता है। अब तक की समवाय रहित शिक्षा ने हमारे समाज में दो दल पैदा कर दिए। एक वह दल जो शिक्षित कहा जाता है। उस दल में शिक्षा द्वारा केवल कर्म रहित शिक्षा का समावेश है। एक दूसरा दल है जो अशिक्षित वर्ग कहा जाता है। इस दल में केवल शिक्षा रहित कर्म का समावेश है। अगर निष्पक्ष रूप से मूल्यांकन किया जावे तो दोनों ही पक्ष बराबर माने जाने चाहिएँ। कर्म रहित शिक्षा प्राप्त व्यक्ति का भी उतना ही मूल्य होना चाहिए जितना कि उस व्यक्ति का हो जो काम तो कर सकता है पर उसमें शिक्षा का अभाव है। दुर्भाग्य से भारत की पराधीनता के युग में कर्म विहीन शिक्षा प्राप्त व्यक्तियों को समाज एवं राज्य द्वारा अधिक आदर मिलने की परिपाटी चल पड़ी। इसका फल यह हुआ कि समाज में केवल कर्म विहीन शिक्षा से उत्पन्न ज्ञान की अधिकता लक्षित होने लगी। इस कर्म विहीन शिक्षा की अधिकता ने राष्ट्र में ऐसी अनेकों समस्याएँ उत्पन्न कर दी है कि शिक्षा में आमूल परिवर्तन देश के लिए अनिवार्य हो गया। इस आवश्यकता की पूर्ति हेतु बुनियादी शिक्षा सामने आई। इसी बुनियादी शिक्षा को समवायी शिक्षा भी कहते हैं।

समवायी विचारधारा का प्रारम्भिक रूप—प्रगतिवादी विचारधारा के फलस्वरूप, परम्परित शालाओं में प्रचलित समन्वय की प्रणाली का प्रयोग, बुनियादी शालाओं में एक विशेष प्रकार के तरीके से किया जाता है। इस विशेष तरीके को ही समवाय कहते हैं। इसी समवाय प्रणाली के कारण ही बुनियादी तालीम अनेकों शिक्षा प्रणालियों की तुलना में श्रेष्ठ मानी गई है। इस शिक्षा प्रणाली में उद्योग को शिक्षा पद्धति के आधार का स्थान प्राप्त हुआ है। परम्परित शिक्षा में केवल ज्ञान को ही प्रमुख स्थान प्राप्त था। उस ज्ञान के व्यावहारिक अंग को समन्वय के सिद्धान्त के अन्तर्गत महत्व दिया जाने का श्रीगणेश प्रगतिवादी शिक्षा में हुआ। अतः विभिन्न विषयों के ज्ञान में आपसी सम्बन्ध पैदा करने के लिए प्राप्त ज्ञान के व्यावहारिक अंग को भी महत्व दिया जाने लगा। शालाओं में काम करने का तरीका या जीवनयापन के नियम पढ़ने की परिपाटी चल पड़ी और यह माना जाने लगा कि उस तरीके या नियम को व्यवहार में लाने का अवसर तो शाला के जीवन के पश्चात् ही आवेगा। परन्तु हम वास्तव में इस प्रकार नहीं सीखते। जीवन में हम काम करते-करते ज्ञान प्राप्त करते हैं एवं ज्ञान प्राप्त करने के साथ ही हम काम भी करते जाते हैं। इसी विचारधारा के आधार पर समन्वय का वह स्वरूप जिसे

हम समवाय कह चुके हैं एक नवीन शिक्षा पद्धति के रूप में हमारे सामने आया। परम्परित शिक्षा पद्धति एकांगी थी। उसमें ज्ञान के व्यावहारिक पक्ष को स्थान नहीं था। बुनियादी शिक्षा में शिक्षा के ज्ञानात्मक और क्रियात्मक दोनों अंगों को बराबर का स्थान दिया गया। शिक्षा के कर्म पक्ष के अन्तर्गत बुनियादी शिक्षा की योजना मे समवाय का आधार प्रारम्भ मे उद्योग को ही स्वीकार किया गया था। शिक्षा उद्योग के माध्यम द्वारा ही और केन्द्रीय उद्योग के आधार पर बालक को समस्त विषय पढाए जावें। इस तरीके से पाठ्यक्रम का अधिकांश भाग उद्योग के सहारे पढ़ाया जा सकता है। फिर भी पाठ्यक्रम के कुछ अंश ऐसे हैं जो समवाय के अन्दर स्वाभाविक रूप में नही आते। इस समस्या का समाधान करते हुए महात्मा जी ने स्वयं एक बार व्यक्त किया था कि ऐसा ज्ञान जो समवाय में नहीं आता उसे छोड़ दिया जाना चाहिए। इसी विचार का स्पष्टीकरण करते हुए महात्मा जी ने कहा था—"आखिर आप देखेंगे कि बहुत सी चीजें जो आप पहले शिक्षा क्रम मे छोड चुके थे, उनका आपने उसमें समावेश कर लिया है। जितनी चीजों का समावेश करने लायक था उनका समावेश हो चुका है और आपने आखिर तक जिनको निकम्मी समझकर छोड दिया था वे बहुत निर्जीव और छोड़ने लायक ही हैं। यह मेरा जीवन का अनुभव है। मैंने यदि बहुत सी चीजें छोड न दी होती तो मैं जो बहुत सी चीजें कर सका हूँ, वह नही कर सका होता।" उद्योग को माध्यम बनाने की इस विचारधारा मे सबसे बड़ा खतरा यही था कि शालाएँ धीरे-धीरे कहीं कारखानों का रूप न धारण करलें। इस खतरे के प्रति सजग होकर इस विचारधारा में सुधार जरूरी था।

समवायी विचारधारा का परिष्कृत रूप—केवल उद्योग से सम्पूर्ण ज्ञान को समन्वित करने के नियम से ऐसा भी सम्भव था कि अप्राकृतिक समवाय किए जाने की परिपाटी बल पकड ले। अतः इस पर विचार किया जाने लगा कि समवाय का आधार उद्योग के सिवाय और किसे बनाया जा सकता है। अखिल भारतीय बुनियादी शिक्षा के पूना सम्मेलन ने यह निर्णय कर लिया कि बुनियादी उद्योग के अतिरिक्त प्राकृतिक और सामाजिक वातावरण भी समवाय के लिए पर्याप्त अवसर प्रदान करते हैं अतः उनका भी लाभ लिया जाना चाहिए। इस निर्णय ने समन्वय के क्षेत्र को अधिक विकसित करते हुए उन व्यक्तियों की आलोचना को समाप्त कर दिया जिनका यह कहना था कि बुनियादी उद्योगों के आधार पर सब विषयों के ज्ञान के, सब अंगों का, प्राकृतिक समन्वय सम्भव नहीं है।

समवाय के विभिन्न आधार—आज हमारे सामने समवाय के तीन आधार उपस्थित हैं। पाठ्यक्रम का सम्पूर्ण ज्ञान इन तीनों आधारों से सम्बद्ध होता है। बुनियादी शाला मे इनका पूरा-पूरा लाभ उठाकर बालकों को शिक्षित करने का प्रयत्न किया जाता है। समवाय के आधारों का शाला मे निम्न प्रकार से उपयोग किया जाता है :—

(क) प्रकृति—प्रकृति की गोद में बालक जन्म लेता है। जन्म के बाद वह

सहसा परिचय प्राकृतिक वातावरण से पाता है। धीरे-धीरे उसे यह ज्ञात होता है कि यह वातावरण ही समाज को अधिकांश वस्तुएँ देता है। प्राकृतिक वातावरण से प्राप्त वस्तुएँ प्रारम्भिक एवं कच्चे रूप में होती हैं। ये वस्तुएँ मानव के लिए एक चुनौती हैं। अगर उसने कर्म समन्वित ज्ञान प्राप्त किया है तो वह निश्चित ही उनका उपयोग कर सकेगा। उनका भी रूपान्तर कर प्राकृतिक वातावरण द्वारा प्रदान कठिनाइयों का मुकाबला करने के हेतु अपने को अधिक सबल बना सकेगा। वह इस कार्य द्वारा अपना ही नहीं वरन् अन्य साथियों का भी भला कर सकता है। वातावरण के निरीक्षण द्वारा बालक प्रकृति-विज्ञान और सामान्य-ज्ञान के अध्ययन हेतु अच्छा अवसर पाते हैं। उन्हें यह पता भी लग जाता है कि करीब-करीब सब उद्योग कच्चे सामान की दृष्टि से, प्रकृति की दया पर ही निर्भर रहते हैं। समवायी शिक्षा में शिक्षक इस प्राकृतिक वातावरण का पूरा-पूरा लाभ उठाने का प्रयत्न करता है।

(ख) उद्योग—प्रकृति द्वारा प्रदत्त समस्त कच्चा सामान उद्योग द्वारा शुद्ध करने, सुधारने एवं रूपान्तरित करने पर मानव एवं समाज के प्रयोग एवं उपयोग के योग्य बनाया जाता है। उपयोग की दृष्टि से एक ओर अनन्त जन-राशि है और दूसरी ओर प्रकृति का अपार एवं अनंत कोष। गाँव की एक झोंपड़ी में काम करने वाले एक कारीगर को और राष्ट्र के बड़े से बड़े कारखाने को प्राकृतिक वातावरण से ही कच्चा माल प्राप्त होता है और वही कच्चा माल रूप बदलकर समाज के उपयोग के योग्य बनता है। उद्योग प्रगति को समाज से जोड़ने वाली एक कड़ी का काम करता है। उद्योग का क्षेत्र अनंत है। इसी कारण उद्योगों की तालिका भी बहुत लम्बी है। इस जटिलता को दूर करने के लिए उद्योगों को मानव की आवश्यकता के आधार पर संगठित करने की परिपाटी बुनियादी शालाओं में प्रारम्भ हुई। मानव की तीन बुनियादी आवश्यकतायें स्वीकार की गई हैं। वे हैं कपड़ा, भोजन और शरण-स्थान।

(१) कताई बुनाई—कपड़ा मानव की बुनियादी आवश्यकताओं में बहुत महत्वपूर्ण है। हम भोजन बिना रह सकते हैं परन्तु कपड़े बिना नहीं रह सकते। वस्त्र-रहित होने पर समाज में तो क्या कुटुम्बियों के मध्य भी आने की हिम्मत नहीं होती। दैनिक क्रियाएँ ही रुक जाती हैं। भोजन के अभाव में हम पर्याप्त समय तक अपनी दिनचर्या यथापूर्व चालू रख सकते हैं। इसी कारण आज के मानव की बुनियादी आवश्यकताओं में वस्त्र का स्थान सर्वप्रथम आता है। बुनियादी तालीम में भी इसी आधार पर कताई को महत्व दिया गया है। महात्माजी ने एक स्थान पर कहा है "कताई से संबंध रखने वाले अलग-अलग कामों की बुद्धिपूर्वक छानबीन की जाय, तो उससे कई बातें सीखी जा सकती हैं। सच पूछा जाय तो कताई में इन्सान की सारी तालीम समायी हुई है, जो दूसरी किसी दस्तकारी में नहीं मिलेगी।"

(२) कृषि—मानव की द्वितीय महत्वपूर्ण आवश्यकता भोजन है। भोजन कृषि द्वारा प्राप्त होता है। भारत एक खेतिहर देश है। इसकी अधिकांश जनसंख्या इस उद्योग एवं इससे सम्बद्ध उद्योगों में संलग्न है। हमारे राष्ट्र के सामाजिक एवं आर्थिक जीवन के बहुत बड़े अंश को यह उद्योग नियन्त्रित करता है। इसी आधार पर इस

उद्योग को बुनियादी तालीम में महत्व दिया जाकर समन्वय के केन्द्र के रूप में स्थान दिया गया है। यह उद्योग बालक के दैनिक जीवन की समस्याओं को हल करने के लिये प्रचुर सामग्री उपलब्ध करता है और बालक के ज्ञान, कर्म और भावनाओं का एक साथ विकास करता है।

(३) शरण-स्थान का निर्माण—मानव की तृतीय बुनियादी आवश्यकता रहने का घर है। भवन-निर्माण के उद्योग के अन्तर्गत कताई-बुनाई और कृषि के अन्तर्गत आने वाले उद्योगों के अतिरिक्त शेष सभी उद्योग समा जाते हैं। इस उद्योग में छोटे-बड़े सभी काम जैसे भवन-निर्माण कला, बढ़ई गिरी, ताँबे, पीतल व लोहे का काम, चमड़े का काम, मिट्टी के बर्तन बनाने का काम आदि अनेक उद्योग आते हैं। समवाय के आधार के रूप में शिक्षक इनका बड़ी सरलता एवं सफलता से उपयोग कर सकता है।

उद्योग के चुनाव का प्रश्न भी समवायी शिक्षा में महत्वपूर्ण प्रश्न है। इस पर विस्तार से वर्णन "उद्योग का चुनाव" नामक पाठ में किया गया है। यहाँ तो केवल यही स्पष्ट किया जाना जरूरी है कि उद्योग के चुनाव में स्थानीय वातावरण को अधिक से अधिक ध्यान में रखना चाहिए। उस वातावरण का एक जीवनव्यापी और विविध अंगयुक्त उद्योग, शिक्षण के माध्यम के तौर पर लिया जा सकता है।

(ग) सामाजिक व सांस्कृतिक वातावरण—शाला के अतिरिक्त समय को बालक शाला से बाहर सामाजिक वातावरण में व्यतीत करता है। बालक का घर भी उसी सामाजिक वातावरण का एक अंग है। प्रत्येक समाज की अपनी परम्पराएँ होती हैं, संस्कृति होती है, रीति-रिवाज होते हैं। इन सब पर राष्ट्र एवं समाज के प्राकृतिक वातावरण एवं इतिहास की छाप होती है। इन्हीं के आधार पर एक समाज के व्यक्तियों का जीवन दूसरे व्यक्तियों के जीवन से भिन्न होता है। बालक को अपने सामाजिक जीवन एवं वातावरण से परिचय कराया जाना जरूरी है। प्राकृतिक वातावरण से प्राप्त सामग्री उद्योग द्वारा परिष्कृत एवं मानव उपयोग के अनुकूल बनाई जाने पर, समाज में ही खपती है। इस दृष्टि से समाज भी समवाय के केन्द्र के रूप में एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है और बालक के विकास में योग देता है।

(घ) प्रवृत्तियाँ—समवाय के आधार की दृष्टि से प्रवृत्तियों का भी भारी महत्व है। परन्तु इनका बालकों के पाठ्यक्रम के अनुसार होना आवश्यक है। ये ऐसी हों जिनमें कक्षा के अधिक से अधिक बालक भाग ले सकें। बालकों के लिए लाभकारी हों और अगर बालक उनको घर जाकर अभ्यास करें, प्रयोग करें, या निर्मित वस्तु को उपयोग में ले तो उनको किसी भी प्रकार के अहित का भय न रहे। उदाहरणतः अगर एक शिक्षक आँख की औषधि को प्रवृति के रूप में बनवाये और बालक उस औषधि का उपयोग करें और उस औषधि में किसी गलती के रह जाने के कारण छात्र की आँखें खराब हो जावें तो शिक्षक भी परेशानी में पड़ सकता है। ऐसी प्रवृत्तियों से हर हालत में बचा जाना चाहिए। प्रवृत्ति समन्वित पाठ के प्रारम्भ में मध्य में, या अन्त में कहीं भी उपयुक्त अवसर के अनुसार आयोजित की जा सकती

है। परन्तु प्रवृत्ति अगर ऐसी हो सके जो शुरू होने के पश्चात् वह चलती रहे और साथ-साथ ज्ञान भी दिया जाता रह सके और जब प्रवृत्ति पूरी हो तभी ज्ञान देने का कार्य भी पूरा हो जाये—तब हम कहेंगे कि शिक्षक ने प्रवृत्ति आधारित शिक्षा का आयोजन करने में सफलता हासिल कर ली है। यही क्रम अगर प्रवृत्ति, उद्योग और सामाजिक वातावरण को भी शिक्षा का आधार बनाकर पाठ पढ़ाने में लागू किया जाए तो अत्युत्तम होगा।

प्रवृत्तियाँ कताई, बुनाई, कृषि, गत्ते के काम, ताड़, बाँस या घास के काम, लघु उद्योग, निरीक्षण के विभिन्न अंग और समाज, सभी में से चुनी जा सकती हैं। हमारे पाठ्य विषय भी प्रवृत्ति के स्रोत बन सकते हैं। उदाहरणतः कक्षा पाँच के सामान्य विज्ञान में स्वास्थ्यप्रद मकान पढ़ाते समय शिक्षक एक आदर्श कमरे का मॉडल बनवा सकता है। बालक जब तक इस काम को करें तब तक शिक्षक, गणित का ज्ञान—दिवालों के टुकड़ों के नाप, क्षेत्रफल गत्ते के भाव आदि से, सामाजिक ज्ञान की जानकारी—गत्ता कहाँ बना, कैसे यहाँ तक आया आदि आदि प्रश्नों के आधार पर, हिन्दी का ज्ञान—आदर्श मकान गद्य द्वारा और सामान्य विज्ञान का ज्ञान—शुद्ध वायु, सूर्य का प्रकाश, पानी की नालियाँ, पड़ौस आदि की जानकारी द्वारा दे सकता है। इसी तरह हर स्तर पर प्रवृत्तियाँ ढूंढी जा सकती हैं।

उपसंहार—समवाय के लिए प्रवृत्तियों के ढूंढने के काम में अगर हम लोग जुट जावें तो हमें अनंत प्रवृत्तियाँ मिल सकती हैं और हमें इनका अभाव कभी भी महसूस नहीं होगा।

सारांश

समन्वय का वह रूप जिसमें कर्म का ज्ञान से समन्वय किया जावे समवाय कहा जाता है।

समवाय का रूप—प्रारम्भ में समवाय केवल उद्योग के आधार पर किया जाने की विचारधारा चल रही थी। परन्तु पूना सम्मेलन ने यह निर्णय किया कि समवाय के आधार के रूप में बालक के प्राकृतिक और सामाजिक वातावरण का भी उपयोग किया जा सकता है।

समवाय के विभिन्न आधार—आज हमारे सामने समवाय के तीन आधार उपस्थित हैं जो इस प्रकार हैं—(क) प्रकृति, (ख) उद्योग, (ग) सामाजिक वातावरण, (घ) प्रवृत्तियाँ।

योग्य अध्यापक उपयुक्त योजना द्वारा विभिन्न आधारों का लाभ उठाने का प्रयत्न करते हैं।

अभ्यासार्थ प्रश्न

(१) समवाय क्या है? बुनियादी शिक्षा को समवायी शिक्षा पद्धति क्यों कहते हैं?
(२) समवाय के विभिन्न आधारों को अंकित करते हुए उनकी उपयुक्तता पर अपना मत प्रकट कीजिये।

अध्याय १२

समवायी शिक्षा में उद्योग का चुनाव

उद्योग-शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य—"....उद्योग के प्रारम्भ करने का प्रमुख उद्देश्य, ऐसे कारीगर तैयार करना नहीं है, जो किसी उद्योग को यान्त्रिक पद्धति से पूरा करें, वरन् उद्योग में निहित युक्तियों (रिसोर्सेज) का शैक्षणिक उद्देश्यों के लिए उपयोग करना है। अतः उद्योग के शैक्षणिक उपयोग और सहोद्योग के सिद्धान्तों, योजना, शुद्धता (एक्यूरेसी), तत्परता (इनीशियेटिव) और ज्ञान प्राप्ति में वैयक्तिक उत्तरदायित्व पर बल दिया जाना चाहिए"।* महात्मा गांधी ने भी जो इस बुनियादी शिक्षा के जन्मदाता थे अपना उद्देश्य निम्न शब्दों में स्पष्ट किया था :—

"बुनियादी स्कूलों में बच्चे केवल एक हस्तकला ही सीखने नहीं जाते। वे स्कूलों में प्रारम्भिक शिक्षा के लिये और हस्तकला द्वारा अपने मस्तिष्क की उन्नति के लिए जाते हैं।" इससे स्पष्ट है कि उनका उद्देश्य उद्योग केन्द्रित शिक्षा से नहीं था जैसा कि अर्थ आजकल लगाने लगे हैं। यदि बुनियादी शिक्षा का अर्थ केवल उद्योग शिक्षण से होता तो महात्माजी यह कभी न कहते कि "यदि आपको मैं आज अच्छी तरह समझा सकूं कि बुनियादी शिक्षा थोड़ी साहित्यिक और थोड़ी औद्योगिक शिक्षा नहीं है तो मुझे सन्तोष होगा। यह नई शिक्षा हस्तकला द्वारा बालक का सम्पूर्ण शिक्षण है।" अर्थात् उद्योग शिक्षा का साधन है न कि लक्ष्य। किसी भी उद्योग-केन्द्रित शिक्षा का लक्ष्य उद्योग शिक्षण ही होगा और साधन साधारण शिक्षा एवं हस्तकार्य। पर बुनियादी शिक्षा का साधन है—उद्योग और लक्ष्य—बालक का सर्वांगीण विकास। अतः यदि इसे उद्योग-केन्द्रित शिक्षा कह देने मात्र से भ्रम उत्पन्न हो गया हो तो शुद्धि कर ली जानी चाहिए।

उद्योग के चुनाव में ध्यान देने योग्य बिन्दु—बुनियादी शिक्षा उद्योग द्वारा शिक्षा प्रदान कर बालक के सर्वाङ्गीण विकास का दावा करती है। बालक को अधिकाधिक विषयों का ज्ञान कराना उद्योग पर ही निर्भर है। अतः बालक के लिए उद्योग का चुनाव करते समय पूर्णतया सावधानी रखने की आवश्यकता है। उद्योग के चुनाव के समय निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए :—

(१) उद्योग बालक की रुचि के अनुकूल हो—उद्योग बालक की इच्छानुकूल होना चाहिए। ऐसा न होने की अवस्था में बालक उद्योग को भारस्वरूप मानने लगेगा। उत्सुकता एवं जिज्ञासा के अभाव में सीखने की भी गति शिथिल रहेगी। अतः उद्योग बालक की रुचि के अनुकूल चुना जाना चाहिए। पर इसमें एक आपत्ति यह आवेगी कि बालक की रुचि इतनी परिपक्व एवं परिष्कृत नहीं होती कि

* एडमिनिस्ट्रेशन ऑफ बेसिक ऐजूकेशन—नेशनल इन्स्टीट्यूट ऑफ बेसिक ऐजूकेशन, नई दिल्ली, वर्ष प्रकाशन—१९६०, पृष्ठ ७१।

वह उद्योग का चुनाव कर सके। इस समय शिक्षक को बड़ी ही बुद्धिमता से कार्य करना चाहिए। उसे देखना चाहिए कि बालक को किस कार्य में अधिक आनन्द का अनुभव होता है, किस कार्य में आलस्य आ जाता है, किस कार्य में शीघ्र थकान महसूस करने लग जाता है, किस कार्य के लिए वह ऐसे प्रश्न पूछता है जिसमें उसकी पुणतापद भावना उस कार्य के प्रति स्पष्ट झलकती है आदि। इन्हीं बातों के आधार पर शिक्षक उद्योग का चुनाव बालक की रुचि के अनुकूल करने में सफल होगा।

(२) उद्योग के विभिन्न अंगों की कक्षाक्रम में विभाजन की सम्भावना—उद्योग ऐसा भी चुना जा सकता है कि जिसका संकुचित क्षेत्र हो अर्थात् एक या दो कक्षाओं में ही समाप्त हो जाए। ऐसी स्थिति में बालक को प्रत्येक आगे की कक्षा में उद्योग बदलना पड़ेगा। यह अनुचित है। उद्योग ऐसा होना चाहिए जिसके विभिन्न अंग चातुर्य एवं विकास के अनुसार पहली कक्षा से आठवीं कक्षा तक विभाजित किये जा सकें। प्रत्येक आगे की कक्षा में बालक उसी उद्योग के उस अंग का अध्ययन करे जो उस कक्षा के अनुकूल हो। अर्थात् उद्योग की प्रारम्भिक अवस्था सात साल के बच्चे के अनुकूल हो और उत्तरोत्तर आगे की कक्षाओं में पढ़ने वाले बालकों के अनुकूल बनता जाए। जैसे पहली कक्षा में कताई बुनाई उद्योग की प्रारम्भिक अवस्था सिखाई जाय अर्थात् कपास में से बिनौले निकालना, रुई साफ करना, पिंजन करना, पूनी बनाना आदि। दूसरी कक्षा में तकली पर सूत कातना सिखाना चाहिए। तीसरी और चौथी कक्षा में तकली और चरखे पर सूत कातने का अच्छा अभ्यास कराना चाहिए। पाँचवीं कक्षा में निवाड़ आदि मोटी वस्तुएँ बुनना सिखाना चाहिए। छठी कक्षा में मोटी खादी बुनना तथा सातवीं व आठवीं कक्षाओं में उत्तरोत्तर पतला कपड़ा बुनना सिखाना चाहिए।

(३) उद्योग अनिवार्य आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाला हो—मानव की अनिवार्य आवश्यकतायें हैं—भोजन, वस्त्र और आश्रय। बुनियादी शिक्षा में इनके साधन जुटाने का विशेष ध्यान रखा जाता है। अतः उद्योग ऐसा होना चाहिये जो इनमें से किसी न किसी आवश्यकता की पूर्ति करने वाला हो।

(४) उद्योग सामाजिक तथा प्राकृतिक वातावरण के अनुकूल हो—उद्योग स्थानीय वातावरण के अनुकूल होना चाहिये। समाज की आवश्यकता एवं प्रकृति के अनुकूल उद्योग अधिक लाभदायक होगा। नगर में वहाँ के वातावरण के अनुकूल रसोई कार्य, होटल का कार्य, यन्त्र सम्बन्धी कार्य आदि उद्योग कार्य बनेंगे। गाँवों में कताई, बुनाई, कृषि, लकड़ी काटने एवं ले जाने के विभिन्न साधन, पशु-पालन, चमड़े का काम आदि उद्योग कार्य बनेंगे।

(५) व्यवसाय बन सके—बुनियादी शिक्षा का उद्देश्य बालक को स्वावलम्बी नागरिक बनाना है। अतः उद्योग ऐसा होना चाहिये जो बाद के जीवन में बालक के रोजी कमाने के व्यवसाय का रूप धारण कर सके।

(६) उद्योग अधिकाधिक विषयों का ज्ञान कराने वाला हो—बुनियादी शिक्षा समवायी शिक्षण पद्धति है। अतः उद्योग ऐसा होना चाहिए जिससे अधिकाधिक विषयों

का समवाय बाँधा जा सके एवं अधिकाधिक विषयों के ज्ञानदान में सहायक हो।

(७) आवश्यक सामान आसानी से उपलब्ध हो—उद्योग ऐसा होना चाहिये, जिसके लिए कच्चा सामान स्थानीय वातावरण में ही आसानी से प्राप्त हो सके। दूर से सामान मंगवाने पर समय और पैसे के अनावश्यक खर्चे की आशंका रहती है। जरूरी औजार भी आसानी से प्राप्त किये जा सकने की सुविधा होनी चाहिये।

(८) उद्योग बालक की शारीरिक क्षमता के अनुकूल हो—उद्योग बालक की शारीरिक क्षमता के अनुकूल होना चाहिए। यदि बालक की शारीरिक स्थिति निर्बल है और यदि उद्योग बालक की शारीरिक क्षमता से बाहर हुआ तो वह उसको भार-स्वरूप समझेगा।

(९) उद्योग सर्वोदयी भावना वाला हो—उद्योग कार्य ऐसा होना चाहिये जो कि सर्वसाधारण के हित की वस्तुएँ उत्पन्न करने वाला हो। यदि उद्योग कार्य अणु बम के विनाशात्मक उत्पादन की ओर ले जाता हो तो यह सर्वोदयी उद्योग नहीं है। यद्यपि कर्म और ज्ञान का समन्वय उसमें है। श्री विनोबा जी ने लिखा है "ऐसा उद्योग नई तालीम से नहीं चलेगा क्योंकि उसमें हमारा सर्वोदय का सिद्धान्त बाधित होता है।"

(१०) उद्योग आध्यात्मिक एवं नैतिक गुणों का विकास करने वाला हो—उद्योग ऐसा होना चाहिए जो कि बालक में श्रमनिष्ठा उत्पन्न करे, स्वावलम्बी भावना भरे तथा उसे नैतिकता की ओर ले चले। उसमें आत्म-गौरव एवं स्वाभिमान की भावना पैदा करे। वह अपने हाथों और पाँवों के बल पर समाज में टिकने की क्षमता रख सके।

उद्योग के चुनाव सम्बन्धी अन्य प्रश्न—उद्योग के चुनाव में इन उपरोक्त बातों का ध्यान रखने पर भी कई प्रश्न शिक्षक के मस्तिष्क में उत्पन्न होते हैं। ऐसे प्रश्न आज के शिक्षक समाज में विवाद का रूप धारण किये हुए हैं। उनमें से कतिपय निम्नलिखित हैं :—

(१) क्या गाँव और नगर के लिये समान उद्योग होने चाहियें—बुनियादी शिक्षा को गांधी जी ने प्रयोग के लिए गाँवों में प्रारम्भ किया था तथा इसमें जीवन की अनिवार्य आवश्यकतायें—भोजन, वस्त्र और आश्रय—प्रदान करने वाले उद्योगों पर अधिक जोर दिया था, जो साधारणतया गाँवों के प्रधान व्यवसाय हैं। इससे जनता के मस्तिष्क में यह बात दृढ़ता से जम गई है कि बुनियादी शिक्षा केवल गाँवों के अनुकूल है। वस्तुतः बुनियादी शिक्षा में, जो उद्योग द्वारा बालक का सर्वाङ्गीण विकास करने की शिक्षण पद्धति है, गाँव और नगर का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। कहीं भी उपरोक्त बिन्दुओं के आधार पर उद्योग का चुनाव कर उसके द्वारा बालक का विकास किया जा सकता है। नगर के उद्योग नगर के वातावरण के अनुकूल होंगे। वहाँ कागज बनाना, छपाई का काम, रंगाई का काम, लुहार का काम, कल-पुर्जे बनाने का काम, धातु का काम, सिलाई का काम टाइप राइटिंग, सिलावटी काम, साबुन बनाने का काम, विभिन्न प्रकार के तेल बनाने का काम, दवाइयाँ बनाने का काम,

चमड़े का काम, सुथारी काम आदि उद्योग के रूप में अपनाए जा सकते हैं। ग
वहाँ के वातावरण के अनुकूल उद्योग जैसे कृषि, कताई, बुनाई, पशुपालन,
काटना, चमड़े का काम, सुथारी काम, लोहारी काम, इमारती काम आदि अ
जा सकते हैं। हाँ, यह अवश्य है कि उद्योग ऐसा होना चाहिए कि अधिकाधिक वि
का ज्ञान उसके द्वारा कराया जा सके। पर यदि विषय शेष रह जायें तो उन्हें
उद्योग या प्राकृतिक एवं सामाजिक वातावरण के अनुसार पढ़ाया जाना चाहि
अधिकाधिक विषयों का ज्ञान कराने के लिए तथा अन्य महत्ताओं की दृष्टि से कृषि
कताई-बुनाई ही सर्वश्रेष्ठ उद्योग हैं। पर इसका अर्थ यह नहीं कि वातावरण के अ
कूल इन्हीं को अपनाना चाहिए। आवश्यकतानुसार किसी भी उत्पादक उद्योग द्
नगर या गाँव में बालक का विकास किया जा सकता है। इस सम्पूर्ण कार्य में शि
की साधन अन्वेषणता महत्वपूर्ण योग देगी।

(२) शाला में कितने उद्योग सिखाने चाहिएँ—उद्योग ऐसा होना चाहिये
पहली कक्षा से आठवीं कक्षा तक नियमित रूप से उत्तरोत्तर सीखने के लिए नया
बनाए रहे। महात्मा गाँधी ने भी यही कहा था, "जिस तरह एक ही बाजे पर अ
तरह के राग बजाए जा सकते हैं उसी तरह कताई और उसके द्वारा शिक्षा देने में
विविधता और नयापन हो सकता है। एक हुनर के पश्चात् दूसरा हुनर बदलते ज
में बच्चा एक बन्दर की तरह हो जाता है जो एक टहनी से दूसरी टहनी पर कूद
रहता है और जिसका घर कहीं भी नहीं है।" अतः यह स्पष्ट ही है कि जहाँ तक
सके एक ही ऐसा परिपक्व उद्योग चुनना चाहिये जिससे बालक का विकास अच्छे ढ
से किया जा सके।

तथापि आजकल यह माना जाने लगा है कि प्रत्येक शाला में कम से कम ती
उद्योग होने चाहियें। एक मुख्य तथा दो गौण, जिससे बालक इच्छानुकूल किसी ए
को प्रमुख उद्योग बना सकें तथा दूसरे कार्य भी सीख सकें। तीन उद्योग के आधा
पर विभिन्न विषयों के समवाय की भी आपत्ति नहीं रहती क्योंकि प्रत्येक विषय क
पढ़ाने के लिए किसी न किसी उद्योग कार्य को सिखाते समय अवसर मिल ही
जाता है।

(३) आज के यन्त्रों के युग में छोटे उद्योग कहाँ तक सफल सिद्ध होंगे—
बुनियादी शिक्षा की सफलता में यह एक विवादपूर्ण विषय बना हुआ है। यही नहीं
वैज्ञानिक एवं यान्त्रिक प्रगति को बढ़ते हुए देख कर तो कई व्यक्ति यह शंका करने
लगे हैं कि बुनियादी शिक्षा हमें प्रगति की दौड़ में अवश्य पछाड़ेगी। जहाँ वैज्ञानिक
अन्वेषणों ने भयंकर वस्तुओं को जन्म दिया है, जो राष्ट्र को अधिक शक्तिशाली एवं
घातक दिखाने वाली बनाती हैं वहाँ बुनियादी शिक्षा क्या करेगी? मेरे एक साथी
तो यहाँ तक कहते हैं कि विदेशों में वैज्ञानिक अन्वेषणों के फलस्वरूप जब हवाई
जहाज बम वर्षा करेंगे तो क्या तकलों को घुमाने के लिए लगाई गई कुटकी उन्हें रोक
सकेगी।

वास्तव में भौतिक दृष्टि से एकाएक समस्या गहन दिखाई देती है पर विचा-

रने पर तुच्छ प्रतीत होती है। गाधी जी के अनुसार वही समाज सर्वश्रेष्ठ है जिसमें अर्थ एवं उद्योगों का विकेन्द्रीकरण है। जिसमें सभी लोग नैतिकता के मार्ग पर चलते हुए अपनी जीविका कमाते हैं। अतः ऐसे समाज का निर्माण बुनियादी शिक्षा ही कर सकती है।

जहाँ यान्त्रिक युग और बुनियादी शिक्षा के उद्योगों की सफलता का प्रश्न है पाठकों को बुनियादी शिक्षा का शिक्षा-क्रम स्पष्ट करने से यह बिन्दु स्पष्ट होने में सहायता मिलेगी। जूनियर बेसिक कक्षाओं में ७ से ११ वर्ष तक के बच्चे और सीनियर बेसिक कक्षाओं में १२ से १४ वर्ष तक के बच्चे शिक्षा पाते हैं। सीनियर बेसिक शिक्षा के पश्चात् उत्तर बुनियादी शिक्षा में बहुद्देशीय विद्यालयों की उत्तरोत्तर वृद्धि होती जा रही है जहाँ बुनियादी शिक्षा में प्राप्त की गई उद्योग की योग्यता के आधार पर बालक किसी विशेष व्यवसाय को जीवनयापन की दृष्टि से चुनते हैं। ऐसी दशा में बेसिक शिक्षा में विभिन्न उद्योगों का केवल साधारण ज्ञान कराया जाता है। कल-कारखानों से युक्त विदेशों में भी मशीन पर ७ से १२ वर्ष तक के बच्चों को उद्योग कार्य करने को कदापि नहीं बैठाया जाता। ऐसी दशा में भारत में यह कैसे सम्भव है? अतः कुटीर उद्योगों और कल उद्योगों में से किसी की भी देश में प्रधानता रहे, ७ से १२ वर्ष तक के बच्चों को साधारण उद्योगों के आधार पर शिक्षा देने में कोई कठिनाई नहीं है।

सारांश

उद्योग शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य—बुनियादी शिक्षा को उद्योग-केन्द्रित मानकर उसे अमनोवैज्ञानिक बताया जाता है क्योंकि उद्योग-केन्द्रित शिक्षा का तात्पर्य उद्योग शिक्षण की प्रधानता से लिया जाता है। पर वस्तुतः बुनियादी शिक्षा उद्योग-केन्द्रित शिक्षा नहीं वरन् बालक-केन्द्रित शिक्षा है। उद्योग साधन है और बालक का विकास साध्य।

उद्योग के चुनाव में ध्यान देने योग्य बिन्दु—(१) बालक की रुचि के अनुकूल हो, (२) उत्तरोत्तर कक्षानुकूल नियमित विकास युक्त हो, (३) अनिवार्य आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाला हो, (४) सामाजिक तथा प्राकृतिक वातावरण के अनुकूल हो, (५) व्यवसाय बन सके, (६) अधिकाधिक विषयों का ज्ञान कराने वाला हो, (७) आवश्यक सामान आसानी से उपलब्ध हो, (८) बालक की शारीरिक क्षमता के अनुकूल हो, (९) सर्वोदयी भावना वाला हो, (१०) आध्यात्मिक एवं नैतिक गुणों का विकास करने वाला हो।

उद्योग के चुनाव सम्बन्धी अन्य प्रश्न—उद्योगों के चुनाव के लिए निम्नलिखित प्रश्न उठाए जाते हैं:—(१) क्या गाँव और नगर के लिए समान उद्योग होने चाहिएँ?—वातावरण के अनुकूल उद्योग के चुनाव के आधार पर नगर की शाला में उद्योग गाँव की शाला के उद्योगों से भिन्न होंगे। (२) शाला में कितने

अध्याय १३

समवायी विधि और समवायी पाठों के प्रकार

समवाय की परिभाषा, उसके आधार एवं स्वरूप के विषय में अध्ययन करने के पश्चात् यह जानना जरूरी होता है कि समवाय की विधि क्या है ? समवाय की विधि के अन्तर्गत सर्वप्रथम बिन्दु है निश्चित एवं स्पष्ट वार्षिक योजना।

वार्षिक योजना—बुनियादी शाला में साधारणतः एक कक्षा को एक ही शिक्षक पढ़ाता है। उस शिक्षक पर सभी विषय पढ़ाने की जिम्मेदारी होती है। विशेष कक्षा के पाठ्यक्रम को निश्चित समय में पूरा करा देना शिक्षक की महत्त्वपूर्ण जिम्मेदारी होती है। शिक्षक की यह जिम्मेदारी और भी उस समय अधिक बढ़ जाती है जब कि उसे शिक्षण का कार्य समवायी पद्धति से कराना पड़ता है। इस जिम्मेदारी के पूरा होने में सहायक बिन्दु वार्षिक पाठ योजना है। शिक्षक को वर्ष भर की योजना तैयार करनी चाहिये। वर्ष भर की इस सम्पूर्ण पाठ योजना को आवश्यकतानुसार दो या तीन भागों में बाँट कर उपसत्रों की योजना तैयार होनी चाहिये। प्रत्येक उपसत्र की योजना को प्रत्येक माह के अनुसार विभाजित करना चाहिए। मासिक योजना को साप्ताहिक योजना में विभाजित करना चाहिये। साप्ताहिक योजना के आधार पर दैनिक पाठ योजना तैयार की जानी चाहिये। दैनिक पाठ योजना को भी दो इकाइयों में बाँट लिया जाना चाहिये। प्रत्येक इकाई की योजना में यह स्पष्ट किया जाना चाहिये कि किन-किन क्रियाओं के साथ ज्ञान का समन्वय किया जावेगा। योजना में क्रियाओं का स्पष्ट एवं विस्तृत वर्णन किया जाना चाहिये।

योजना निर्माण को प्रभावित करने वाले बिन्दु—पाठ योजना के अन्तर्गत छोटे से छोटा भाग, जिसे हम इकाई कहते हैं, निम्न बिन्दुओं द्वारा प्रभावित होता है :—

(क) **शाला वातावरण**—पाठ योजना में शाला के वातावरण को ध्यान में रख कर उद्योग एवं क्रिया का चुनाव किया जाना चाहिये।

(ख) **बालकों की आयु**—बालक जिस आयु के हैं उसी आयु के अनुकूल क्रिया एवं ज्ञान को चुना जाना चाहिये।

(ग) **बालकों की रुचि**—बालकों की रुचि को ध्यान में रखकर पाठ की योजना तैयार की जानी चाहिये। बालकों की पाठ में रुचि लेने पर ही शिक्षक का सारा प्रयत्न सफल हो सकेगा अन्यथा नहीं।

(घ) **बालक के सर्वाङ्गीण विकास की सम्भावना**—पाठ योजना के अन्दर केवल उसी ज्ञान का समावेश किया जाना चाहिये जो बालक के शारीरिक, बौद्धिक, नैतिक, आध्यात्मिक एवं सामाजिक आदि विकास में योग दे सकें और बालक हाथ से

दिया जावे। इस आवश्यकता की पूर्ति करने वाला पाठ बहुमुखी एवं बहुविषयी समवायी पाठ कहा जाता है।

(घ) शिक्षा का व्यावहारिक दृष्टिकोण—पुरानी तालीम में बालक ज्ञान का संग्रह एक बार करता था और उसके उस आधार पर कर्म करने की बारी बाद में आती थी। ज्ञान प्राप्ति के अवसर पर काम से साधारणतः मतलब नहीं के बराबर ही रहता था। इसी प्रकार कर्म करने की बारी आने पर ज्ञान के संग्रह में सहायक व्यक्ति कोसों दूर हो जाते थे और इस प्रकार कर्म पक्ष साधारणतः व्यक्ति की सूझ या उसके भाग्य पर ही छोड़ दिया जाता था। पर वास्तविक जीवन में ऐसा नहीं होता। जीवन में हम कर्म करते-करते ज्ञान प्राप्त करते हैं और ज्ञान प्राप्त करते हुए कर्म करते जाते हैं। इस दृष्टिकोण के आधार पर देखा जावे तो बालक को शिक्षित करने के लिये पाठों में ऐसा ही प्रायोजन होना चाहिए। यह प्रायोजन उन पाठों की तुलना में भी श्रेष्ठ है जिनके अन्तर्गत बालक उद्योग करते हैं और उसके पश्चात् ज्ञानार्जन करते हैं। उन समवायी पाठों में ज्ञान और कर्म की इकाइयाँ यद्यपि छोटी से छोटी हैं तथापि एक की पूर्णता के पश्चात् दूसरी का प्रारम्भ होता है। अतः उनमें पृथकत्व तो विद्यमान रहता ही है। ज्ञान और कर्म में पृथकत्व ही शिक्षा का दोष है। इस दृष्टि से सुसामंजस्य एवं समन्वय का श्रेष्ठतम स्वरूप तो सक्रिय पाठ में ही आता है जहाँ ज्ञानार्जन और कर्म करने का क्रम साथ-साथ चलता है और साथ ही पूर्ण होता है। ऐसे समवाय को सक्रिय समवाय कहते हैं। ऐसे पाठ 'सक्रिय पाठ' (एक्टीविटी लेसन्स) कहे जाते हैं।

(ङ) समवाय करने का तरीका—समवाय अपने आप में एक गहन विषय है। इसका क्षेत्र बड़ा व्यापक है। जो शिक्षक अपनी सूझ-बूझ का प्रयोग करते हैं वे समवायी पाठों को अच्छे से अच्छे बनाते हैं और विद्यार्थियों के प्रति अपना उत्तरदायित्व सफलता से निभाते हैं। वे समवाय किये जाने के लिए अनुकूल परिस्थिति को भी दृष्टि में रखते हैं। जैसी परिस्थिति होती है वैसा ही तरीका अपना लिया जाता है। कभी एक क्रिया का एक विषय से समन्वय हो पाता है और कभी अधिक विषयों से भी। परन्तु कुछ ऐसे अवसर होते हैं जब कि सक्रिय पाठ योजना सम्भव नहीं होती, तब दूसरा तरीका अपनाना पड़ता है। विभिन्न तरीकों के अपनाने से विभिन्न प्रकार के समवायी पाठों का निर्माण होता है।

(च) बालकों की रुचि और क्षमता—बालकों की रुचि एवं क्षमता ने भी पाठों के प्रकार को पर्याप्त मात्रा में प्रभावित किया है। बालक अगर किसी क्रिया में अधिक रुचि लेते हैं तो एक क्रिया से कई विषयों का समन्वय करने पर भी बालक लगातार रुचि लेते रहेंगे। अगर बालकों की रुचि कम है तब फिर एक क्रिया से अधिक विषयों का समवाय कराना गलत होता है। ठीक इसी प्रकार बालकों की क्षमता भी पाठों के प्रभाव को प्रभावित करती है। अधिक क्षमता वाले बालकों के लिए बहुविषयी पाठ उपयुक्त रहते हैं। परन्तु क्षमता के अभाव में द्विविषयी पाठों का ही सहारा लेना पड़ेगा।

(छ) शिक्षा का स्तर—शिक्षा के स्तर का पाठों के प्रकार से एवं उनकी उपयोगिता से बड़ा सम्बन्ध है। शिक्षा क्रम से प्रारम्भिक काल में पूर्व बुनियादी शाला में सक्रिय पाठ बहुत ही उपयुक्त रहते हैं। बालकों की इस समय की आवश्यकताओं ने ही इस प्रकार के पाठों की शुरूआत को प्रोत्साहित किया है। बुनियादी-शाला शिक्षक यहाँ के पाठ्यक्रम के सभी विषयों को पढ़ाने की क्षमता रखता है। इस परिस्थिति ने बहुविषयी पाठों के प्रयोग एवं प्रचार को प्रोत्साहन दिया है। यह परिस्थिति उत्तर बुनियादी शिक्षा के पूर्वार्द्ध पर लागू नहीं होती। यहाँ पर ऐसे व्यक्ति मिलने दुर्लभ हो जाते हैं जो सब विषयों को एक साथ पढ़ा सकें। अतः यहाँ पर द्विविषयी पाठ अधिक लाभप्रद रहते हैं। इसी परिपाटी के अनुसार एक विषयी पाठ इससे आगे की कक्षाओं में अधिक उपयुक्त रहते हैं। यहाँ यह संकेत करना आवश्यक है कि उपरोक्त विभाजन ऐसा कठोर नहीं है जिससे डिगा न-जा सके। शिक्षा के विभिन्न स्तर पर किसी भी प्रकार के पाठ का प्रयोग शिक्षक की योग्यता, बालकों की रुचि, क्षमता और परिस्थिति की अनुकूलता को ध्यान में रखकर किया जा सकता है।

समवायी पाठों के प्रकार—समवायी पाठों के निर्णायक बिन्दुओं पर विचार करते समय हमने विभिन्न प्रकार के पाठों से परिचय प्राप्त किया था। वे पाठ इस प्रकार हैं—

(१) **एकविषयी समवायी पाठ**—वह पाठ, जिसमें शिक्षक क्रिया द्वारा केवल एक विषय के ज्ञान को समन्वित करे, एकविषयी समवायी पाठ कहलाता है। जब बालकों की अध्ययन में रुचि एवं क्षमता कम नजर आवे, जब शिक्षक एक ही विषय का अधिकारी हो एवं परिस्थिति अनुसार एक ही विषय को पढ़ाया जाना उचित समझा जा रहा हो, उस समय एकविषयी समवायी पाठ उपयुक्त रहता है।

(२) **द्विविषयी समवायी पाठ**—वह पाठ, जिसमें शिक्षक क्रिया से दो विषयों के ज्ञान को समन्वित करे, द्विविषयी समवायी पाठ कहलाता है। जब साधारण स्तर के बालक हों, शिक्षक दो विषयों को पढ़ाने की क्षमता रखता हो, शाला का समय विभाग-चक्र इकाइयों में बँटा हुआ हो एवं परिस्थिति अनुसार दो विषयों को पढ़ाने की सुविधा हो, उस समय द्विविषयी समवायी पाठ उपयुक्त रहता है।

(३) **बहुविषयी समवायी पाठ**—वह पाठ जिसमें शिक्षक एक क्रिया से, दो से अधिक, विषयों के ज्ञान को समन्वित करे, बहुविषयी समवायी पाठ कहलाता है। प्राथमिक शाला के बालक हों, शिक्षक को दो से अधिक विषयों का अधिकार पूर्ण ज्ञान हो, पाठ्य विषय इतना रुचिपूर्ण हो कि बालकों का पाठ में लगातार रुचि लेना सम्भव हो, बालकों की क्षमता साधारण स्तर से अधिक हो, उस समय बहुविषयी समवायी पाठ उपयुक्त रहता है।

अच्छे समवाय की विशेषता—पाठों के प्रकार के समझ लेने के पश्चात् यह स्पष्ट हो जाता है कि किसी भी पाठ की आत्मा उसका समवाय है। अगर समवाय अच्छा है तब फिर पाठ योजना सफल रहती है अन्यथा निश्चित उद्देश्य प्राप्ति मुश-

मारीचिका के समान ही रहती है। इस दृष्टि से निम्न बिन्दु हमारे सामने स्पष्ट रहने चाहियें :—

(१) **क्रिया का चुनाव**—क्रिया जिसका प्रयोग किया जावे वह अन्न, वस्त्र तथा निवास सम्बन्धी हो एवं उसमे सामाजिक, सांस्कृतिक, बौद्धिक तथा नैतिक प्रवृत्तियों का समावेश हो। वह विचारों को उत्तेजित करने वाली, मानव की किसी प्रमुख जरूरत को पूरी करने वाली और बालक को समाज मे समायोजित होने में योग देने वाली होनी चाहिए। उसमे पारस्परिक सहयोग की भावना होनी चाहिए और शैक्षणिक मूल्य की प्रधानता होते हुए वह बालक के सर्वाङ्गीण विकास मे योग देने वाली होनी चाहिए।

(२) **समवाय की सरलता**—समवाय नवीन ज्ञान ग्रहण करने के कार्य में बालक को सहायता देने वाला होना चाहिए। ऐसा समवाय जो कठिन है और पाठ को पेचीदा बनाता है प्रयोग में नहीं लाना चाहिए।

(३) **समवाय की स्वाभाविकता**—जीवन क्रम मे जिस प्रकार कर्म और ज्ञान मे मेल नजर आता है उसी प्रकार से समवाय का पाठ मे प्रयोग होना चाहिए। ऐसा ही समवाय स्वाभाविक समवाय कहा जाता है। ऐसे ही समवाय का पाठ में प्रयोग होना चाहिए।

(४) **क्रिया का ज्ञान से वास्तविक सम्बन्ध हो**—मिट्टी का घड़े से अविच्छिन्न सम्बन्ध है। मिट्टी को घड़े से अलग करने का प्रयत्न करें तो घड़ा टूट जावेगा। ऐसा सम्बन्ध वास्तविक सम्बन्ध कहा जाता है। कर्म का ज्ञान मे इस अंश में सम्बन्ध होना चाहिए।

(५) **बाल रुचि अनुकूल**—हमें जिन विषयो में रुचि होती है वे बड़ी सरलता से याद होकर स्थायी रूप से हमें स्मरण रहते हैं। जो समवाय रुचिकर होकर पाठ्य विषय को भी रुचिकर बना देता है वही अच्छा समवाय है। ऐसा ही समवाय बालकों का सर्वाङ्गीण विकास कर सकता है।

(६) **निकटतम आवश्यकता का पूरक**—समवाय बालकों की ऐसी आवश्यकता का पूरक होना चाहिए जो उनकी निकटतम आवश्यकता हो। समझदार व्यक्ति भी निकटतम आवश्यकता को अधिक महत्व देते हैं। बालक का जीवन तो इन्हीं आवश्यकताओं द्वारा शासित होता है। अगर समवायी पाठ बालक की भौतिक एवं बौद्धिक आवश्यकताओं की पूर्ति करता है तो निश्चित ही वह सफल पाठ है।

(७) **समवाय का परिवर्तनशील रूप**—समवायी पाठ में प्रवृत्ति एवं क्रिया बार-बार नहीं दुहराई जानी चाहिए वरन् बाल रुचि के अनुकूल अलग-अलग प्रकार की क्रियाओं का चुनाव होना चाहिए। पर्याप्त समय के पश्चात् अगर वही क्रिया करने को बालक से कहा जावे तो वे उसे करने में रुचि लेते हैं। परन्तु रोजाना अगर एक ही क्रिया कई दिनो तक आती रहती है तो वह भार जैसी मालूम पड़ने लगती है। बालकों की रुचि को कायम रखने के लिए प्रवृत्ति मे परिवर्तन होता रहना जरूरी है।

क्रिया को बार बार करके समवाय करने की अपेक्षा एक बार उद्योग की क्रिया की जाकर उससे बार बार समवाय करके काम निपटाया जा रहा है। यह तरीका अधिक मनोवैज्ञानिक भी नहीं है। ऐसी परिस्थिति में यह स्पष्ट है कि एक शृंखला के रूप में पढ़ाये जाने वाला समवायी पाठ ही उत्तम, लाभप्रद एवं बाल-रुचि अनुकूल होता है।

सारांश

समवाय की विधि के अन्तर्गत प्रथम बिन्दु आता है निश्चित एवं स्पष्ट पाठ योजना।

वार्षिक पाठ योजना—सत्र के सम्पूर्ण पाठ्यक्रम को उपसत्र, माह, सप्ताह, व दिवस में बांटकर एक इकाई तक विभाजित कर लिया जाता है।

योजना निर्माण को निम्न बिन्दु प्रभावित करते हैं :—

(क) शाला वातावरण, (ख) बालकों की आयु, (ग) बालकों की रुचि, (घ) सर्वांगीण विकास की सम्भावना, (ङ) ग्रन्थों के अध्ययन की सम्भावना।

समवायी पाठों के प्रकार में निर्णायक बिन्दु :—

(क) परम्परित शिक्षा पद्धति—एक विषय के अधिकारी शिक्षकों के कारण एकविषयी समवायी पाठों की परिपाटी को योग मिला।

(ख) समय विभाग चक्र—पुरानी शिक्षा के समय विभाग चक्र ने एक विषयी समवायी पाठों को और नई तालीम के समय विभाग चक्र ने द्विविषयी समवायी पाठों का विकास किया।

(ग) पाठ्यक्रम—समन्वित पाठ्यक्रम ने बहुविषयी समवायी पाठों की विचारधारा को बल प्रदान किया।

(घ) व्यावहारिक दृष्टिकोण—जीवन में ज्ञान और कर्म का समन्वय जिस प्रकार होता है उसी प्रकार शिक्षा में भी होना चाहिए। इस प्रकार सक्रिय पाठ प्रयोग में आने लगे।

(ङ) समवाय करने का तरीका—किसी प्रवृत्ति से समन्वित किये जाने वाले विषयों की संख्या एवं समवाय करने के तरीके ने विभिन्न प्रकार के समवायी पाठों के निर्माण में योग दिया है।

(च) बालकों की रुचि और क्षमता—अलग-अलग प्रकार के पाठ बालकों की रुचि और क्षमता को दृष्टि में रखकर बनाये जाते हैं।

(छ) शिक्षा का स्तर—विभिन्न स्तर के छात्रों के लिए विभिन्न प्रकार के पाठ उत्तम रहते हैं। अतः अलग-अलग पाठों के प्रयोग का श्रीगणेश हुआ।

समवायी पाठों के प्रकार—(१) एक विषयी समवायी पाठ, (२) द्वि-विषयी समवायी पाठ और (३) बहुविषयी समवायी पाठ।

अच्छे समवाय की विशेषतायें—(१) उपयुक्त क्रिया, (२) सरल सम-

वाय, (३) स्वाभाविक समवाय, (४) क्रिया का ज्ञान से वास्तविक सम्बन्ध, (५) बाल-रुचि के अनुकूल, (६) निकटतम आवश्यकता का पूरक, (७) समवाय का परिवर्तनशील रूप तथा (८) शिक्षा सिद्धान्तों के अनुकूल समवाय।

उपसंहार—समवाय के तरीका में बहुविषयी पाठों के अन्तर्गत उद्योग से प्रथम विषय का समवाय करके प्रथम में दूसरा और दूसरे में तीसरा और इसी प्रकार अन्य विषयों का समन्वय करना अधिक मनोवैज्ञानिक एवं लाभप्रद है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

(१) समवायी पाठ योजना से आप क्या समझते हैं? पाठ की योजना पर किन-किन बातों का प्रभाव पड़ता है? स्पष्ट कीजिए।

(२) समवायी पाठ कितने प्रकार के होते हैं? प्रत्येक का शिक्षा में महत्व स्पष्ट कीजिए।

⊙

समवायी पाठों के नमूने

(क)

बहुविषयी समवायी पाठ

दिनांक······ कक्षा····

समन्वय का माध्यम—(आवश्यकतानुसार प्रकृति निरीक्षण, उद्योग या घरेलू या सामाजिक कार्य में से कोई)—उद्योग (कृषि)

समन्वय के माध्यम की प्रवृत्ति—(आवश्यकतानुसार उद्योग क्रिया जैसे क्यारी बनाना, खाद देना, सिंचाई, कटाई, ओटना आदि के नाम)—क्यारियाँ बनाना।

समवाय के विषय—(१) गणित, (२) सामान्य विज्ञान, (३) सामाजिक ज्ञान, (४) भाषा।

प्रस्तुत पाठ के विषयों के शीर्षक—(१) क्षेत्रफल की विधि, (२) मिट्टी के प्रकार, (३) मिट्टी के लाभ व उपज, (४) मिट्टी।

समय—३ घण्टे।

पाठ के उद्देश्य

(अ) प्रवृत्ति सम्बन्धी—(यहाँ अध्यापक उद्योग प्रवृत्ति के सामान्य एवं विशिष्ट उद्देश्य लिखेगा।)

(आ) विषय सम्बन्धी—(यहाँ अध्यापक जिन-जिन विषयों को समवायी पद्धति के अनुसार पढ़ाना चाहता है उसी क्रम से सामान्य एवं विशिष्ट उद्देश्य लिखेगा।)

सामग्री

(अ) प्रवृत्ति सम्बन्धी—(उद्योग कार्य के लिए आवश्यक सामग्री का विवरण अर्थात् कौन सी सामग्री बालकों के पास है तथा कौन-सी अध्यापक द्वारा जुटाई गई।)

(आ) विषय सम्बन्धी—(विभिन्न विषयों के लिए कौन-कौन-सी सहायक सामग्री अध्यापक ने जुटाई है उनका विवरण।)

पूर्व ज्ञान

(अ) प्रवृत्ति सम्बन्धी--प्रवृत्ति सम्बन्धी पूर्व ज्ञान का उल्लेख किया जायगा।)

(आ) विषय सम्बन्धी—(विभिन्न विषय सम्बन्धी पूर्व ज्ञान का उल्लेख किया जायगा।)

प्रस्तावना (प्रवृत्ति सम्बन्धी)—अध्यापक यहाँ पर बालकों को उद्योग कार्य के लिए उत्साहित करने के लिए प्रश्न पूछेगा जैसे :—

(१) आजकल कौन-सी ऋतु है ? (ग्रीष्म ऋतु)

(२) इस ग्रीष्म ऋतु में आजकल कौन-कौन-सी शाक बाजार में मिलती है ? (कद्दू, बैंगन, प्याज आदि)

(३) लगभग एक मास बाद कौन-सी ऋतु आ जावेगी । (वर्षा-ऋतु)

(४) वर्षा ऋतु में कौन-कौन-सी शाक खाने को मिला करती है । (तोरोई, भिण्डी आदि)

(५) इनको पैदा करने के लिए हमें क्या करना चाहिये ? (इनके बीज बो देना चाहिए)

(६) बीज बोने के लिये खेत को किस प्रकार तैयार किया जाता है ? (हांक कर या खोद कर क्यारियाँ बनाई जाती है)

(७) क्यारियाँ किस प्रकार बनाई जाती हैं ? (अस्पष्ट उत्तर)

(८) क्यारियाँ किस नाप की होनी चाहिएं ?

उद्देश्य कथन—आज हम क्यारियाँ बनाना सीखेंगे तथा यह देखेंगे कि साधारणतया वे किस-किस नाप की बनाई जाती है ।

उद्योग कार्य विधि—तत्पश्चात् अध्यापक बालकों को खेत पर ले जाकर उनकी टोलियों से औजारों की सहायता से क्यारियाँ तैयार करावेगा । अध्यापक स्वयं भी उनके काम में सहयोग देगा । उन्हें उसी समय क्यारियों को नापना भी बतायेगा । लगभग ३० मिनट कार्य कर चुकने के बाद अध्यापक उनसे सामान यथा-स्थान रखवा कर उनके हाथ पैर धुला कर अर्थात् सफाई करा कर कक्षा में ले जावेगा ।

आवृत्यात्मक प्रश्न—(गणित के पाठ की प्रस्तावना का कार्य भी करेंगे)

(१) हमने खेत पर क्या काम किया ?

(२) हमने कितनी क्यारियाँ बनाई ?

(३) प्रत्येक क्यारी की लम्बाई क्या है ?

(४) प्रत्येक क्यारी की चौड़ाई क्या है ?

(५) एक क्यारी कितनी जमीन घेरती है ? (उत्तर नहीं मिलेगा)

उद्देश्य कथन—आज हम यह निकालना सीखेंगे कि एक क्यारी ने कितनी जमीन घेरी ।

गणित के पाठ का विकास—यहाँ अध्यापक गणित शिक्षण पद्धति के आधार पर क्षेत्रफल का ज्ञान कराएगा । उसके लिए १ फुट के वर्ग के कार्ड बोर्ड के टुकड़े, आयताकार कार्डबोर्ड आदि सामग्री की सहायता लेगा । यह सिद्धान्त निकलवाएगा कि क्षेत्रफल=ल० × चौ० । साथ ही श्याम पट्ट पर कार्य करता जावेगा । यदि कक्षा के छात्रों से अलग-अलग नाप की क्यारियाँ बनवाई गई हैं तो उनके अलग-अलग क्षेत्रफल निकल आवेंगे ।

आवृत्यात्मक प्रश्न—(सामान्य विज्ञान के पाठ की प्रस्तावना का कार्य भी करेंगे)—

(१) क्यारी का क्षेत्रफल किस रीति द्वारा निकाला जाता है ?

(२) क्यारी की सीमा किसकी बनाई जाती है ? (मिट्टी की)

(३) क्यारी की सीमा मिट्टी से किस प्रकार बनाई जाती है ? (मिट्टी की डोली बनाकर)।

(४) क्यारी की यह डोली कितनी ऊँची होती है ? (लगभग ६ इंच)

(५) किस प्रकार की मिट्टी की डोली अधिक ऊँची नहीं बनाई जा सकती ? (अस्पष्ट उत्तर)।

(६) मिट्टी कितनी प्रकार की होती है ? (उत्तर नहीं मिलेगा)

उद्देश्य कथन—अब हम यह पढ़ेंगे कि मिट्टी कितने प्रकार की होती है।

सामान्य विज्ञान के पाठ का विकास—यहाँ अध्यापक बालकों को विभिन्न प्रकार की मिट्टियों का ज्ञान करायगा। उन मिट्टियों के नमूने उपस्थित करेगा। उनकी बनावट का अन्तर बताएगा। विशेष प्रकार की मिट्टी में पानी को सोखने तथा गीली रहने की क्षमता का ज्ञान करायेगा। अपने प्रान्त में किस-किस प्रकार की मिट्टी कहाँ-कहाँ पाई जाती है, उस स्थान पर उस मिट्टी के मिलने का क्या खास कारण है आदि बातों का ज्ञान अध्यापक बालकों को कराएगा। यहाँ सामान्य विज्ञान पढ़ाने की पद्धति का अनुसरण किया जाएगा।

प्रावृत्यात्मक प्रश्न (सामाजिक ज्ञान के पाठ की प्रस्तावना का कार्य भी करेंगे)—

(१) हमारी शाला के खेत की मिट्टी किस प्रकार की है ?

(२) मिट्टियाँ कितने प्रकार की होती हैं ?

(३) राजस्थान में कहाँ-कहाँ किस-किस प्रकार की मिट्टियाँ पाई जाती हैं ?

(४) वहाँ की मिट्टी का उन लोगों पर क्या प्रभाव पड़ता है ? (उत्तर नहीं मिलेगा)

उद्देश्य कथन—अब हम यह पढ़ेंगे कि विभिन्न प्रकार की मिट्टियों का वहाँ के निवासियों पर क्या प्रभाव पड़ता है ?

सामाजिक ज्ञान के पाठ का विकास—अध्यापक उन मिट्टियों की उपज, आवागमन के साधन में सहयोग या अवरोध, उनके सांस्कृतिक जीवन पर प्रभाव, मिट्टी के अन्य लाभ, मिट्टी के द्वारा बर्तन बनाना, खिलौने बनाना आदि व्यवसाय, कौन-सी मिट्टी में बाँध बनाना आसान है तथा कौन-सी में कठिन, इस बात का ज्ञान आदि बातें बताएगा। तात्पर्य यह है कि विभिन्न प्रकार की मिट्टियों का मानव-जीवन में उपयोग तथा उनके आधार पर रहन-सहन, जीवन व्यतीत करना, व्यवसाय अपनाना, पशु-पालन आदि बातों का ज्ञान करायेगा। इसके लिए सामाजिक ज्ञान पढ़ाने की विधि को अपनाएगा। पाठ के पाँचों सोपानों का क्रमानुसार अनुसरण करते हुए पढ़ाया जाएगा।

प्रावृत्यात्मक प्रश्न—(भाषा के पाठ की प्रस्तावना का कार्य भी करेंगे)

(१) राजस्थान के उत्तर-पश्चिमी भाग में कौन-सी मिट्टी पाई जाती है ? (रेत)

(२) वहाँ रेत की अधिकता के कारण उन्हें क्या-क्या कष्ट उठाने पड़ते हैं ?
(३) राजस्थान के दक्षिणी-पूर्वी भाग की मिट्टी कैसी है ?
(४) इसमें कौन-कौन से अनाज पैदा होते हैं ?
(५) हमारे यहाँ की मिट्टी की क्या-क्या अच्छाइयाँ हैं ?
(६) मिट्टी पर कोई कविता याद हो तो सुनाओ।

(यदि किसी बालक को मिट्टी की कोई कविता याद हो और वह सुनाए तो उसके सुनाने के बाद फिर पूछना चाहिए कि और किसे याद है तथा उत्तर न मिलने पर उद्देश्य कथन करना चाहिए।)

उद्देश्य कथन—अब हम मिट्टी सम्बन्धी एक कविता पढ़ेंगे।

पाठ का विकास—उद्देश्य कथन के बाद अध्यापक अपनी कविता का सस्वर पाठ करेगा। तत्पश्चात् अपने साथ लाये हुए लिखित कविता के कागजों को कक्षा में वितरण करेगा। यह ध्यान रहे कि अध्यापक सर्वप्रथम सस्वर पाठ के पहले कविता के कागजों को वितरित नहीं करेगा। कागजों को वितरित करने के बाद इसी पुस्तक में बताये गए भाषा शिक्षण पद्धति के अन्तर्गत कविता पढ़ाने की विधि के अनुसार इस कविता को पढ़ायेगा। कविता के पाठ को पढ़ा कर भावुत्यात्मक प्रश्न कर चुकने के बाद गृह कार्य दिया जावेगा।

गृह कार्य—यहाँ अध्यापक सभी विषयों का सामंजस्य बनाये रखते हुए छोटे-छोटे ३ या ४ प्रश्न घर से कर लाने को दे देगा तथा मिट्टी पर अन्य कविता याद करने अथवा घर पर गुंजाइश हो तो क्यारी बनाने को कहेगा।

(ख)

द्वि-विषयी समवायी पाठ

दिनांक.........   कक्षा.........

समन्वय का माध्यम—उद्योग (कताई)

समन्वय के माध्यम की प्रवृत्ति—तकली से कताई।

समन्वय के विषय—(१) सामाजिक ज्ञान, (२) हिन्दी।

प्रस्तुत पाठ के विषयों के शीर्षक—(१) कताई का क्रमिक विकास, (२) तकली की आत्मकथा।

समय—१॥ घण्टा

पाठ के उद्देश्य

(अ) प्रवृत्ति सम्बन्धी—(यहाँ अध्यापक उद्योग प्रवृत्ति के सामान्य एवं विशिष्ट उद्देश्य लिखेगा)।

(आ) विषय सम्बन्धी—(यहाँ अध्यापक जिन-जिन विषयों को समवायी पद्धति के अनुसार पढ़ाना चाहता है उसी क्रम से सामान्य एवं विशिष्ट उद्देश्य लिखेगा)।

सामग्री

(अ) प्रवृत्ति सम्बन्धी—उद्योग कार्य के लिए आवश्यक सामग्री का वितरण

अर्थात् कौन-सी सामग्री बालकों के पास है तथा कौन-सी अध्यापक द्वारा जुटाई गई।

(आ) विषय सम्बन्धी—(विभिन्न विषयों के लिए कौन-कौन-सी सहायक सामग्री अध्यापक ने जुटाई है उसका विवरण)।

पूर्व ज्ञान—

(अ) प्रवृत्ति सम्बन्धी—(प्रवृत्ति सम्बन्धी पूर्व ज्ञान का उल्लेख किया जावेगा)।

(आ) विषय सम्बन्धी—(विषय सम्बन्धी पूर्व ज्ञान का उल्लेख किया जावेगा)।

प्रस्तावना—(प्रवृत्ति सम्बन्धी)—अध्यापक यहाँ पर बालकों को उद्योग कार्य के लिये उत्साहित करने के लिये प्रश्न पूछेगा जैसे :—

(१) आप सूत किस साधन से कातते हैं ?

(२) सूत कातने के अन्य साधन क्या हैं ?

(३) सूत कातने का सबसे सरल साधन क्या है ?

(४) तकली से सूत कातने का सबसे अच्छा तरीका कौन-सा है ?

उद्देश्य कथन—आज हम तकली द्वारा सूत कातने का सबसे अच्छा तरीका सीखेंगे।

उद्योग कार्य की विधि—अध्यापक सूत कातने के सबसे अच्छे तरीके का आदर्श प्रदर्शन करेगा जिसमें बैठने का ढंग, तकली घुमाने के तरीके, पूनी पकड़ने के तरीके पर बल देते हुए चुटकी प्रणाली द्वारा कताई करने का ढंग बतावेगा। फिर बालकों से कताई करावेगा। उस समय अध्यापक कक्षा में घूम-फिर कर बालकों पर व्यक्तिगत ध्यान देते हुए उनकी त्रुटियों का सुधार करेगा।

आवृत्यात्मक प्रश्न—(ये प्रश्न आगामी सामाजिक ज्ञान के पाठ की प्रस्तावना का कार्य भी करेंगे) :—

(१) कताई करते समय बैठने का श्रेष्ठ तरीका क्या है ?

(२) तकली से कताई करते समय पूनी को किस प्रकार पकड़ना चाहिए ?

(३) तकली से कताई करने में क्या सुविधा रहती है ?

(४) तकली भिन्न-भिन्न धातुओं से बनी है ?

(५) मनुष्य ने प्रारम्भ में कैसी तकली बनाई होगी ?

उद्देश्य कथन—अब हम तकली के विकास के बारे में पढ़ेंगे।

सामाजिक ज्ञान के पाठ का विकास—अब अध्यापक सामाजिक ज्ञान के पाठ को पढ़ाने की विधि से बालकों को बतायेगा कि प्रारम्भ में पेड़ों की छाल, मकड़ी का जाला या प्रकृति के अन्य ऐसे उपकरणों को, जो बुनने या बटने का विचार देते हैं, देखकर मानव ने भी छाल को, चमड़े को, या अन्य लचीले पौधों को बटना सीखा होगा। धीरे-धीरे उन वस्तुओं में बंटने की आवश्यकता उसे महसूस हुई होगी। प्रारम्भ में उसने हाथ से बंटना शुरू किया होगा। तत्पश्चात् उसने [illegible]

लकड़ी को एक-दूसरे पर रख कर उस पर सम्भवतः दूसरी हड्डी या लकड़ी बांधकर उसे घुमाकर बट देने का तरीका अपनाया होगा। धीरे-धीरे उसका गुजरा हुआ रू उत्तरोत्तर विकास को प्राप्त करता गया जिसका वर्तमान रूप आज की तकली है

आवृत्यात्मक प्रश्न—

(१) प्रारम्भ में मानव ने किन वस्तुओं को देखकर गूंथना सीखा होगा ?

(२) सबसे पहले उसने तकली किन वस्तुओं से बनाई होगी ?

(३) तकली का आज का स्वरूप क्यों कर हमारे सामने आया ?

(४) तकली अपने ही मुँह से सूत की कहानी कैसे कहेगी ?

उद्देश्य कथन—अब हम तकली द्वारा कही हुई सूत की कहानी को गद्य के रूप में पढ़ेंगे।

भाषा के पाठ का विकास—यहाँ अध्यापक इसी पुस्तक के द्वितीय खण्ड में भाषा शिक्षण पद्धति के अन्तर्गत बताई गई गद्य शिक्षण विधि के अनुसार पाठ को पढ़ायेगा। अन्त में आवृत्यात्मक प्रश्न कर चुकने पर गृह कार्य दिया जावेगा।

गृह कार्य—यहाँ अध्यापक दोनों विषयों का सामंजस्य बनाये रखते हुए घर से कर लाने को प्रश्न देगा।

(ग)

एक विषयी समवायी पाठ

विषय……… कक्षा………

समन्वय का माध्यम………गांधी जयन्ती समारोह

समन्वय के माध्यम की प्रवृत्ति—कक्षा को सजाना, कार्यक्रम तैयार करना और आयोजन को सफलता से पूरा करना।

समवाय के विषय—सामाजिक ज्ञान

प्रस्तुत पाठ के विषयों के शीर्षक—'गांधी जी का जीवन-चरित्र'

समय—१ घण्टा

पाठ के उद्देश्य—

(अ) प्रवृत्ति सम्बन्धी—(यहाँ प्रवृत्ति के सामान्य एवं विशिष्ट उद्देश्य अंकित किये जायेंगे।)

(आ) विषय सम्बन्धी—(यहाँ विषय सम्बन्धी सामान्य एवं विशिष्ट उद्देश्य अंकित किये जावेंगे।)

सामग्री—

(क) प्रवृत्ति सम्बन्धी—(यहाँ समारोह के लिए जिस सामग्री को जुटाया जायगा उसका विवरण अंकित होगा।)

(ख) विषय सम्बन्धी—(यहाँ विषय सम्बन्धी जिस सामग्री को जुटाया जायगा उसका वर्णन अंकित होगा।)

पूर्वज्ञान—

(अ) प्रवृत्ति सम्बन्धी—(यहाँ प्रवृत्ति सम्बन्धी पूर्व ज्ञान अंकित किया

जावेगा।

(आ) विषय सम्बन्धी—(यहाँ विषय सम्बन्धी पूर्व ज्ञान अंकित किया जावेगा।)

प्रस्तावना (प्रवृत्ति सम्बन्धी)—अध्यापक निम्न प्रश्न पूछेगा :—

(१) आजकल कौन-सा माह चल रहा है ? (अक्टूबर)

(२) आज कौन-सी तारीख है ? (दो तारीख)

(३) आज के दिन का हमारे देश के लिए क्या महत्व है ?

(४) महापुरुषों के जन्म-दिवस कैसे मनाए जाते हैं ?

उद्देश्य कथन (प्रवृत्ति सम्बन्धी)—आज हम गांधी जयन्ती समारोह का आयोजन करेंगे।

उद्योग कार्य—सर्वप्रथम छात्रों को विभिन्न टोलियों में बाँट दिया जायगा। प्रत्येक टोली अलग-अलग काम जैसे जरूरी सामान जुटाना, कक्षा के कमरे की सजावट करना, कार्यक्रम तैयार करना, फूलमाला बनाना तथा समारोह के अन्य अंगों के प्रति जिम्मेदार बनाई जावेगी। सब टोलियाँ ज्यों ही अपनी व्यवस्था पूरी कर चुकेंगी शिक्षक को सूचना देंगी।

प्रस्तावना (विषय सम्बन्धी)—

(१) अभी हमने क्या-क्या तैयारियाँ की हैं ? (सजावट आदि)

(२) ये तैयारियाँ क्यों की हैं ? (जयन्ती मनाने को)

(३) आज की जयन्ती मनाने का क्या उद्देश्य है ?

उद्देश्य कथन (विषय सम्बन्धी)—आज हम इस जयन्ती समारोह के द्वारा महात्मा गांधी के जीवन के विषय में जानकारी प्राप्त कर यह जानने का प्रयत्न करेंगे कि उनकी जयन्ती सारा भारत क्यों मनाता है ?

पाठ का विकास—(उद्देश्य कथन के पश्चात् कक्षा का सांस्कृतिक मन्त्री समारोह का संचालन प्रारम्भ करेगा तथा पूर्व निश्चित कार्यक्रम को चलाएगा। बारी-बारी से छात्र आ कर कविता पाठ, लेख, भाषण आदि द्वारा महात्मा गांधी के जीवन पर प्रकाश डालेंगे। यह कार्यक्रम लगभग २५ मिनट तक चलेगा। तत्पश्चात् अध्यापक गांधी जी के विषय में शेष आवश्यक जानकारी कराएगा। अध्यापक के बोल चुकने पर मन्त्री द्वारा समारोह की समाप्ति की जावेगी।)

आवृत्यात्मक प्रश्न—(गांधी जी के जीवन के बारे में ऊपर दी गई जानकारी को क्रमबद्ध करने के लिये शिक्षक छात्रों से आवृत्यात्मक प्रश्न करेगा और इन प्रश्नों से प्राप्त उत्तर ही श्यामपट्ट कार्य का रूप धारण कर लेंगे।)

गृह कार्य—

(१) गांधी जी की जीवनी लिखिए।

(२) गांधी जी के जीवन की महत्वपूर्ण घटनाओं की एक सारिणी तैयार कीजिए।

अध्याय

बुनियादी शिक्षा में अगमन तथा निगमन विधियाँ
(इण्डक्टिव एण्ड डिडक्टिव मेथड्स)

विधियों के उद्देश्य—शिक्षा समाज और राजनीति का एक महत्त्व
है। समाज नेता तथा राज्य-शक्ति के अनुसार ही यह निश्चय करते हैं कि
आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए कैसी शिक्षा दी जानी चाहिए। क
क्या पढ़ाया जाए जिससे उनका समाज के सदुपयोग के लिए प्रयोग किया ज
परन्तु उस शिक्षा को किस प्रकार दिया जाए अर्थात् बालकों को कैसे पढ़ा
यह कार्य साधारणतः शिक्षक पर आता है। शिक्षक ही ऐसी विधि प्रयोग में ल
है कि पाठ्यक्रम बालक को रुचिकर लगे। वह जिज्ञासु बने। उसका विकास
सर गतिशील रहे। ये विधियाँ बालक में कार्य करने की प्रेरणा उत्पन्न करें
विचारने की तथा समझने की शक्ति पैदा हो। वे अपने निर्णय स्वयं निक
क्षमता उत्पन्न करें। इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए शिक्षक सदा जागरूक रह
वह सहस्रों वर्षों के शिक्षकों के अनुभव तथा मनोविज्ञान के सिद्धान्तों के, आ
निर्मित विभिन्न आदर्श सूत्रों, नियमों, पद्धतियों और विधियों का प्रयोग अपने
में भी करता है। जो इनका अपने शिक्षण में समावेश कर पाता है वही
शिक्षक कहलाता है।

वैसे तो ये विधियाँ कई हैं जैसे स्थूल से सूक्ष्म की ओर, ज्ञात से अज्ञ
ओर, सरल से कठिन की ओर, सम्पूर्ण से अंगों की ओर, अनिश्चित से नि
की ओर आदि। इन्हीं विधियों में अगमन निगमन विधियाँ, संश्लेषण
विश्लेषणात्मक विधियाँ एवं अनुसंधानात्मक विधि आदि भी हैं। इन्हीं का वि
यहाँ किया जाएगा। ये सभी विधियाँ केवल बुनियादी शिक्षण पद्धति की ही
विधियाँ नहीं हैं अपितु प्रत्येक शिक्षण पद्धति में इनका पूरा-पूरा प्रयोग कि
सकता है।

अगमन विधि—बालक प्रारम्भ ही से देखता है कि एक चिड़िया उड़
आकर उससे कुछ दूरी पर टिकी और थोड़ी देर बाद उड़ गई। फिर
चिड़िया आई और वह भी उड़ गई। इस तरह अनेकों चिड़ियाँ आईं और उड़
नित्य के इस प्रकार के देखने से उसने यह अनुभव किया कि, चिड़ियाँ उड़ती
इस प्रकार से अनुभव प्राप्त करने की विधि को अगमन विधि कहते हैं। त
यह है कि अगमन विधि में बालक दैनिक अनुभव और निरीक्षण के आधार पर
निष्कर्ष तक पहुँचता है। बालक नित्य सूर्य को एक ही ओर उगता हुआ देख
और यह निष्कर्ष निकालता है कि सूर्य इस दिशा में उदय होता है। स्पष्ट एवं प्र
अनुभवों के आधार पर अगमन विधि द्वारा बालक ऐसे भाव या सिद्धान्त का नि

करता है जो व्यापक होता है और जो सामान्य होता है।

अगमन विधि का बुनियादी शिक्षा में प्रयोग—बुनियादी शिक्षा बालक को स्वयं ज्ञान प्राप्त करने के लिए प्रेरित करती है। अध्यापक स्वयं सब कुछ ज्ञान न देकर ऐसी पृष्ठ-भूमि तैयार करता है कि बालक स्वयं देखे, क्रिया को अपने हाथ से करे, अनुभव करे तथा निष्कर्ष निकाले। अतः इस दृष्टि से अगमन विधि का प्रयोग बुनियादी शिक्षा में यथावश्यक पूर्णरूपेण किया जाना चाहिए। इसके प्रयोग के लिए निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए :—

(१) जिस नियम या सिद्धान्त को बालक को बताना है उसे सीधा व स्पष्ट नहीं बता देना चाहिए।

(२) उस सिद्धान्त सम्बन्धी अनेक उदाहरण बालक के सामने रखे जाने चाहिएँ। जैसे यदि बालक को यह पढ़ाना है कि जहाँ-जहाँ आग जलती है वहाँ धुआँ होता है, तो उसके सामने कुछ उदाहरण उपस्थित करने होंगे। रसोई में धुआँ होता है क्योंकि वहाँ आग जलती है। हलवाई की भट्टी से धुआँ निकलता है क्योंकि वहाँ आग जलती है। कुम्हार के आवड़े (मिट्टी के बर्तन पकाने का स्थान) में धुआँ निकलता है क्योंकि वहाँ आग जलती है। रेल के इंजन से धुआँ निकलता है क्योंकि वहाँ आग जलती है।

(३) बालक के सामने अनेक उदाहरण रखकर तब निष्कर्ष निकलवाने का प्रयत्न करना चाहिए।

(४) निष्कर्ष सामान्य एवं व्यापक होना चाहिए तथा किसी प्रकार की शंका से ओत-प्रोत नहीं होना चाहिए।

(५) अगमन पद्धति से निकले हुए सिद्धान्त का प्रयोग आगे की समस्याओं को हल करने में करना चाहिए।

(६) इस प्रकार बालक से स्थूल उदाहरणों के आधार पर विशिष्ट निष्कर्ष एवं तथ्य निकलवाए जा सकते हैं।

(७) प्रकृति विज्ञान, जीव विज्ञान, उद्योग आदि के शिक्षण में इस विधि का प्रयोग किया जा सकता है।

निगमन विधि—अगमन विधि के अनुसार बालक प्रारम्भ में चिड़ियों को उड़ता हुआ देखकर यह अनुभव करता है कि चिड़ियाँ उड़ती हैं। इस अनुभव या सिद्धान्त का वह प्रयोग भी करता है। ज्यों ही कोई चिड़िया आकर बैठती है वह दौड़कर उसे उड़ाता है। यहाँ उसने निगमन विधि का प्रयोग किया है अर्थात् उसने जो नियम सीखा था उसका प्रयोग किया। इसी को निगमन विधि कहते हैं। तात्पर्य यह है कि निगमन विधि में पहले सामान्य नियम बता दिया जाता है तत्पश्चात् उसी के आधार पर समस्याओं का हल कराया जाता है।

निगमन विधि का बुनियादी शिक्षा में प्रयोग—बुनियादी शिक्षा निगमन विधि का प्रयोग भी करती है। बालकों को साधारणतया एक व्यापक सिद्धान्त बता दिया जाता है और तब उसके आधार पर प्रस्तुत समस्याएँ हल कराई जाती हैं। निगमन

विधि द्वारा शिक्षण में निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए :—

(१) बालक को पहले कोई तथ्य या सिद्धान्त का अनुभव करा देना चाहिए।

(२) तत्पश्चात् बालक के सामने समस्या उत्पन्न करनी चाहिए।

(३) समस्या उत्पन्न करने के साथ ही आवश्यक सामग्री प्रस्तुत कर देनी चाहिए।

(४) तब बालक से दिए हुए नियम के आधार पर समस्या का हल निकलवाना चाहिए।

(५) यह हल शुद्ध है अथवा नहीं इसका भी बालक द्वारा ही स्पष्टीकरण कराया जाना चाहिए।

आगमन तथा निगमन विधियों का सम्मिश्रण—ये दोनों विधियाँ एक दूसरे की पूरक हैं। केवल एक ही विधि का प्रयोग नहीं किया जा सकता। निगमन विधि के अनुसार नियम बना दिया जाता है तथा आगमन विधि के अनुसार बालक नियम निकालता है। दोनों का पृथक्-पृथक् प्रयोग नहीं होता वरन् एक का पहले प्रयोग कर दूसरी विधि का अभ्यास कराया जाता है। बुनियादी शिक्षा में बालक सक्रिय रहता है अतः पहले आगमन विधि का प्रयोग कर बालक ही से निष्कर्ष निकलवाने चाहिएँ। दैनिक जीवन में प्रायः सभी मनुष्य अपनी समस्याओं को इन्हीं विधियों के अनुसार सुलझाते हैं। बालकों से भी इन विधियों द्वारा समस्याएँ आसानी से हल कराई जा सकती हैं।

सारांश

विधियों के उद्देश्य—शिक्षण विधियाँ शिक्षण को सरल, बोधगम्य बनाकर बालक को जिज्ञासु तथा उत्सुक बनाती हैं। उन विधियों के आधार पर पढ़ाने वाला अध्यापक सफल शिक्षक बन सकता है।

अगमन विधि—आगमन विधि में बालक दैनिक अनुभव एवं निरीक्षण के आधार पर किसी निष्कर्ष या तथ्य पर पहुँचता है।

अगमन विधि का बुनियादी शिक्षा में प्रयोग—बुनियादी शिक्षा बालक को स्वयं ज्ञान प्राप्त करने के लिए प्रेरित करती है। अतः आगमन विधि द्वारा बालक को सक्रिय बनाया जा सकता है।

निगमन विधि—इस विधि में पहले सामान्य नियम बना दिया जाता है। फिर उसी के आधार पर समस्याओं का हल कराया जाता है।

निगमन विधि का बुनियादी शिक्षा में प्रयोग—बालकों को इस विधि द्वारा पढ़ाते समय नियम, समस्या एवं आवश्यक सामग्री उनके सामने रखकर उनसे हल निकलवाना चाहिए।

अगमन तथा निगमन विधियों का सम्मिश्रण—ये दोनों विधियाँ एक-दूसरे की पूरक हैं। इनका पृथक्-पृथक् प्रयोग नहीं किया जाता।

अभ्यासार्थ प्रश्न

(१) अगमन तथा निगमन विधियों को पृथक्-पृथक् समझाइये तथा उनके अन्तर को स्पष्ट कीजिए।

(२) बुनियादी शिक्षा पद्धति में अगमन तथा निगमन विधियों का प्रयोग करने के लिये किन-किन बातों का ध्यान रखना चाहिए?

बुनियादी शिक्षा में विश्लेषण तथा संश्लेषण विधियाँ
(एनेलेटिक एण्ड सिंथेटिक मेथड्स)

विश्लेषण विधि—विश्लेषण का अर्थ है अलग-अलग टुकड़ों में बाँटना। किसी भी वस्तु को समझने के लिए मानसिक क्रिया द्वारा उस समूची वस्तु को उसके अनेक अंगों, उपांगों में विभाजित करने को विश्लेषण कहते हैं। जड़ें, तने, टहनियों, पत्तों, फूलों, फलों वाली वस्तु का नाम वृक्ष है। बालक को वृक्ष का ज्ञान तब तक नहीं होगा जब तक इन वस्तुओं का विश्लेषण करके उनकी पहचान उसे बता न दी जाए। इस विश्लेषण क्रिया द्वारा ज्ञान के अभाव में वह सभी वृक्षों को एक समझने लगेगा। उसे बबूल व आम के पेड़ में अन्तर का ज्ञान नहीं होगा। अतः बालक को विश्लेषण कर यह बताया जाना चाहिये कि अमुक प्रकार के पत्तों, फूलों व फलों वाला पेड़ आम है और अमुक प्रकार का बबूल। विश्लेषण करने से उसके यथार्थ रूप का ज्ञान बालक को हो जाता है।

बुनियादी शिक्षा में विश्लेषण विधि का प्रयोग—बुनियादी शिक्षा बालक के लिए ज्ञान प्राप्ति हेतु सरल वातावरण उपस्थित करती है। विश्लेषण विधि का कार्य भी यही है कि सम्पूर्ण को इस प्रकार टुकड़ों में विभाजित करे कि उनके सम्बन्ध की ज्ञान प्राप्ति सरल हो जाय। अतः बुनियादी शिक्षा में विश्लेषण विधि बहुत अधिक सफल हो सकती है। उसके लिए निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए :—

(१) जिस वस्तु का ज्ञान कराना हो उसे सरल भागों में बाँट लेना चाहिए।

(२) ये सरल भाग जहाँ तक हो सके बालक के पूर्व ज्ञान से सम्बन्धित होने चाहिएँ।

(३) उद्योग शिक्षण की प्रक्रिया को सरल भागों में विभक्त कर इस विधि द्वारा पढ़ाया जा सकता है।

(४) सामाजिक ज्ञान में राजस्थान की प्राकृतिक बनावट को पढ़ाने के लिए उसे अलग भागों में बाँट लेंगे। ये भाग बालक के पूर्व ज्ञान से सम्बन्धित होंगे। बालक अपने गाँव के पास की बहती हुई नदी नाले से परिचित है। गाँव के पास के पहाड़ या झील से परिचित है। कंकरीली भूमि, रेतीली भूमि, या मैदान से परिचित है। इसी के आधार पर राजस्थान की भूमि के विभाग किए जायेंगे।

(५) गणित आदि विषय पढ़ाते समय भी समस्या को विभिन्न सरल भागों में बाँटकर पढ़ाया जा सकता है।

(६) ये भाग सोद्देश्य होने चाहियें। उनको केवल सूचनाओं को इकट्ठा करने के लिए ही विभाजित नहीं करना चाहिए।

(७) प्रत्येक भाग की पूर्ण व्याख्या की जानी चाहिए।

संश्लेषण विधि—सश्लेषण का अर्थ है विभिन्न भागों को जोड़ना। यह भी मानसिक क्रिया है जिसके द्वारा विभिन्न विभागों, उपविभागों, खण्डों को जोड़कर उन्हें समन्वित किया जाता है। इस विधि द्वारा वस्तु के विभिन्न भागों का ज्ञान प्राप्त करते हुए उसके पूर्ण रूप का अध्ययन करते हैं।

बुनियादी शिक्षा में संश्लेषण विधि का प्रयोग—बुनियादी शिक्षा में संश्लेषण विधि के प्रयोग के लिए निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए :—

(१) विभिन्न भागों को बालक के सामने क्रमबद्ध रखना चाहिए ताकि ज्ञान प्राप्ति में उलझन न आवे।

(२) संश्लेषण विधि द्वारा राजस्थान की प्राकृतिक बनावट का ज्ञान कराने के लिए पहले घर के आँगन से प्रारम्भ कर गाँव का आँगन, जिले की भूमि और तत्पश्चात् प्रान्त की भूमि का अध्ययन कराया जाएगा।

(३) संश्लेषण विधि द्वारा ज्ञान प्राप्ति क्रमश: उत्तरोत्तर अग्रसर होती है। अतः अध्यापक को केवल पथ-प्रदर्शन ही करना चाहिए न कि अपनी ओर से कुछ बताया जाय।

(४) खण्डों का ज्ञान अच्छी तरह से प्राप्त होने पर ही पूर्व ज्ञान प्राप्त हो सकेगा। अतः अध्यापक को चाहिए कि पहले बालक को खण्डों का पूर्ण ज्ञान करादे।

विश्लेषण विधि एव संश्लेषण विधि का सम्मिश्रण—इन विधियों का उद्देश्य अंशतः प्राप्त ज्ञान को पूर्ण करना है। अतः ये दोनों विधियाँ पूर्णतः पृथक् नहीं की जा सकतीं। ये दोनों विधियाँ मिलकर ऐसा मार्ग बनाती हैं कि बालक पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर ले। यह अवश्य है कि किसी एक विधि की प्रमुखता हो तथा दूसरी विधि गौण रूप से विद्यमान हो। पर दोनों विधियाँ किसी न किसी सीमा तक अवश्य विद्यमान रहती हैं। आवश्यकतानुसार विश्लेषण विधि को पहले या सश्लेषण विधि को पहले अपनाया जा सकता है। इन विधियों से पढ़ाने के पहले पाठ की योजना पूर्णतया बना लेनी चाहिए तथा यह निश्चय हो जाना चाहिए कि किस वस्तु से किस गुण के ज्ञान पर अधिक जोर देना है। इन विधियों से बालकों को खोज करने तथा स्वयं ज्ञान प्राप्त करने का अवसर मिलता है। अत. बुनियादी शिक्षण पद्धति में इनका अधिकाधिक प्रयोग किया जाना चाहिए।

सारांश

विश्लेषण विधि—विश्लेषण का अर्थ है अलग टुकड़ों में बाँटना। किसी भी वस्तु को समझने के लिए उसे मानसिक क्रिया द्वारा सरल भागों में बाँट लिया जाता है।

बुनियादी शिक्षा में विश्लेषण विधि का प्रयोग—बुनियादी शिक्षा में विश्लेषण विधि बहुत अधिक सफल हो सकती है क्योंकि दोनों का उद्देश्य ज्ञान प्राप्ति के लिए सरल वातावरण बनाना है।

संश्लेषण विधि—संश्लेषण का अर्थ विभिन्न भागों को जोड़ना है। इसके द्वारा सम्पूर्ण वस्तु का ज्ञान प्राप्त किया जाता है।

बुनियादी शिक्षा में संश्लेषण विधि का प्रयोग—बुनियादी शिक्षा में संश्लेषण विधि द्वारा ज्ञान प्राप्ति भी बालक के विकास का सफल साधन है।

विश्लेषण विधि एवं संश्लेषण विधि का सम्मिश्रण—दोनों विधियाँ पृथक् नहीं की जा सकतीं। दोनों ही का सम्मिश्रण पाठ के पढ़ाने में विद्यमान रहता है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

(१) विश्लेषण विधि का क्या तात्पर्य है? बुनियादी शिक्षा में इस विधि का प्रयोग कैसे किया जा सकता है?

(२) संश्लेषण विधि से आप क्या समझते हैं? बुनियादी शिक्षा में इस विधि का प्रयोग कैसे किया जा सकता है?

⊙

बुनियादी शिक्षा में अनुसन्धान विधि
(ह्यूरिस्टिक मेथड)

अनुसंधान विधि—इस विधि को स्वय-ज्ञान-विधि अथवा अन्वेषणात्मक विधि भी कहते हैं। प्रसिद्ध शिक्षाशास्त्री स्पेंसर ने कहा है, "बालकों को कम से कम बताना चाहिए और उन्हें अधिक से अधिक खोज निकालने के लिए उकसाना चाहिए।" यह कथन ही इस विधि का मूलाधार है। यह विधि खोज की विधि है। इस विधि में बालक मौलिक अन्वेषक के रूप में कार्य करता है। उसे कम से कम बताया जाए तथा वह अधिक से अधिक स्वय ज्ञान प्राप्त करे। अध्यापक का कार्य उसके चारों ओर ऐसी परिस्थिति उत्पन्न करना होता है जिससे उसे स्वय अनुभव प्राप्त हो, वह स्वयं ज्ञान प्राप्त करे, स्वय सत्य को ढूंढ निकाले।

इस पद्धति के जन्मदाता आर्मस्ट्राग ने इस पद्धति का नाम ह्यूरिस्टिक मैथड रखा। ग्रीक भाषा में 'ह्यूरिस्को' शब्द का अर्थ है—"मैं मालूम करता हूँ।" इसी से ह्यूरिस्टिक शब्द की रचना की गई है। इसके नाम से ही स्पष्ट है कि यह विधि बालक को स्वयं ज्ञान कराती है। इस विधि का प्रयोग आर्मस्ट्राग ने केवल विज्ञान की शिक्षा के लिए ही किया था। शिक्षार्थी को एक वैज्ञानिक स्थिति में छोड दिया जाता था तथा उससे उत्पन्न ज्ञान का अनुभव करने का अवसर दिया जाता था। पर शनैः शनैः इस विधि का प्रयोग प्रायः प्रत्येक विषय के पढ़ाने में होने लगा है।

अनुसंधान विधि की विशेषतायें—बालक स्वभाव से ही क्रियाशील और स्फूर्तियुक्त होता है। वह वस्तुओं का स्वयं प्रयोग करके उनसे ज्ञान प्राप्त करना चाहता है। अतः यह विधि बालक की क्रियाशीलता से समतौल बनाए रखती है। बालक को यह विधि किसी बन्धन में नहीं बाँधती। पढ़ाने में बालक निष्क्रिय हो जाता है पर इस विधि में वह क्रियाशील रहता है। यह विधि खेल विधि के बिल्कुल निकट है जिससे बालक खेल ही खेल में शिक्षा प्राप्त कर लेता है। इस विधि द्वारा स्वयं प्राप्त ज्ञान स्थायी होता है। यह विधि बालक के मस्तिष्क का अधिक विकास करती है। उसे विचार करने की वैज्ञानिक विधि सिखाती है। उसकी तर्क शक्ति का विकास करती है।

बुनियादी शिक्षा में अनुसंधान विधि का प्रयोग—बुनियादी शिक्षा बालक को सक्रिय बनाती है और उसकी स्वाभाविक क्रियाशीलता का उपयोग करती हुई उसे अपने आप ज्ञान प्राप्त करने की ओर प्रेरित करती है। अतः अनुसंधान विधि से इस शिक्षा पद्धति में बहुत लाभ उठाया जा सकता है। बुनियादी शिक्षा में इस विधि के प्रयोग के समय निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए :—

(१) बालक के लिए ऐसा वातावरण उपस्थित करना चाहिए कि वह स्वयं

अन्वेषण कर सकें।

(२) यह विधि बालक को मनुष्य के क्रमिक विकास के इतिहास के अनुसार ही पढ़ाना उचित समझती है। यह विधि मानती है कि जिस क्रम से मनुष्य ने विकास किया है बालक उसी क्रम से सीखता है। गर्भावस्था में बालक पशुओं की शक्ल में अर्थात् मछली, मेंढक, कुत्ता आदि की शक्ल में रहता है। फिर मनुष्य की शक्ल में गर्भ से बाहर आकर उसी क्रम से विकास प्राप्त करता है। जिस क्रम से मनुष्य ने प्राप्त किया है। अतः इस विधि में भी उसी क्रमिक विकास का ध्यान दिया जाय तो बालक शीघ्रता से ज्ञान प्राप्त करेगा।

(३) इस विधि द्वारा गणित, सामान्य विज्ञान आदि विषयों का ज्ञान सरलता से कराया जा सकता है।

(४) अध्यापक को बालक के मार्ग को सरल करते रहना चाहिए क्योंकि खोज करने में आपत्तियाँ अधिक आती हैं तथा बालक का अपरिपक्व मस्तिष्क उनको सुलझाने में समर्थ नहीं होता। अतः यह अपने कार्य से घृणा करने वाला भी बन सकता है।

(५) इस विधि का प्रयोग इतिहास एवं साहित्य के विषयों को पढ़ाने में भी किया जा सकता है यदि अध्यापक सतर्कता से बालकों की सहायता करें। भूगोल के नक्शे बनाना इस विधि से सिखाया जा सकता है।

(६) इस विधि में समय और शक्ति का अपव्यय अधिक हो सकता है। अतः उससे बचना चाहिए।

(७) अनुसंधान विधि में बालक के सामने जटिल समस्या आ जाने पर अध्यापक को चाहिये कि वह स्वयं ऐसा मार्ग अपनावे कि बालक की अनुकरण प्रवृत्ति से बालक को समस्या का हल प्राप्त हो जाय। आवश्यकतानुसार मौखिक प्रणाली द्वारा भी शिक्षा प्रदान कर समस्या सुलझाई जा सकती है।

(८) इस विधि के अत्यधिक प्रयोग से बालक में अनावश्यक आलोचना करने की प्रवृत्ति बढ़ सकती है। अतः उससे उसे बचाना चाहिए।

(९) बालकों को उनकी रुचि तथा क्षमता के अनुकूल ही इस विधि की ओर प्रवृत्त करना चाहिए।

(१०) अध्यापक को इस बात में सतर्कता बरतनी चाहिए कि बालक समस्याओं का स्वयं हल ढूँढ़ता ढूँढ़ता गलत हल निकाल कर उसे ही शुद्ध न मान ले। ऐसा होने पर उसे गलत ज्ञान हो जाने की सम्भावना है।

सारांश

अनुसंधान विधि—"बालकों को कम से कम बताना चाहिये और उन्हें अधिक से अधिक खोज निकालने के लिए उकसाना चाहिए।" स्पेंसर के इस कथन की सत्यता आर्मस्ट्रांग की इस पद्धति में स्पष्ट झलकती है। यह खोज की विधि है।

इसमें बालक क्रियाशील होकर स्वयं ज्ञान प्राप्त करता है।

अनुसंधान विधि की विशेषताएँ—बालक की स्वाभाविक क्रियाशीलता के आधार पर स्वयं ज्ञान कराती है। यह विधि खेल विधि के निकट होने से खेल में बालक को ज्ञान कराती है।

बुनियादी शिक्षा में अनुसंधान विधि का प्रयोग—बुनियादी शिक्षा भी बालक की क्रियाशीलता का उपयोग करती है अतः इस विधि के प्रयोग द्वारा बुनियादी शिक्षा को अधिक सफल बनाया जा सकता है। यह अवश्य है कि इसके प्रयोग में अध्यापक को सतर्क रहना चाहिए अन्यथा बालक समय और श्रम का अपव्यय कर सकता है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

(१) अनुसंधान विधि से क्या तात्पर्य है? उसकी विशेषताओं पर प्रकाश डालिये।

(२) बुनियादी शिक्षा में अनुसंधान विधि का प्रयोग कहाँ तक किया जा सकता है? इसके प्रयोग के लिए किन किन बातों का ध्यान रखना चाहिए?

⊙

प्रगतिवादी शिक्षण पद्धतियाँ

आदर्शवादी शिक्षा—विभिन्न शिक्षा शास्त्रियों एवं उनकी पद्धतियों की ग: अध्यायों में जानकारी प्राप्त करने से यह निष्कर्ष निकलता है कि जब से मानव इस पृथ्वी पर उत्पन्न होकर होश संभाला है तभी से उसकी सीखने की प्रवृत्ति निरंत चली आ रही है। प्रारम्भिक काल में मानव ने प्रयत्न व भूल पद्धति (Trial and Error Method) द्वारा ही ज्ञानार्जन किया था। यही शिक्षा-ग्रहण की प्रथम सीढ़ी है। अर्जित ज्ञान वृद्धि, सहयोग व सम्पर्क की भावना के आधार पर सभ्यता का विकास होने लगा। मानव कुटुम्ब में रहने लगा और कुटुम्बों ने समाज का रूप धारण कर लिया। व्यक्तिगत अनुभवों के आधार पर वस्तुओं के सुखकारक और पीड़ाकारक होने का ज्ञान व्यक्ति अपने कुटुम्ब के तथा समाज के सदस्यों को देना अपना कर्तव्य मानने लगा। यहीं से शिक्षा प्रदान करने का सूत्रपात होता है। अब व्यक्ति को स्वयं करके सीखने के आधार पर दूसरों के द्वारा अर्जित अनुभव ज्ञान के रूप में अर्थात् शिक्षा के रूप में मिलने लगा। यह स्वाभाविक भी था क्योंकि इससे समय और कष्टों से बचाव होता था।

शनैः शनैः मानव विकास में कर्तव्याकर्तव्य की दृढ़ भावना ने धर्म का रूप ले लिया। धर्म का दार्शनिक पक्ष इस जीवन को क्षणिक, निस्सार एवं आत्मा को अमर मानने लगा। मनुष्य दो भागों में बँट गया—स्वयं और बाह्य जगत्। "स्वयं" की विवेचना प्रमुख और बाह्य जगत् अर्थात् पृथ्वी, जल, तेज, वायु और प्रकाश की विवेचना को गौण माना जाने लगा। "स्वयं" का अस्तित्व होने पर ही तो बाह्य जगत् का मूल्य है यह मानकर "स्वयं" के दो भाग 'मन' और 'आत्मा' के विश्लेषण को प्रधानता दी गई है। क्योंकि संसार की अंतिम सत्ता भौतिक नहीं वरन् आध्यात्मिक है। अर्थात् मन, आत्मा, परमात्मा ही सर्वस्व है।

मानव इसी आध्यात्मिकता की ओर प्रवृत्त हुआ। उसने जो कुछ अनुभव किया वह अपनी सन्तति को बता देना चाहता था ताकि उसकी मृत्यु पर वह सन्तति आध्यात्मिकता की खोज के पथ पर आगे बढ़ती रहे। अतः उस समय की शिक्षा का उद्देश्य भौतिक उतना नहीं रहा जितना आध्यात्मिक रहा। अर्थात् आदर्शवाद ही शिक्षा का मुख्य लक्ष्य था। आध्यात्मिकता का सम्पूर्ण ज्ञान विभिन्न भाषाओं के साहित्य में निहित था। अतः उनका ज्ञान आवश्यक हो गया, बालक को अगाध विद्या थोड़े से ही समय में देनी होती थी। अतः यह समझा गया कि उस पर दृढ़ नियन्त्रण रखा जाना चाहिए। खेल-कूद आदि में समय बिताना व्यर्थ समझा जाकर दिन-रात ग्रंथ रटना, किताबों का कीड़ा बनकर विद्वत्ता प्राप्त करना, एकाग्र होकर चिंतन-मनन करना आदि श्रेष्ठ समझे जाने लगे। हाथ द्वारा कार्य करना निकृष्ट समझा

जाने लगा। शिक्षा विषय-प्रधान बन गई। बालक की इच्छा, प्रवृत्ति, आवश्यकता, मानसिक स्तर एवं ज्ञानार्जन की शक्ति का कोई ध्यान नहीं रखा जाता था।

प्रगतिवादी आन्दोलन का प्रारम्भ—कई शताब्दियों तक निरन्तर आध्यात्मिकता की प्रधानता रहने पर तथा उसकी गहराई तक पहुँचने के अविरल प्रयत्नों पर भी मानव को संतोष एवं शान्ति नहीं मिली। आध्यात्मिकता की अपेक्षा उदर पूर्ति को प्रधानता दी जाने लगी। आर्थिक और धार्मिक स्वार्थों का संघर्ष प्रारम्भ हुआ और विज्ञान की जड़ें जमने लगीं। इसका प्रभाव शिक्षा पर भी पड़ने लगा। आध्यात्मिक उद्देश्य के स्थान पर बौद्धिक एवं भौतिक जीवन को उपयोगी बनाने का उद्देश्य प्रबल होने लगा।

इस विचारधारा का सर्वप्रथम प्रवर्तक फ्रांसिस बेकन को माना जाता है। इसने १६वीं सदी में अपने दो ग्रंथों "एडवासमेंट ऑफ लर्निंग" और "दि न्यूएटलांटिस" द्वारा यह नारा बुलन्द किया कि शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति को वह ज्ञान प्रदान करना है जिससे वह प्रकृति पर ऐसा अधिकार प्राप्त करे कि वह समाजोपयोगी बन सके। इस प्रकार वह शिक्षा की पद्धति को वैज्ञानिक स्वरूप देना चाहता था।

फ्रांसिस बेकन के बाद महत्त्वपूर्ण शिक्षाशास्त्री कमेनियस ने एक सुसंस्कृत विचारधारा एवं शिक्षण प्रणाली समाज के सामने रखी। उसने कहा कि शिक्षा का काम पुस्तकें 'पढ़ा देना नहीं' अपितु प्रकृति के अनुसार बालक को चलाना है। उसने स्वयं बालक के दृष्टिकोण से पाठ्य पुस्तकें बनाईं, ग्रन्थ लिखे तथा शाला का संचालन किया। उसी ने सर्वप्रथम सचित्र पाठ्य पुस्तक की प्रणाली प्रचलित की। उसकी शिक्षा प्रणाली ज्ञानेन्द्रिय यथार्थवादी शिक्षा प्रणाली मानी जाती है।

प्रगतिवादी शिक्षा या प्रवृत्तिवादी शिक्षा के आन्दोलन का सूत्रपात यद्यपि महाशय बेकन और कमेनियस से माना जाता है तथापि इस आन्दोलन के मुख्य नायक प्रसिद्ध शिक्षाशास्त्री रूसो हैं। इस आन्दोलन की स्पष्ट झलक रूसो के क्रान्तिकारी विचारों द्वारा मूर्त रूप धारण करती है। रूसो ने रूढ़िवादी शिक्षालयों एवं अप्राकृतिक शिक्षा का घोर विरोध किया। उसका मूल सिद्धान्त है शिक्षा का केन्द्र बालक है न कि विभिन्न विषय। इस सिद्धान्त के आधार पर शिक्षा में मनोविज्ञान ने जड़ पकड़ी। इसके साथ ही बालकों को सामाजिक कार्यों में उत्तरदायित्वपूर्ण भाग लेने के योग्य बनाने पर भी जोर दिया जाने लगा। इस प्रकार बालक के व्यक्तिगत विकास के साथ-साथ उसमें सामाजिकता की अभिवृद्धि भी प्रगतिवादी शिक्षा का अभिन्न अंग बन गई है।

प्रगतिवादी शिक्षण पद्धतियाँ—शिक्षा सम्बन्धी इस नवीन विचारधारा ने शिक्षा जगत् में हलचल मचा दी। परम्परागत रूढ़िवादी दूषित शिक्षा प्रणाली की ओर से ध्यान हटने लगे। इस नई विचारधारा के अनुसार नई शिक्षण विधियों के आविष्कार के प्रयत्न किये जाने लगे। फलस्वरूप अनेक शिक्षण प्रणालियों का जन्म हुआ जिनमें बालक ही को शिक्षा का मुख्य केन्द्र माना गया। इन प्रणालियों में से 'डाल्टन प्लान', 'प्रोजेक्ट पद्धति', 'माटेसरी पद्धति' आदि प्रमुख हैं जिनका विस्तार

के साथ विवेचन किया जा चुका है।

प्रगतिवादी शिक्षण पद्धतियों की विशेषतायें—प्रगतिवादी शिक्षण पद्धति में परस्पर, प्रणाली की दृष्टि से, अल्पाधिक अन्तर अवश्य है पर सभी प्रणालि के उद्देश्य एवं विशेषतायें समान हैं। इन पद्धतियों की निम्नलिखित विशेषत है :—

(१) शिक्षा का केन्द्र बिन्दु बालक—प्राचीन शिक्षा प्रणाली में बालक गौण माना जाकर विषय को प्रधानता दी जाती थी। विषयों का चयन, उन स्तर, उनकी शृखला, उनकी संख्या सभी बालकों के दृष्टिकोण से नहीं वरन् पु के दृष्टिकोण से रखे जाते थे। बालक से वयस्क के समान व्यवहार की उपेक्षा जाती थी। परन्तु प्रगतिवादी शिक्षण पद्धतियाँ विषयों को प्रधानता न देकर बाल को प्रधान मानती हैं। बालक की व्यक्तिगत रुचि, क्षमता, शक्ति, वय, बुद्धि आधार पर शिक्षा प्रदान की जाती है। बालक उतना ही सीखता है जितना ग्रहण कर सके एवं पचा सके। शाला के सब उपकरण जैसे पुस्तकें, खेल साम पाठ्य सामग्री, फर्नीचर, इमारत, शिक्षक सभी बालक के शारीरिक, मानसिक आत्मिक विकास को ध्यान में रखकर तैयार किये जाते हैं। तात्पर्य यह है कि बाल के सर्वाङ्गीण विकास को ध्यान में रखकर उसे शिक्षा दी जाती है।

(२) केवल पुस्तकीय शिक्षा का विरोध—रूढ़िवादि शिक्षा में पुस्तकों अनावश्यक बोझ बालको पर लाद दिया जाता है। उनकी स्मरण शक्ति इस बो के कारण दब जाती है। नई शिक्षण पद्धतियाँ पुस्तकों को अधिक महत्व नही देतीं पुस्तकों को शिक्षा प्रदान करने का साधनमात्र मानती हैं। आवश्यकतानुसार पुस्तक का प्रयोग किया जाता है अन्यथा बालक को स्वय अनुभव करने का अधिक धिक अवसर दिया जाता है।

(३) स्वयं के अनुभव द्वारा सीखना—प्राचीन परम्परागत प्रणाली बालक को स्वय को सीखने का अवसर प्रदान न कर केवल उन्हें सिखाने पर जोर देती है प्रगतिवादी शिक्षण पद्धतियाँ बालक को ऐसा अवसर एवं वातावरण प्रदान करत हैं कि बालक सीखने की आवश्यकता महसूस कर स्वय सीखें। वह स्वयं ज्ञान क खोज करता है। ज्ञान का बोझ उन पर लादा नहीं जाता।

(४) रचनात्मक प्रवृत्ति का विकास—प्रत्येक बालक मे क्रियाशीलता होती है। वह निर्माण करना चाहता है। प्रगतिवादी शिक्षण पद्धतियाँ बालक की इस पद्धति का सदुपयोग कर उसे विकास का क्षेत्र प्रदान करती हैं।

(५) खेल द्वारा शिक्षा—प्राचीन पद्धति में खेलों को कोई स्थान नहीं। खेलों में व्यय किया गया समय व्यर्थ समझा जाता रहा है। पर प्रगतिवादी पद्धतियों ने खेलों द्वारा शिक्षा प्रदान करने की विधि अपनाकर शिक्षा को भारस्वरूप समझने से बचा लिया है।

(६) बालकों की स्वतन्त्रता—प्राचीन पद्धति में बालक को पुस्तकों, अध्या पकों, विषयों और समय विभाग चक्रों में कैद कर लिया जाता रहा है। इस नवीन

शिक्षा प्रणालियों में बालक को पूर्ण स्वतन्त्रता है। बालक जब चाहे और जो चाहे पढ़ें।

(७) **बालकों में सामाजिकता**—बालकों को पूर्ण स्वतन्त्रता दिये जाने का यह अर्थ नहीं कि उनका समाज से कोई प्रयोजन नहीं। सम्पूर्ण शाला का जीवन सामाजिक जीवन की परछाईं होता है। सहयोग, सहानुभूति, कर्त्तव्य पालन, मैत्री आदि का अवसर प्रगतिवादी शिक्षा प्रणालियाँ प्रदान करती हैं। जिससे बालक अपने आपको समाज का एक उपयोगी अंग बना लेता है।

(८) **शिक्षक सहयोगी के रूप में**—प्राचीन शिक्षा पद्धति में शिक्षक सक्रिय और बालक निष्क्रिय रहता आया है। अध्यापक बालक को चुपचाप बिठाकर उसके मस्तिष्क को सूचनाओं से भरता रहता है। पर प्रगतिवादी शिक्षा पद्धतियाँ क्रिया द्वारा शिक्षा ग्रहण करने का अवसर प्रदान करती हैं। शिक्षक केवल सहयोगी के रूप में आपत्ति उत्पन्न होने पर पथ-प्रदर्शन करता है।

(९) **जीवन की वास्तविकता का अनुभव**—प्रगतिशील शिक्षा के अनुसार बालक को जीवन की वास्तविकता का अनुभव कराया जाता है। इन प्रणालियों ने शाला और समाज के बीच की खाई पाट दी है। भावी जीवन के व्यतीत करने के क्रम को वे शाला में सीख लेते है। वे समाज और देश के सामने की समस्याओं का परिचय प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं और उनका हल ढूंढते हैं।

(१०) **हाथ के कार्य को महत्ता**—प्राचीन पद्धति में मानसिक कार्य को ही स्थान था। हाथ के कार्य को नीचा समझा जाता था। पर इन नवीन पद्धतियों ने दस्तकारी को प्रधानता दी है। साथ ही दस्तकारी कार्य एवं मानसिक कार्य का सतुलन भी बनाये रखती है। बालक हाथ से कारीगर बनता है, मन से वैज्ञानिक और तत्ववेत्ता बन जाता है, हृदय से कलाकार बनता है और इस प्रकार समाज का सुनागरिक बन जाता है।

इस प्रकार प्रगतिवादी शिक्षण पद्धतियाँ मध्य युग की दूषित प्रणालियों के प्रतिकार स्वरूप सुधारवादी आन्दोलन का प्रतिफल है जिन्होंने बालक को नवीन दृष्टिकोण से देखकर उसके सर्वाङ्गीण विकास के समुचित साधन, सुविधायें, वातावरण व अवसर जुटाने के सफल प्रयत्न किये है। ये पद्धतियाँ यथार्थ जीवन का ज्ञान प्राप्त कराती हैं।

प्रगतिवादी पद्धतियों के दोष—प्रगतिवादी पद्धतियों की विशेषताओं को देखते हुए यह प्रतीत होता है कि वास्तव में बालक को शिक्षा के लिये ये प्रणालियाँ उपयुक्त ही हैं। पर परम्परावादी शिक्षा का पक्ष करने वाले शिक्षाशास्त्री इनकी कड़ी आलोचना करते हुए निम्नलिखित दोष बताते है :—

(१) **अन्ध यथार्थवाद से समाज की क्षति**—नवीन शिक्षा पद्धतियों के आलोचक कहते हैं कि इन पद्धतियों के अनुसार शाला अपने समय के सामाजिक जीवन का प्रतिरूप है। पढ़ाई के समय बालक को जिस जीवन का अनुभव होता है वह ठीक वही है जो बाहरी दुनिया में देखने को मिलता है। पर वस्तुतः समाज का यह

जीवन सर्वांगपूर्ण तो नहीं कहा जा सकता। यह सामाजिक जीवन तो अपूर्ण एवं दोषपूर्ण है। शिक्षा का उद्देश्य जीवन को अधिकाधिक सुसंस्कृत बनाना है। अतः यदि बालक को वर्तमान जीवन का ज्ञान कराकर छोड़ दिया जाये तो वह अपूर्ण एवं दोषपूर्ण जीवनक्रम को सीख जाने पर क्या इसी में समाज का भला है; शिक्षण में नग्न यथार्थवाद के समावेश से समाज को भारी क्षति अवश्यम्भावी है। अतः शिक्षा को तो सदा आदर्शोन्मुखी ही होना चाहिए। आदर्श विमुख ये नवीन पद्धतियाँ निश्चय ही समाज का ह्रास करेंगी।

(२) बालक के दुर्गुणी बनने की सम्भावना—इन पद्धतियों में दूसरा अभाव यह है कि अध्यापक सक्रिय नहीं वरन् निष्क्रिय अंग बन जाता है। उसका प्रभाव बालक पर प्रधान रूप से रहकर गौण हो जाता है। जिसका परिणाम यह देखा गया है कि बालक उच्छृंखल तथा अनुशासनहीन हो जाते हैं। अध्यापक पर बालकों को न श्रद्धा ही रहती है और न विश्वास ही। बालकों को पर्याप्त ज्ञान न होने के कारण उनको दी गई स्वतन्त्रता का वे सदुपयोग नहीं कर सकते वरन् उसका दुरुपयोग करते हुए वे समाज विरोधी बन जाते हैं। अतः यदि बालकों को समाज के लिए समस्या नहीं बनाना है तो इन पद्धतियों द्वारा शिक्षण रोक दिया जाना चाहिए।

(३) बालकों में अयोग्यता की वृद्धि—यह पद्धतियाँ बालक की रुचि के अनुकूल शिक्षा ग्रहण करने का अवसर प्रदान करती हैं जिनमें विषय, पुस्तक, समय आदि का कोई बन्धन नहीं। आलोचकों का कहना है कि बालकों की रुचि पर निर्भर रहकर पढ़ाई कराना ठीक नहीं जँचता। बाल्यकाल में रुचियाँ न तो परिपक्व ही होती हैं और न परिष्कृत ही। बाल्यकाल में तो बालक की रुचि केवल खेल-कूद तक ही सीमित रहती है। ऐसी अवस्था में विभिन्न विषयों का ज्ञान प्राप्त करने के लिए बालक को स्वतन्त्र छोड़ देना उचित नहीं। इस कार्य के लिए बालक पर कदापि निर्भर न रहना चाहिये अन्यथा परिणाम बड़े ही बुरे होंगे।

(४) जीवन की जटिलता बालक के लिए समस्या—नवीन पद्धतियों वाली शाला सामाजिक जीवन की प्रतिच्छाया है। जीवन की वास्तविकता और यथार्थता का परिचय शालीय जीवन द्वारा बालक को कराया जाता है। उसे जीवन व्यतीत करने की शिक्षा दी जाती है। पर जीवन एक जटिल समस्या है। बालक की बुद्धि ही कोमल होती है तब क्या जटिलताओं से परिपूर्ण जीवन को बालक पर लादना उचित है? क्या वह उसके लिए भारस्वरूप नहीं? क्या जीवन की जटिलताओं को अपनाने के लिए बाल्यकाल उचित अवसर है?

(५) केवल भौतिकता की ओर—इन नवीन पद्धतियों में वैज्ञानिक तत्व अधिक है। विचारात्मक प्रगति अर्थात् मानसिक कार्य का अभाव सा है जिसका फल यह है कि मानव समाज उदर पोषण को ही ध्येय समझने लगा है। अर्थात् शिक्षा का ध्येय उदरपोषण ही रह गया है। यह ध्येय बालकों को घोर भौतिकता की ओर उन्मुख करता है जिसके कारण उनके जीवन में कभी शान्ति सन्तोष लक्षित नहीं होते जो जीवन की अनिवार्य आवश्यकतायें है।

(६) बुद्धि विरोधी शिक्षा—नवीन पद्धतियाँ बुद्धि विरोधी शिक्षा प्रदान करती हैं। बुद्धि का प्रयोग इन प्रणालियों द्वारा अधिक नहीं हो पाता। उसके कारण बालकों का एक अंग शिथिल रहकर अविकसित रह जाता है। सम्पूर्ण शरीर और जीवन में बुद्धि की जो महत्ता है वह अवहेलित रह जाती है फिर बालक का विकास कैसे सम्भव है ?

इस प्रकार आलोचकों द्वारा कड़ी आलोचना किये जाने पर इनके प्रयोग-कर्त्ता सहम गए हैं और नवीन विधियों में इन दृष्टिकोणों से सुधार करने की ओर प्रयत्नशील हैं।

भारत में प्रगतिवादी शिक्षण पद्धतियाँ—भारतीय संस्कृति विदेशियों द्वारा आक्रान्त होने पर भी अक्षुण्ण बनी हुई है। भारत में शिक्षा की दृष्टि में विदेशियों ने अनेक परिवर्तन करने चाहे तथापि वे आमूल चूल परिवर्तन कभी न ला सके। वर्तमान भारतीय शिक्षा का सूत्रपात ब्रिटिश शासकों ने किया। भारतीय शिक्षा पद्धति पाश्चात्य रंग में गहरी रंग गई तथापि उसने भारतीयता को कभी न त्यागा वरन् इसकी प्रतिक्रिया स्वरूप ऐसे आन्दोलन भी हुए जिन्होंने भारतीय शिक्षण पद्धतियों की रक्षा की।

तथापि यह अवश्य मानना होगा कि अंग्रेजों के शासनकाल में भारतीय शिक्षा पर पूर्णतः अंग्रेजियत की छाप लग गई। जब भी यूरोप व इंगलैण्ड के शिक्षा जगत में क्रान्ति हुई उसका प्रभाव भारत पर भी पड़ा। प्राथमिक, माध्यमिक और उच्च शिक्षा का संगठन अंग्रेजी ढंग पर किया गया। साथ ही पाश्चात्य देशों की खोजों के आधार पर भारत में भी नवीन पद्धतियों के प्रयोग होने लगे। 'किंडर गार्टन', 'माटेसरी', 'प्रोजेक्ट प्रणाली' की शालायें यहाँ भी चलाई जाने लगीं। शिक्षा में मनोविज्ञान के प्रयोग किये जाने लगे। प्रगतिवादी शिक्षण प्रणालियों के आधार पर ही बालक बालिकाओं की शिक्षा, अन्धों की शिक्षा, विकलांगों की शिक्षा, अल्प बुद्धि और तीव्र बुद्धि बालकों की शिक्षा, वयस्कों और प्रौढ़ों की शिक्षा के प्रयोग भी भारत में प्रचलित किये जा रहे हैं।

सत्य तो यह है कि भारत में यह भी अनुभव किया जाने लगा है कि प्राचीन शिक्षण विधियाँ पूर्ण रूप से अनुपयोगी हैं। वैज्ञानिक प्रगति और औद्योगिक विकास के कारण शिक्षा में भी विज्ञान और उद्योगों का समावेश आवश्यक समझा जाने लगा है। महात्मा गाँधी ने भी कई अन्य बातों के साथ इस भावना से प्रेरणा पाकर बुनि-यादी शिक्षा विधि का निर्माण किया।

प्रगतिवादी शिक्षण पद्धतियाँ एवं बुनियादी शिक्षा—प्रश्न यह उठता है कि महात्मा गाँधी की बुनियादी शिक्षा को प्रगति आन्दोलन की शिक्षण पद्धतियों में से एक माना जाय अथवा उससे अलग। कई विद्वान् इसे इस आन्दोलन के अन्तर्गत ही मानते हैं और इसका नामकरण भी 'प्रवृत्ति (activity) केन्द्रित शिक्षा' करना उचित मानते हैं।

यह तो निर्विवाद सत्य ही है कि प्रगतिवादी शिक्षा पद्धतियों की सभी विशेषताएँ

बुनियादी तालीम में विद्यमान हैं। अतः बुनियादी शिक्षा को इस आन्दोलन का मूर्त रूप मान लेने में किसी प्रकार की शंका नहीं रहती। पर बुनियादी शिक्षा केवल प्रगतिवादी शिक्षण पद्धति ही नहीं है। यह अवश्य है कि यह बुनियादी शिक्षा प्रगतिवादी विचारधारा का भी पूर्णतया अपने में समावेश करती है। अर्थात् बुनियादी शिक्षा में प्रगतिवादी विचारधारा की विशेषताओं के साथ-साथ और भी विशेषताएँ विद्यमान हैं।

जो दोष प्रगतिवादी शिक्षण पद्धतियों में बताए गए हैं बुनियादी शिक्षा उनसे रहित है। सर्वप्रथम दोष प्रगतिवादी शिक्षण पद्धतियों पर यह लगाया गया है कि ये नग्न यथार्थवाद को अपनाती है जिसके कारण समाज की भारी क्षति होना सम्भव है। बुनियादी शिक्षा यथार्थ जीवनक्रम का ज्ञान कराने के साथ-साथ सर्वोदयी समाज का लक्ष्य सामने रखती है अर्थात् यह आदर्शोन्मुख भी है। विनोबा जी ने कहा—"नई तालीम का मतलब है नित्य नए समाज की रचना करने वाली तालीम। इसे नई तालीम नाम दिया गया है लेकिन मैं इसे नित्य नई तालीम कहता हूँ।" विनोबा जी के इस कथन मे आदर्शवाद व यथार्थवाद का समन्वय है जो बुनियादी शिक्षा की विशेषता है और जिसका प्रगतिवादी शिक्षण पद्धतियों में अभाव है।

बुनियादी शिक्षण मे प्रगतिवादी शिक्षा-पद्धतियो की अपेक्षा दूसरी विशेषता यह है कि अध्यापक इसमें निष्क्रिय या गौण स्थान प्राप्त नही करता वरन् शिक्षक एवं छात्र दोनो ही सक्रिय रहते है। अध्यापक इस रूप मे सक्रिय है कि वह अपने जीवनक्रम का प्रभाव बालक पर डालना चाहता है अतः यदि अध्यापक निष्क्रिय है तो यह निश्चित है कि छात्र भी निष्क्रिय हो जाएगा। बुनियादी शिक्षा जीवन द्वारा जीवन की शिक्षा है, अतः अध्यापक का जीवन ही बालक के लिए आदर्श है और उसी के आधार पर वह स्वय के जीवन को ढालने का प्रयत्न करता है।

प्रगतिवादी शिक्षण पद्धतियां द्वारा अपनाई गई बालक की स्वतन्त्रता से आलोचकों ने जो भय दिखाया है वह भी बुनियादी शिक्षा मे लक्षित नही होता। यद्यपि बुनियादी शिक्षा बालक की स्वतन्त्रता का पूर्ण ध्यान रखती है तथापि शाला जीवन के प्रत्येक क्षण मे बालक इतना व्यस्त एवं तल्लीन रहता है कि वह स्वतन्त्रता को उच्छृंखलता का रूप प्रदान नही कर सकता।

इस प्रकार जीवन की शिक्षा होते हुए भी जीवन की जटिलता बालक पर भार नहीं बनती, जो कि प्रगतिवादी शिक्षण पद्धतियों का दोष माना गया है क्योंकि यह जीवन की शिक्षा भी जीवन द्वारा प्रदत्त है अर्थात् सक्रिय अध्यापक द्वारा, न कि निष्क्रिय अध्यापक द्वारा। अतः जीवन की जटिलता भी अध्यापक के जीवनक्रम के आधार पर सरल बन जाती है।

बुनियादी शिक्षा घोर भौतिकता एवं बुद्धि विरोधी शिक्षा लांछन से भी कलंकित नहीं क्योंकि इसमें जीवन की सादगी, सरलता, ईश्वरवंदन के साथ-साथ अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति, अपने आप पर स्वावलम्बी बनने की प्रेरणा विद्यमान है। साथ ही ज्ञान का अर्जन कार्य द्वारा है न कि ज्ञान और कार्य दोनों भिन्न रूप से

ग्रहण किए जाते हैं।

बुनियादी शिक्षा में सबसे बड़ी भारी विशेषता यह है कि वह उद्योग के आधार पर ज्ञान प्राप्ति का साधन है। प्रगतिवादी शिक्षण पद्धतियों में प्रायः अन्य विषयों की भाँति कार्य भी एक विषय है पर बुनियादी शिक्षा हाथ के कार्य द्वारा ही शिक्षा ग्रहण कराती है। अतः यह बुद्धि विरोधी भी नहीं तथा हाथ के काम और मानसिक काम का संतुलन बनाए रखती है। हृदय, हाथ और मस्तिष्क सभी क्रियाशील रहते हैं।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि बुनियादी शिक्षा में प्रगतिवादी शिक्षण पद्धतियों की सभी विशेषताओं के साथ-साथ अन्य कई विशेषताएँ विद्यमान हैं तथा प्रगतिवादी शिक्षण पद्धतियों के दोषों से यह मुक्त है, अतः यह उनसे बढ़कर है।

सारांश

आदर्शवादी शिक्षा—सर्व प्रथम मानव ने प्रयत्न और भूल पद्धति से ज्ञान प्राप्त किया। शनैः शनैः आध्यात्मिकता की भावना के कारण शिक्षा का उद्देश्य आदर्शवाद हो गया। अतः शिक्षा विषय-प्रधान बन गई।

प्रगतिवादी आन्दोलन का प्रारम्भ—आध्यात्मिकता से मानव को संतोष व शान्ति नहीं मिली। आर्थिक और धार्मिक स्वार्थों का संघर्ष प्रारम्भ हुआ। बौद्धिक एवं भौतिक जीवन को उपयोगी बनाने का उद्देश्य प्रबल हुआ। ऐसे समय में बेकन ने ऐसी शिक्षा देने का नारा बुलन्द किया जिससे प्रकृति को समाजोपयोगी बनाया जा सके। इसके बाद कमेनियस व रूसो आदि शिक्षा-शास्त्रियों ने इस पर अधिक जोर दिया। शिक्षा में नवीन पद्धतियों का प्रादुर्भाव हुआ।

प्रगतिवादी शिक्षण पद्धतियाँ—कई प्रगतिवादी शिक्षण पद्धतियों का जन्म हुआ जैसे 'डाल्टन प्लान', 'किंडर गार्टेन', 'मांटेसरी' आदि।

प्रगतिवादी शिक्षण पद्धतियों की विशेषताएँ—(१) शिक्षा का केन्द्र-बिन्दु बालक, (२) केवल पुस्तकीय शिक्षा का विरोध, (३) स्वयं के अनुभव द्वारा सीखना, (४) रचनात्मक प्रवृत्ति का विकास, (५) खेल द्वारा शिक्षा, (६) बालकों की स्वतन्त्रता, (७) बालकों में सामाजिकता, (८) शिक्षक सहयोगी के रूप में (९) जीवन की वास्तविकता का अनुभव तथा (१०) हाथ के कार्य की महत्ता।

प्रगतिवादी पद्धतियों के दोष—(१) नग्न यथार्थवाद से समाज की क्षति, (२) बालक के दुर्गुणी बनने की सम्भावना, (३) बालकों में अयोग्यता की वृद्धि, (४) जीवन की जटिलता बालक के लिए समस्या, (५) केवल भौतिकता की ओर तथा (६) बुद्धि विरोधी शिक्षा।

भारत में प्रगतिवादी शिक्षण पद्धतियाँ—अंग्रेजों के शासन में रहने के कारण पाश्चात्य देशों में जब जब भी शिक्षा-जगत् में क्रांतिकारी आन्दोलन हुए

उनका प्रभाव भारत पर भी अवश्य पड़ा। फलतः नवीन शिक्षण पद्धतियों का प्रयोग भारत में भी किया जाने लगा।

प्रगतिवादी शिक्षण पद्धतियाँ एवं बुनियादी शिक्षा—बुनियादी शिक्षा न केवल प्रगतिवादी शिक्षण पद्धति ही है वरन् उससे बढ़कर भी है क्योंकि प्रगतिवादी शिक्षण पद्धतियों के दोष उसमें नहीं हैं।

अभ्यासार्थ प्रश्न

(१) प्रगतिवादी आन्दोलन से क्या तात्पर्य है? इसका आरम्भ कब व किसके द्वारा किया गया।

(२) प्रगतिवादी शिक्षण पद्धतियों की क्या-क्या विशेषताएँ हैं?

(३) प्रगतिवादी शिक्षण पद्धतियों में क्या-क्या दोष बताये जाते हैं? आप उनसे कहाँ तक सहमत हैं?

(४) क्या बुनियादी शिक्षा को प्रगतिवादी शिक्षण पद्धति कहना उचित है? अपने उत्तर की पुष्टि सप्रमाण कीजिए।

अध्याय १६

किंडर गार्टन पद्धति और बुनियादी शिक्षा

प्रस्तावना—रूसो ने शिक्षा को व्यक्तिवादी बना दिया था। पेस्टालाजी ने उसे जन सामान्य की ओर खींचा। उसे सामाजिक बनाया तथा उसमें मनोविज्ञान का समावेश किया। पेस्टालाजी की विचारधारा को उसके शिष्य हरबार्ट ने आगे बढ़ाया तथा उसका विकास किया। हरबार्ट ने शिक्षा मनोविज्ञान की रूपरेखा स्पष्ट करते हुए कक्षा में नित्य की पाठ योजना पर अधिक बल दिया। जिसके विषय में हम 'हरबार्ट के पाँच सोपान' शीर्षक अध्याय में पढ़ेंगे। हरबार्ट ने माध्यमिक शिक्षा पर अधिक ध्यान दिया पर पेस्टालाजी के दूसरे शिष्य फ्रोबेल ने प्रारम्भिक शिक्षा पर अधिक ध्यान दिया। हरबार्ट ने जिस पहलू को छोड़ दिया उसी को फ्रोबेल ने अपनाया था।

फ्रोबेल का जीवन—फ्रोबेल का जन्म २१ अप्रैल सन् १७८२ के दिन जर्मनी के ओवर बेस बॅक गांव में हुआ था। माता का देहान्त बचपन ही में हो गया। पिता पादरी थे। पिता तथा विमाता ने बालक पर कोई ध्यान न दिया। दस वर्ष की आयु में स्कूल में भरती हुआ पर वह पढ़ाई में निकम्मा समझा जाता था। घर की ओर से उदास रहने के कारण वह पास के जंगल में अपना मन बहलाने चला जाता। वहाँ के वृक्ष, पौधे, लताओं, फूलों, पत्तियों में अपना मन बहलाता था। धीरे-धीरे उसे ऐसा प्रतीत होने लगा कि वह भी जंगल का एक आवश्यक अंग है। अर्थात् वह अपने में तथा प्रकृति में अटूट सम्बन्ध समझने लगा। अठारह वर्ष की अवस्था में, उसने जेना विश्वविद्यालय में प्रवेश लिया पर कुछ वर्षों बाद गरीबी के कारण उसे विश्वविद्यालय छोड़ देना पड़ा। विश्वविद्यालय का पूरा पैसा जमा न करा सकने के कारण उसे ६ सप्ताह विश्वविद्यालय की जेल में रहना पड़ा। विश्वविद्यालय छोड़कर चार वर्ष तक नौकरी की तलाश में घूमता रहा। कई धन्धे अपनाये और छोड़ दिये। इसी समय डाक्टर ग्रुनर नाम के व्यक्ति पेस्टालाजी आदर्श स्कूल के प्रधान थे। उन्होंने फ्रोबेल को अपने यहाँ अध्यापक रख लिया। उसे अध्यापन कार्य बहुत प्रिय लगा।

फ्रोबेल का अध्यापन कार्य—अध्यापन कार्य शुरू करने के कुछ ही दिनों बाद उसने अनुभव किया कि पढ़ाने का जैसा ज्ञान होना चाहिए उसकी उसमें कमी है। अतः वह पेस्टालाजी से जाकर मिला। उसकी पद्धति और शिक्षाशास्त्र का दो वर्ष तक अध्ययन किया। वापस उसने अपने स्कूल में आकर नवीन पाठ्य सामग्री बनाई जो बालकों को 'खेल द्वारा शिक्षा' देती थी। उसने यह भी अनुभव किया कि छोटे बच्चों पर माता-पिता का अधिक प्रभाव पड़ता है। अतः शिशुओं की शिक्षा बहुत कुछ उनकी माताओं पर निर्भर रहती है।

पेस्टालाजी की शिक्षा पद्धति का अध्ययन कर उसने मनोविज्ञान सम्बन्धी नवीन ज्ञान तो प्राप्त किया पर उसमें उसने 'एकता' का अभाव पाया जो संसार को विभिन्न वस्तुओं में पायी जाती है। अतः उसने पुनः विश्वविद्यालय में अध्ययन प्रारम्भ किया और धातुओं के कणों की बनावट आदि का पूर्ण निरीक्षण कर 'एकता' के सिद्धान्त को अधिक दृढ़ता से समझा। विश्वविद्यालय में शिक्षा तथा अन्य कार्यों में उसके ६ वर्ष बीत गये पर वह शिक्षा सम्बन्धी ग्रन्थों का अध्ययन करता रहा।

चौतीस वर्ष की अवस्था में उसने 'कीलहाऊ' नामक गाँव में स्कूल खोला। प्रारम्भ में इसने यह स्कूल अपने पाँच भतीजों से ही प्रारम्भ किया। इनको खेल द्वारा शिक्षा देना प्रारम्भ किया। पर नौ वर्ष के बाद धनाभाव के कारण स्कूल बन्द कर देना पड़ा। अपने अनुभवों को उसने पुस्तक के रूप में लिखा जिसका नाम "मनुष्य की शिक्षा" (Education of Man) है। इस पुस्तक में उसने 'एकता' के सिद्धान्त से शिक्षा को सम्बन्धित किया।

सन् १८३७ में उसने स्कूल "ब्लैंकेनबर्ग" में खोला। इस स्कूल में उसने खास तौर से छोटे बच्चों की शिक्षा की ओर ध्यान दिया। इस विद्यालय को फ्रोबेल ने बच्चों का बाग बनाया। उसका स्कूल बच्चों के बाग के समान ही लगता था। अतः उसने इसलिए 'किंडर गार्टन' शब्द का प्रयोग किया। यह जर्मनी भाषा का शब्द है। इसका अर्थ है किंडर=बच्चों का, गार्टन=बाग, अर्थात् बच्चों का बाग, बच्चों का उद्यान या बालोद्यान।

फ्रोबेल की विचारधारा :—

(१) **विश्व की अनेकता में एकता**—फ्रोबेल हमारे भारतीय वेदान्त के दर्शन की तरह सम्पूर्ण विश्व में 'एकता' मानता है। ईश्वर, जीव और प्रकृति में आधारभूत तत्व 'एक' ही है। यही 'एकता' ईश्वर है। संसार में सभी वस्तुयें पृथक्-पृथक् दिखाई देती हैं पर सब में वही परमात्मा मूलभूत रूप में व्याप्त है। जैसे मेज, कुर्सी, डेस्क, बेंच, दरवाजे के किवाड़ (पट) अलग-अलग दिखाई देते हैं पर उनमें भी 'एकता' है। उनका एक तत्व काष्ठ है। शिक्षा का उद्देश्य इसी 'एकता' अर्थात् ईश्वरत्व का बोध कराना है जिससे मनुष्य परमार्थ की ओर अग्रसर हो सके।

(२) **अनेकता का कारण विकास है**—जन्म के समय प्रारम्भिक अवस्था में प्रत्येक वस्तु का एक रूप होता है पर वृद्धि करते-करते उसमें अन्तर आ जाता है। जीव विकास यह बतलाता है कि सृष्टि के आरम्भ में अमीबा नाम का एक जीव था। उसी से भिन्न-भिन्न रूप तथा आकार के प्राणियों का उदय हुआ। यह विकास मनुष्य तक पहुँचा है पर यह विभिन्नता वास्तविक नहीं। सभी जीव एक ही हैं। यही बोध कराना शिक्षा का उद्देश्य है।

(३) **विकास आन्तरिक नियम के अनुसार होता है**—प्रत्येक वस्तु अपने आन्तरिक नियम के अनुसार विकास पाती है। वह विकास पाती हुई 'एकता' की ओर बढ़ रही है। जिस काल में बालक शिक्षा प्राप्त करते हैं वही उनका विकास

काल माना जाना चाहिए। बालक के विकास काल को ध्यान में रखे बिना शिक्षा नहीं दी जा सकती।

(४) विकास क्रमानुसार होता है—जिस तरह पेड़ पौधे स्वतः शनैः शनैः क्रमानुसार बढ़ते हैं, उन्हें खींच कर नहीं बढ़ाया जा सकता उसी प्रकार बालक का विकास भी स्वतः क्रमानुसार होता है। यह शारीरिक वृद्धि 'आभ्यन्तरिक क्रिया' है। जैसे आम के छोटे पौधे में आम नहीं लगते वरन् समय आने पर लगते हैं उसी प्रकार समय आने पर ही बालक चलता है, बोलता है। अतः अध्यापक का कार्य यह है कि बालक की इस वृद्धि को समझे। उसके अनुकूल समय की पहचान करे तथा उसी के अनुकूल शिक्षा प्रदान करे।

(५) आभ्यन्तर गति बालक की क्रियाशीलता है—बालक क्रियाशील रहता है और उसी क्रियाशीलता द्वारा उसके विकास का पता लगता है। यह आभ्यन्तर गति अकेलेपन में सुस्त रहती है। इसके विकास का साधन समाज है। कक्षा में बालक दूसरे साथियों से उत्तेजना पाता है और क्रियाशील होता है। शिक्षक को इसी क्रियाशीलता का उपयोग करना चाहिये।

(६) खेलों की आवश्यकता—बालक स्वभाव से ही खेल-प्रिय होता है अतः उसकी खेल प्रवृत्ति को शिक्षा का माध्यम बनाना चाहिए।

(७) ज्ञानेन्द्रियों की शिक्षा—बालकों की ज्ञानेन्द्रियों को भी सबल बनाया जाना चाहिए। शिक्षा का कार्य उनके अनुकूल होना चाहिए।

(८) प्रकृति का प्रेम—प्रकृति के सम्पर्क से बालक को ईश्वर का आभास मिलता है। इसलिए बालकों में प्रकृति प्रेम जागृत करना चाहिए।

(९) श्रम का महत्व—रचनात्मक कार्य, आत्मोत्थान तथा समाजोत्थान के लिए श्रम करना अत्यन्त आवश्यक है। अतः बालकों में श्रम की आदत डालनी चाहिए।

(१०) शिक्षक का स्वरूप—फ्रोबेल की दृष्टि में शिक्षक एक माली के रूप में है। जिस प्रकार माली अपने पौधों की आवश्यकता समझ कर खाद, पानी के रूप में उनके विकास में सहयोग देता है उसी प्रकार अध्यापक का कार्य भी उचित समय उचित वस्तुओं, रीतियों तथा वातावरण उत्पन्न कर बालक के विकास में सहयोग देना है।

किंडर गार्टन शिक्षण विधि :—

(१) शाला भवन तथा सजावट—फ्रोबेल का यह मत था कि शिक्षा के लिए उचित वातावरण होना चाहिए। इसके लिए शाला भवन साफ सुथरा तथा अच्छे ढंग से बना हुआ होना चाहिए। प्रत्येक कमरे में दीवारों पर सुन्दर तस्वीरें, उपवन, खेत, खलिहान, रेगिस्तान आदि के दृश्य लटकाये जाने चाहियें। अध्यापक की मेज पर गमले होने चाहियें। अलमारियों में लड़कों के खिलौने तथा उनकी बनाई हुई चीजें रखी हुई होनी चाहियें। तात्पर्य यह है कि पूर्णतया सजावट का वातावरण होना चाहिए।

(२) दैनिक कार्यक्रम का प्रारम्भ—शाला के दैनिक कार्य प्रारम्भ होने के समय बालक अपनी-अपनी कक्षाओं से प्रार्थना स्थल पर मार्च करते हुए लाये जाने चाहियें। यह मार्चिंग संगीत के साथ होगा। संगीत केवल एक स्थान पर बजता रहेगा। उसी के अनुसार मार्च करते हुए बालकों को लाना चाहिए। फिर सामूहिक प्रार्थना की जानी चाहिए। प्रार्थना के बाद बालकों को आपस में मिलने, बातचीत करने का अवसर दिया जाना चाहिए। उन्हें परस्पर सम्यतापूर्वक नमस्कार करना सिखाना चाहिए। फिर उन्हें जीवन चरित्र की कहानी, हितोपदेश की कहानी या धर्म सम्बन्धी कहानी सुनानी चाहिए। तत्पश्चात् कक्षाओं में भेज दिया जाना चाहिए।

(३) उपहार—कक्षाओं में बालक उनके लिए जुटाई गई सामग्री से खेलेंगे। फ्रोबेल ने इस सामग्री का नाम उपहार रखा है। बालक इस सामग्री को पाकर बड़े प्रसन्न होते हैं। ये उपहार २० प्रकार के होते हैं जिनमें से सात प्रकार के मुख्य हैं। ये उपहार बेलनाकार (Cylinder), गोल (Sphere) और घन (Cube) के आकार के होते हैं।

(क) प्रथम उपहार—इसमें ६ मुलायम ऊन की गोल गेंदे होती हैं जिनमें से प्रत्येक का रंग क्रमशः लाल, पीला, नारंगी, बैंजनी, हरा, नीला होता है। इनसे जब बालक खेलता है तब उसके शरीर का विकास उचित रीति से होता है, उसे रंग रूप, गति, स्पर्श और दिशा का ज्ञान होता है।

(ख) द्वितीय उपहार—यह लकड़ी का एक बेलनाकार, गोल तथा घन की शकल का होता है।

(ग) तीसरा उपहार—यह एक बड़ा घन होता है जो आठ बराबर के छोटे घनों से मिलकर बनता है। इससे बालक को एक के अनेक भागों का ज्ञान होता है तथा अनेक की एकता का ज्ञान होता है। इनसे वह मेज, कुर्सी, चौकी आदि बनाता है तथा उनसे संख्या भी सीखता है।

(घ) चौथा उपहार—यह भी एक बड़ा घन होता है जो आठ पट्टियों से बनता है। इनकी सहायता से बालक विभिन्न वस्तुओं को बनाता है जिससे वह नवीन बातें सीखता है।

(ङ) पाँचवां उपहार—यह भी बड़ा घन होता है जो २७ छोटे घनों से मिलकर बनता है। इनमें से ३ घनों को दो-दो भागों में तथा ३ घनों को चार-चार भागों में बाँटा जा सकता है। इन टुकड़ों से बालक अनेक वस्तुयें बनाता है। इसमें विभिन्न आकारों एवं संख्या का ज्ञान होता है।

(च) छठा उपहार—यह एक ऐसा बड़ा घन होता है जिसमें १८ बड़े तथा ...टे विषम चतुर्भुज होते हैं। इनसे भी तरह-तरह की शक्लें बनाना सीखता और ज्ञान करता है।

सातवां उपहार—दो बक्सों में त्रिभुज, चतुर्भुज, वर्ग आदि की शक्ल होते हैं।

(ज) अन्य वस्तुयें—इनके अतिरिक्त अनेक वस्तुयें होती हैं जैसे लचकदार पटरियां, छल्ले, डोर, स्लेट, पेंसिल, रंग का बाक्स, कागज, चाक, मिट्टी, रेत, कपड़े की पट्टियां आदि होती हैं।

इन सभी उपहारों का वर्गीकरण तथा क्रम बालक के विकास के अनुसार है। साथ ही बालक जब नवीन कार्य करता है तो उसमें पहले किये गए कार्य की स्वतः आवृत्ति हो जाती है। इन उपहारों से रेखागणित, विभिन्न आकृतियों तथा कलात्मक रचना का ज्ञान सरलता से प्राप्त हो जाता है।

(४) मातृ खेल और शिशु गीत—फ्रोबेल ने 'मातृ खेल और शिशु गीत' द्वारा बालक के अंगों का तथा ज्ञानेन्द्रियों का विकास सरलतापूर्वक किया जाना बताया। इसमें गीतों, खेलों और चित्रों का ऐसा संग्रह है जो बालक और माता में एकता स्थापित करता है। अध्यापिका गीत गाती जाती है तथा उसी के अनुकूल अंगों का संचालन करती है। बालक उसका अनुसरण करता है। इस प्रकार बालक का भाषा, शिक्षण एवं व्यायाम होता है। संगीत से बालक का भावात्मक विकास होता है।

(५) बालक की क्रियालीनता—इन उपहारों, खेलों, गीतों आदि से बालक व्यापार में लगा रहता है। कुछ न कुछ क्रिया में लीन रहता है। यह क्रियालीनता बालक का अनुकूल मनोविकास करती है।

(६) अन्य खेल—शाला में कम से कम दो बार स्वतन्त्रतापूर्वक खेलने का अवसर दिया जाता है। जलपान की भी व्यवस्था की जाती है।

(७) अन्य पाठ्य विषय—फ्रोबेल ने लिखा है "मानवीय शिक्षा में धर्म, प्रकृति और भाषा का ज्ञान और सौन्दर्यानुभूति होनी चाहिए।" इससे स्पष्ट है कि धर्म, प्राकृतिक विज्ञान, भाषा और कला आदि विषय बालक को पढ़ाए जाने चाहिये। इसके साथ ही गणित, संगीत, भूगोल, खिलौने बनाना, बागवानी आदि भी सिखाये जाने चाहियें।

किंडर गार्टन एवं बुनियादी शिक्षा :—

दोनों प्रकार की शिक्षा प्रणालियों में समानतायें भी हैं तथा असमानतायें भी हैं। असमानतायें निम्नलिखित हैं :—

(१) दोनों में बालक का स्वाभाविक विकास करना प्रमुख है।

(२) दोनों बालक की रचनात्मक क्रियाशीलता का उसके विकास में उपयोग करती हैं।

(३) बालक के लिए अनुकूल वातावरण उपस्थित करना दोनों का ध्येय है। दोनों में बालक प्रत्यक्ष ज्ञान और अनुभव प्राप्त करता है।

(४) दोनों पुस्तकीय शिक्षा का बहिष्कार करती हैं और अव्यावहारिक शिक्षा का दोनों में ही स्थान नहीं है।

(५) दोनों शिक्षा का सम्बन्ध समाज से जोड़ती हैं। दोनों प्रकार की शिक्षा बालक का व्यक्तिगत विकास करते हुए उसे समाज का उपयोगी नागरिक बनाती हैं।

(६) दोनों प्रणालियाँ खेलों द्वारा शिक्षा प्रदान करती हैं।

(७) दोनों में बालक की स्वतन्त्रता पर बल दिया गया है।

(८) दोनों में प्रकृति अध्ययन पर जोर दिया जाता है।

असमानतायें निम्नलिखित हैं :—

(१) किंडर गार्टन के रचनात्मक कार्य सप्रयोजन नहीं होते। बुनियादी शिक्षा में रचनात्मक कार्य सप्रयोजन होते है।

(२) किंडर गार्टन का आधार आदर्शवाद है तथा विभिन्नता में एकता है। बुनियादी शिक्षा का आधार यथार्थवाद है तथा वर्तमान समस्याओं को सुलझाने का हल ढूंढ़ना ही उसका ध्येय है।

(३) किंडर गार्टन का आध्यात्मिक दृष्टिकोण है। बुनियादी शिक्षा में आध्यात्मिक दृष्टिकोण के साथ-साथ आर्थिक भी।

(४) किंडर गार्टन केवल आन्तरिक विकास पर बल देती है पर बुनियादी शिक्षा श्रम के सम्मान, हस्तकला तथा व्यावसायिक दृष्टिकोण पर बल देती है।

(५) किंडर गार्टन में स्वावलम्बन को कोई स्थान नहीं। बुनियादी शिक्षा बालक का सर्वांगीण विकास तथा आर्थिक स्वावलम्बन चाहती है।

(६) किंडर गार्टन केवल आन्तरिक विकास पर ही शिक्षा को टिकाती है पर बुनियादी शिक्षा हस्तकार्य द्वारा ज्ञानार्जन कराती है।

(७) किंडर गार्टन केवल खेल द्वारा शिक्षा प्रदान करने को महत्व देती है। बुनियादी शिक्षा रुचि के अनुसार शिक्षा देती है।

(८) किंडर गार्टन में समवायी शिक्षा को स्थान नही बुनियादी शिक्षा समवाय प्रधान है।

(९) किंडर गार्टन का पाठ्यक्रम बालक केन्द्रित होते हुए आध्यात्मिक दृष्टिकोण लिए हुए है। बुनियादी शिक्षा का पाठ्यक्रम बालक केन्द्रित होने के साथ-साथ आध्यात्मिक तथा आर्थिक दृष्टिकोणों को लिए हुए है।

(१०) किंडर गार्टन में शिक्षक माली के समान है। बुनियादी शिक्षा में शिक्षक राष्ट्रनिर्माता का रूप धारण करता है।

(११) किंडर गार्टन केवल छोटे बालकों की शिक्षा तक सीमित है। बुनियादी शिक्षा में मानव की सभी आवश्यकताओं के लिए शिक्षा की व्यवस्था है।

सारांश

प्रस्तावना—पेस्टालाजी की शिक्षा के माध्यमिक पक्ष पर उसके शिष्य हरबार्ट ने जोर दिया तथा प्रारम्भिक शिक्षा पर फ्रोबेल ने जोर दिया।

फ्रोबेल का जन्म—२१ अप्रैल, सन् १७८२ के दिन जर्मनी के गाँव ओवर वेस बेक में जन्म हुआ। इसकी शिक्षा व्यवस्था ठीक न हो सकी। यह जंगलों में भटकता था। विश्वविद्यालय में प्रवेश किया पर गरीबी के कारण छोड़ देना

पड़ा। नौकरी के लिए इधर-उधर भटकता रहा। अन्त में एक स्कूल में अध्यापन कार्य मिल गया।

फ्रोबेल का अध्यापन कार्य—इसने पेस्टालाजी के ग्रन्थों का अध्ययन किया। उसके साथ रहकर उसकी शिक्षण पद्धति सीखी। इसने पेस्टालाजी की शिक्षा में एकता के सिद्धान्त का प्रभाव पाया। इसने "कीलहाउ" गाँव में स्कूल खोला। खेल द्वारा शिक्षा देना शुरू किया। अपने अनुभवों को 'मनुष्य की शिक्षा' नामक ग्रन्थ में लिखा। फिर उसने ब्लेकेनबर्ग में स्कूल खोला जिसको 'किंडर गार्टन' अर्थात् 'बालकों का बाग' नाम दिया।

फ्रोबेल की विचारधारा—(१) विश्व की अनेकता में एकता--संसार की सभी वस्तुओं में एक रूप से ईश्वर विद्यमान है। (२) अनेकता का कारण विकास—प्रारम्भ में जन्म के समय प्रत्येक वस्तु का एक रूप होता है। वृद्धि के साथ उसमें अन्तर आ जाता है। (३) विकास आन्तरिक नियम के अनुसार होता--प्रत्येक वस्तु का आन्तरिक स्वाभाविक विकास होता है। (४) विकास क्रमानुसार होता है—पेड़ की तरह बालक का विकास क्रमानुसार होता है, उसे खींचकर बढ़ाया नहीं जा सकता। (५) आभ्यन्तरगत बालक की क्रियाशीलता है—बालक का आन्तरिक विकास उस की क्रियाशीलता से जाना जाता है। (६) खेलों की आवश्यकता—बालक स्वभाव से ही खेल-प्रिय होता है। (७) ज्ञानेन्द्रियों की शिक्षा—बालक की ज्ञानेन्द्रियों को सफल बनाया जाना चाहिए। (८) प्रकृति प्रेम—प्रकृति से बालक का सम्पर्क बनाए रखना चाहिए। (९) श्रम का महत्व—बालक में श्रम की आदत डालनी चाहिए। (१०) शिक्षक का स्वरूप—शिक्षक एक माली के समान है।

किंडर गार्टन शिक्षण विधि—(१) शाला भवन तथा सजावट—भवन स्वच्छ तथा सजा हुआ होना चाहिए। (२) दैनिक कार्यक्रम का प्रारम्भ—प्रार्थना स्थल पर मार्च करते हुए जाना, प्रार्थना करना, परस्पर मिलना-जुलना आदि। (३) उपहार—तत्पश्चात् कक्षा में उपहारों से खेलना। ये उपहार सात प्रकार के प्रमुख हैं। ये उपहार गोल, बेलनाकार तथा घन के आकार के होते हैं। (४) मातृ खेल और शिशु गीत—संगीत और खेल द्वारा शिक्षा दी जानी चाहिए। (५) बालक की क्रियाशीलता—बालक उपहारों से क्रिया व्यापार में लग जाता है। (६) अन्य खेल—शाला में अन्य खेलों का भी प्रबन्ध होता है। (७) अन्य पाठ्य विषय—धर्म, प्रकृति, भाषा, कला, गणित, संगीत, भूगोल, बागवानी आदि सिखाये जाते हैं।

किंडर गार्टन एवं बुनियादी शिक्षा—समानताओं की अपेक्षा असमानतायें अधिक हैं। किंडर गार्टन केवल प्रारम्भिक शिक्षा व्यवस्था है बुनियादी शिक्षा में सभी अवस्थाओं के लिए व्यवस्था है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

(१) फ्रोबेल की विचारधारा पर प्रकाश डालते हुए उसकी शिक्षा कार्य में उपयोगिता बताइये।

(२) किंडर गार्टन तथा बुनियादी शिक्षा की समानताओं एवं असमानताओं पर प्रकाश डालिये।

पृथक् विकास हुआ। उनमें व्यक्तिगत विभिन्नतायें प्रस्फुटित हुईं। शिक्षा का कार्य यह है कि बालक का व्यक्तिगत विकास करे। अध्यापक का कर्तव्य है कि वह बालक को शक्तिशाली व्यक्तित्व वाला बनावे।

(२) समाज अथवा राष्ट्र की इकाई व्यक्ति है—बालक के शक्तिशाली व्यक्तित्व निर्माण पर ही समाज अथवा राष्ट्र की उन्नति निर्भर है। बालक ही बड़ा होकर समाज की इकाई बनता है। समाज को अच्छा बनाने के लिए बालक पर उसकी बाल्यावस्था से ही ध्यान देना आवश्यक है। उसके व्यक्तित्व के अनुकूल विकास किया जाना चाहिए।

(३) व्यक्तिगत विकास के लिए स्वतन्त्रता आवश्यक है—बालक के स्वाभाविक विकास के लिए उसे स्वतन्त्रता दी जानी जरूरी है। स्वतन्त्रता से तात्पर्य है बालक की मूल और सामान्य प्रवृत्तियों के माध्यम से शिक्षा प्रदान करना।

(४) शिक्षा और प्रकृति का सम्बन्ध—बालक की शिक्षा में प्रकृति को स्थान दिया जाना चाहिए। तभी बालक आध्यात्मिकता की ओर प्रवृत्त हो सकेगा। बालक को प्रकृति की गोद में ही रखना चाहिए तभी वह पौधे के अनुसार स्वाभाविक विकास पा सकेगा।

(५) आत्म शिक्षण—बालक स्वयं ही सीखता है। उसका सीखने का स्वभाव है। समय तथा शारीरिक क्षमता के अनुकूल चलना, फिरना, बोलना, सोचना, खेलना, कार्य करना आदि सभी बातें स्वयं ही सीखता है। उसकी भूलें स्वयं ही उसे सुधारनी जाती हैं। इसी आधार पर मांटेसरी ने ऐसे उपकरण बनाए जिनसे बालक स्वयं अपनी भूल सुधार लेता है। अध्यापिका को हस्तक्षेप नहीं करना पड़ता। इससे बालक में आत्म-विश्वास एवं आत्म-निर्भरता बढ़ती है।

(६) खेल तथा क्रिया द्वारा शिक्षण—मांटेसरी ने लिखा है "खेल प्रकृति का शिक्षा देने का साधन है और बालक की शिक्षा उसकी प्रकृति के अनुसार होनी चाहिए।" इसी के आधार पर उसने उपकरणों का निर्माण किया है। बालक उन खिलौनों से खेलते हैं। इस पद्धति में काल्पनिक खेलों को स्थान नहीं। खेल यथार्थ होना चाहिये।

(७) व्यावहारिक जीवन की कुशलता—शिक्षा द्वारा बालक के सामने ऐसा आदर्श कभी भी प्रस्तुत नहीं करना चाहिये, जिसे वह प्राप्त न कर सके। शिक्षा तो बालक को जीवन कला सिखाती है। अतः इस पद्धति द्वारा मांटेसरी ने बालक को शिष्टाचार, विनय, सफाई, चौका लगाना, भोजन परोसना, कचरा बटोर कर उचित स्थान पर डालना, वेष भूषा का ठीक प्रयोग आदि सिखाने पर बल दिया। अर्थात् शिक्षा का व्यावहारिक स्वरूप सामने रखा।

(८) नैतिकता का विकास—बालक में नैतिकता का विकास करने के प्रयत्न करने चाहियें। मांटेसरी ने लिखा है, "छोटे बच्चों की पढ़ाई के लिए मेरी विधि का वास्तविक उद्देश्य यही (नैतिकता उत्पन्न करना) है और इसी कारण से यह कुछ ऐसे सिद्धान्तों पर आधारित है और कुछ ऐसे विशेष ढंगों का प्रयोग इसमें होता है

जो ग्राम तौर से प्रचलित नहीं हैं।"

मांटेसरी शिक्षण पद्धति—*मांटेसरी की विचारधारा से यह स्पष्ट है कि* व्यक्तित्व को सफल बनाने के लिए बालक का शारीरिक, मानसिक तथा विचारात्मक विकास आवश्यक है। अतः इन तीनों की पूर्ति के लिए निम्न प्रकार के साधन निश्चित किए :—

(क) कर्मेन्द्रियों की शिक्षा।
(ख) ज्ञानेन्द्रियों की शिक्षा।
(ग) भाषा की शिक्षा।
(घ) *अन्य विषयों की शिक्षा एवं अभ्यास।*

(क) कर्मेन्द्रियों की शिक्षा—शरीर का विकास एवं मन का विकास कर्मेन्द्रियों पर आधारित है। अतः कर्मेन्द्रियों की शिक्षा ही शिक्षा की सबसे पहली सीढ़ी है। कर्मेन्द्रियों की शिक्षा के लिए अंगों का संचालन व्यवस्थित रूप से तथा पर्याप्त अभ्यास के साथ कराया जाना चाहिए। प्रारम्भ में प्रत्येक अंग अपना विशिष्ट कार्य करने में असमर्थ होते हैं। अंगों का निरर्थक संचालन करते हैं। पर यह निरर्थक संचालन भी आवश्यक है। क्योंकि इसके आधार पर उन्हें सार्थक-संचालन का अभ्यास होता है। *साथ ही अंगों के समायोजन की क्रिया भी वे सीखते हैं जैसे हाथ, पाँव, आँखों तथा* मुंह से एक साथ काम लेना आदि। कर्मेन्द्रियों की शिक्षा के लिए 'बालकों के घर' (स्कूल) में निम्नलिखित अभ्यास कराये जाते हैं :—

(१) दैनिक जीवन के अनिवार्य कार्य—अच्छे ढंग से चलना, फिरना, उठना, बैठना, वस्तुओं को उठाना, वापस रखना आदि।

(२) अपने शरीर की सफाई—हाथ, पाँव, मुंह धोना, छोटे व साधारण कपड़े धोना, उन्हें सुखाना, छोटे बरतन साफ करना आदि।

(३) खेल कूद—*कक्षा में विभिन्न वस्तुओं से खेलना, बगीचे में खेलना,* फर्श पर रेखाएं खींचकर उन पर एक साथ कदम मिलाकर चलना आदि।

(४) बागवानी—बगीचे में पौधे लगाना, पानी पिलाना, उनको सवारना आदि।

(५) घर गृहस्थी का प्रबन्ध—खाना परोसना, वस्तुओं का ठीक प्रबन्ध करना आदि।

(६) हाथ से काम करने की कला—कपड़े पहनना, बटन लगा लेना, खिलौने *बनाना, घरौंदे (मकान) बनाना आदि।*

(७) अंगों का कलात्मक परिचालन—संगीत के साथ-साथ भाव प्रदर्शन हेतु अंगों का परिचालन आदि।

मांटेसरी शाला में कर्मेन्द्रियों की शिक्षा के लिए ये कार्य कराये जाते हैं। धीरे-धीरे बालक इनमें इतनी दक्षता प्राप्त कर लेते हैं कि ढाई वर्ष का बच्चा भी भरे हुए चाय के प्याले में से चाय नहीं गिरने देता तथा कप तश्तरी को नहीं तोड़ता। तात्पर्य यह है कि कर्मेन्द्रियों के विकास के लिए घरेलू कार्यों की शिक्षा दी जाती है।

सभी काम बालक स्वयं करते हैं अर्थात् स्वयं सीखते हैं। सफलता मिलने पर इनको बड़ी प्रसन्नता मिलती है।

(ख) ज्ञानेन्द्रियों की शिक्षा—बालक के पूर्ण विकास के लिए ज्ञान प्राप्त करना अत्यन्त आवश्यक है। ज्ञान शरीर की ज्ञानेन्द्रियों द्वारा प्राप्त किया जाता है। ये ज्ञानेन्द्रियाँ पाँच हैं। आँख से रंग, रूप, आकार का ज्ञान होता है। कान से ध्वनि, शब्द, लय, ताल का ज्ञान होता है। नाक से गंध का ज्ञान होता है। जीभ से स्वाद का ज्ञान होता है। त्वचा से स्पर्श का ज्ञान होता है। मांटेसरी प्रणाली में प्रत्येक ज्ञानेन्द्रिय के विकास के लिए प्रयास किया गया है। इसके लिए अनुकूल उपकरण बनाए गये हैं। इन उपकरणों में से कुछ ये हैं—क्रम से छोटे से बड़े लकड़ी या धातु के टुकड़े जो उनके अनुकूल किए गए एक लकड़ी के छेदों में फिट हो जावें। विभिन्न आकारों के रंग के टुकड़े। रेखागणित के आकार के टुकड़े जैसे वृत्त, त्रिभुज, आयत, वर्ग, चतुर्भुज आदि। खुरदरी तथा चिकनी सतह वाली टिकियाँ, विभिन्न वजन वाली टिकियाँ, घटियाँ, बेलनाकार वस्तुएँ आदि। इन उपकरणों से विभिन्न इन्द्रियों का ज्ञान इस प्रकार प्राप्त होता है :—

(१) स्पर्शेन्द्रिय का अभ्यास—चिकनी तथा खुरदरी सतह वाले आयताकार टुकड़ों को छूकर चिकने और खुरदरे सतह का ज्ञान प्राप्त करना। सूती, रेशमी कपड़ों की कठोरता तथा कोमलता का ज्ञान प्राप्त करते हैं। वस्तुओं को उठाकर हल्के व भारी का ज्ञान प्राप्त करते हैं। ठंडी व गर्म वस्तुओं को छूकर शीतलता व गर्मी का अनुभव करते हैं।

स्पर्शेन्द्रिय की शिक्षा के समय आवश्यकतानुसार बालक की आँखों पर पट्टी बाँध दी जाती है क्योंकि एक बार में केवल एक ही इन्द्रिय का ज्ञान कराया जाता है। भूल को समझने के लिए आँखों से पट्टी हटाने को कहा जाता है।

(२) नेत्रेन्द्रिय की शिक्षा—दो बक्सों में विभिन्न रंगों की टिकियाँ होती हैं। बालक से एक बक्स में से एक रंग की टिकिया का दूसरे बक्स में से दूसरे रंग की टिकिया का जोड़ा मिलवाया जाता है। रेखागणित के विभिन्न आकार के टुकड़ों को उन्हीं के अनुकूल बने एक पटिए पर के छेदों में फिट कराया जाता है। इस प्रकार रंग की पहचान, निरीक्षण, विवेक, शक्ति तथा तुलना करने की शक्ति का अभ्यास होता है।

(३) कर्णेन्द्रिय की शिक्षा—कर्णेन्द्रिय की शिक्षा के लिए संगीत शिक्षा तथा ध्वनि की पहचान कराई जाती है। कुछ ऐसे उपकरण बनाये जाते हैं जिनसे ध्वनि उत्पन्न की जा सकती है। एक-सी ध्वनि उत्पन्न करने वालों को साथ-साथ जोड़ा बनाकर रखवाया जाता है।

(४) ज्ञानेन्द्रिय शिक्षा के लिए ध्यान देने योग्य बातें—

(१) पढ़ाते समय बालकों को ऐसा अभ्यास कराना चाहिए कि आकार का पूरा ज्ञान हो जाये और बालक किसी आकार को देखकर शीघ्र बतादे कि यह त्रिभुज है या वर्ग है या आयत आदि है।

(२) बालकों में तुलनात्मक शक्ति उत्पन्न करनी चाहिए। इसके लिए वस्तुओं के आकार, भार व लम्बाई में समानता तथा असमानता का बोध कराना चाहिए।

(३) एक समय में एक ही ज्ञानेन्द्रिय की शिक्षा होनी चाहिए। जैसे एक बालक आँख से काम ले रहा हो तो दूसरी ज्ञानेन्द्रिय का प्रयोग न करे।

(ग) भाषा की शिक्षा—भाषा की शिक्षा तो बालक के सुनकर समझने का ज्ञान प्राप्त करने के दिन से ही प्रारम्भ हो जाती है। इन्द्रिय साधना के समय बालक चिकना, खुरदरा, कोमल, कठोर, छोटा, बड़ा, कड़वा, मीठा बोलता है। इसी से उसका शब्द भण्डार बढ़ता है। भाषा की शिक्षा के प्रमुख दो ही अंग हैं—पढ़ना और लिखना। मांटेसरी का कथन है कि पहले लिखना सिखाना चाहिए।

चार वर्ष की अवस्था से बालक को लिखने का अभ्यास कराने के लिए अंगुलियों की साधना आवश्यक है। स्लेट पर लिखने के लिए स्लेट पेंसिल को ठीक ढंग से पकड़ना आना चाहिए। इसके अभ्यास के लिए स्लेट पर त्रिभुज बनाकर उसकी बीच की जगह को बालक से भरवाना चाहिए। इससे उसकी अंगुलियाँ सधती हैं। इसके साथ ही गत्ते के बने हुए अक्षर पर बालक को धीरे-धीरे अंगुली घुमाने को कहा जाना चाहिए। उसको इस क्रिया के समय अध्यापिका उसी अक्षर का शुद्ध उच्चारण करती रहेगी। इस आवृत्ति से बालक स्वयं लिखना व उच्चारण सीख जायेगा क्योंकि इस कार्य के समय उसके नेत्र कान तथा हाथ तीनों ही कार्य करते हैं।

(घ) अन्य विषयों की शिक्षा एवं अभ्यास—

(१) गणित की शिक्षा—बालकों को उपकरण गिन कर संख्या का ज्ञान कराया जाता है। बराबर लम्बाई के दस डण्डों का प्रयोग भी किया जाता है। ये डण्डे इस प्रकार भी जोड़े जा सकते हैं कि एक डण्डा बन जाये। इन डण्डों को जोड़ कर तथा उसमें से निकाल कर जोड़ या बाकी का अभ्यास कराया जाता है।

(२) एकाग्रता बढ़ाने का अभ्यास—इस अभ्यास के लिए मौन साधना कराई जाती है। बच्चे एक साथ बैठकर मौन हो जाते हैं। उन्हें आँखें बन्द कराकर ऐसा शान्त करा दिया जाता है कि घड़ी की टिक-टिक कमरे में स्पष्ट सुनाई देने लगती है। ऐसा करने से बालकों को आनन्द मिलता है। उसकी आत्मा का विकास होता है। सहयोग की भावना बढ़ती है। शान्ति से बोलने की आदत बनती है।

मांटेसरी पद्धति एवं बुनियादी शिक्षा—दोनों पद्धतियों में कई बातों में समानताएँ हैं तथा असमानताएँ है।

समानताएँ निम्नलिखित हैं—

(१) दोनों स्वानुभव द्वारा बालक का विकास चाहती हैं।

(२) दोनों पद्धतियाँ बालक को शिक्षा का केन्द्र बनाती है।

(३) दोनों व्यावहारिकता की शिक्षा देती हैं।

(४) दोनों में मनोवैज्ञानिकता पर पूर्ण बल दिया गया है।

(५) दोनों बालक का पूर्ण शक्तिशाली विकास चाहती है।

(६) दोनों बालक की स्वतन्त्रता का ध्यान रखती हैं।

(७) शाला मे घर का वातावरण उत्पन्न करती है।

असमानताएँ निम्नलिखित हैं—

(१) माटेसरी पद्धति केवल व्यक्तिगत विकास का ध्यान रखती है। सामूहिक कार्य करने की योजना न होने से सामाजिकता की ओर ध्यान नही देती। बुनियादी शिक्षा व्यक्तिगत तथा सामाजिक दृष्टिकोण से बालक का सर्वाङ्गीण विकास करती है।

(२) माटेसरी पद्धति बालक को स्वतन्त्रता प्रदान तो करती है पर यह सीमित स्वतन्त्रता है। उसे इच्छानुसार कल्पना करने, घूमने-फिरने, खेलने-कूदने की स्वतन्त्रता नही होती। वह उपकरणो से भी बँधा हुआ है अर्थात् निश्चित उपकरण का निश्चित हल होने से वह इच्छानुकूल अन्य विधि से उपकरण का उपयोग नहीं कर सकता। पर बुनियादी शिक्षा मे स्वतन्त्रता सीमित नही है।

(३) माटेसरी पद्धति २ या ३ से ६ वर्ष तक के शिशुओ की ही शिक्षा है अर्थात् शैशवावस्था ही इसका शिक्षा-काल है। आगे की शिक्षा की कोई रूपरेखा नही। पर बुनियादी शिक्षा गर्भाधान से लेकर जीवन भर की शिक्षा का प्रबन्ध करती है।

(४) माटेसरी पद्धति कृत्रिम वातावरण मे रखती है पर बुनियादी शिक्षा स्वाभाविक प्राकृतिक वातावरण मे रख कर बालक का विकास करती है।

(५) माटेसरी पद्धति अत्यन्त खर्चीली है। बुनियादी शिक्षा अधिक खर्चीली नही।

(६) माटेसरी पद्धति विदेशी देन है तथा भारतीय संस्कृति के पूर्णतः अनुकूल नही होती। बुनियादी शिक्षा भारतीय शिक्षा पद्धति होने से यहाँ की संस्कृति के अनुकूल है।

(७) माटेसरी पद्धति इन्द्रिय ज्ञान पर बल देती है, मूल प्रवृत्तियां और भावनाओं का विकास नही करती। बुनियादी शिक्षा बालकों को रुचि एवं अवस्था के अनुसार ज्ञान प्राप्त कराती है।

(८) माटेसरी पद्धति मे समवाय को कोई स्थान नहीं। बुनियादी शिक्षा समवाय प्रधान है।

(९) माटेसरी पद्धति किसी उद्योग को नही सिखाती और न ही स्वावलम्बन के लिए तैयार करती है। बुनियादी शिक्षा उद्योग सिखा कर बालक को स्वावलम्बी बनाती है।

(१०) माटेसरी पद्धति शिक्षा के उपकरणों की शिक्षा है। बुनियादी शिक्षा हस्तकला की शिक्षा है।

सारांश

प्रस्तावना—किंडर गार्डन प्रणाली के अनुसार ही मेरिया मांटेसरी ने शिशुओं के लिए मांटेसरी पद्धति बनाई।

मांटेसरी का जीवन व कार्य—जन्म इटली में सन् १८७० में हुआ था। इसने डाक्टरी पास की। मन्द बुद्धि बच्चों का इलाज शिक्षा के प्रयोग से करने में सफलता पाई। इसने एक स्कूल चलाया जिसका नाम 'बच्चों का घर रखा'। सन् १९३९ में भारत आईं। यहां कई अध्यापक अध्यापिकाओं को ट्रेनिंग दी।

मांटेसरी की विचारधारा—(१) बालक के व्यक्तित्व का विकास—बालक का व्यक्तिगत विकास शिक्षा द्वारा किया जाना चाहिए। (२) समाज अथवा राष्ट्र की इकाई व्यक्ति है—व्यक्तिगत विकास से ही समाज या राष्ट्र उन्नति कर सकता है। (३) व्यक्तिगत विकास के लिए स्वतन्त्रता आवश्यक है—स्वाभाविक विकास बालक को स्वतन्त्रता देने पर ही हो सकता है। (४) शिक्षा और प्रकृति का सम्बन्ध—बालक की शिक्षा प्रकृति की गोद में होनी चाहिए। (५) स्वयं शिक्षण—बालक स्वानुभव से सीखता है। (६) खेल तथा क्रिया द्वारा शिक्षण—उपकरणों द्वारा खेल खिलाना चाहिए। (७) व्यावहारिक जीवन की कुशलता—व्यावहारिक जीवन की शिक्षा दी जानी चाहिए। नैतिकता की शिक्षा—नैतिकता की शिक्षा दी जानी चाहिए।

मांटेसरी शिक्षण पद्धति—(क) कर्मेन्द्रियों की शिक्षा—कर्मेन्द्रियों की शिक्षा ही शिक्षा की पहली सीढ़ी है। (ख) ज्ञानेन्द्रियों की शिक्षा—बालक ज्ञानेन्द्रियों से ज्ञान प्राप्त करता है। बालक को स्पर्शेन्द्रिय, नेत्रेन्द्रिय तथा कर्मेन्द्रिय की शिक्षा दी जानी चाहिए। (ग) भाषा की शिक्षा—पहले लिखना फिर पढ़ना सिखाना चाहिए। (घ) गणित की शिक्षा—उपकरणों को गिनाकर गिनती की शिक्षा दी जा सकती है। और एकाग्रता बढ़ाने का अभ्यास—बच्चों को मौन रहने का समय भी दिया जाना चाहिए।

मांटेसरी पद्धति एवं बुनियादी शिक्षा—दोनों पद्धतियों में समानतायें तथा असमानतायें दोनों ही हैं मांटेसरी केवल शैशवावस्था की ही शिक्षा है पर बुनियादी शिक्षा जीवन-भर की शिक्षा है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

(१) मेरिया मांटेसरी की विचारधारा पर आधारित शिक्षण पद्धति की व्याख्या कीजिए।
(२) मांटेसरी पद्धति एवं बुनियादी शिक्षा पर एक तुलनात्मक निबन्ध लिखिये।

⊙

डाल्टन पद्धति और बुनियादी शिक्षा

प्रस्तावना—शिक्षा के क्षेत्र में जागृति होने तथा विभिन्न प्रकार की प्रणालियों के चलने पर भी शालाओं का वातावरण नीरस ही चला आ रहा था। शालाओं में अध्यापक एवं विषय की प्रधानता थी। बालकों की व्यक्तिगत रुचि का ध्यान नहीं रखा जा रहा था। उनकी स्वतन्त्रता को कोई महत्व नहीं था। अमेरिका में भी शालाओं में ऐसा ही वातावरण उपस्थित था। इसी के सुधार हेतु अमेरिका की महान् शिक्षा शास्त्रिणी कुमारी हेलन पार्खर्स्ट ने एक नई पद्धति निकाली जिसका प्रयोग सर्वप्रथम डाल्टन नगर के हाई स्कूल में करने के कारण इसका नाम डाल्टन पद्धति रखा गया।

हेलन पार्खर्स्ट का जीवन तथा कार्य—कुमारी हेलन पार्खर्स्ट जन्म जात शिक्षिका थीं। सर्वप्रथम उन्हें एक अध्यापकीय शाला में काम करना पड़ा जहाँ यद्यपि पूरी शाला में ४० छात्र ही थे पर वे आठ कक्षाओं में बँटे हुए थे। इस शिक्षिका के सामने यह समस्या आई कि इन सभी कक्षाओं को एक साथ कैसे व्यस्त रखा जाय। यही समस्या डाल्टन प्रणाली का आधार है। वहाँ उसने प्रत्येक छात्र के लिए निश्चित कार्य की योजना बनाई इसके पश्चात् उसने एक हाई स्कूल तथा ट्रेनिंग स्कूलों में काम किया। इटली जाकर माटेसरी के साथ माटेसरी प्रणाली का भली प्रकार अध्ययन किया। उसने भी माटेसरी की तरह अपंग बालकों को पढ़ाने के लिए अपनी योजना का प्रयोग किया। सन् १६२० में डाल्टन नगर के हाई स्कूल में इस विधि का प्रयोग सभी छात्रों के लिए किया। इस विधि को डाल्टन-प्रयोगशाला योजना कहा जाता है। शाला के कमरे प्रयोगशाला होते हैं तथा बालक अनुसंधानक (Experimenter) होता है।

हेलन पार्खर्स्ट की विचारधारा :—

(१) बालक शिक्षा का केन्द्र—कुछ अन्य शिक्षाशास्त्रियों की तरह हेलन पार्खर्स्ट भी शिक्षा को बालक केन्द्रित मानती है न कि अध्यापक केन्द्रित, विषय केन्द्रित या पाठ्य केन्द्रित। शिक्षक तो बालक की रुचि एवं क्षमता के अनुकूल वातावरण उपस्थित कर देता है।

(२) बालक की स्वतन्त्रता—हेलन पार्खर्स्ट का कहना है कि बालक को आन्तरिक प्रकृति के अनुसार कार्य करने की स्वतन्त्रता होनी चाहिए। उन्हें समय अथवा विषय के बन्धनों में नहीं बाँधना चाहिए। स्वतन्त्रता देने से उच्छृंखलता नहीं आती वरन् स्वतन्त्रता न देने से विरोध, विद्रोह और उच्छृंखलता उत्पन्न होती है। स्वतन्त्रता मिलने पर तो वह स्वतः अपने आपको बन्धन में बाँधने लगता है। अतः कक्षा में स्वतन्त्रतापूर्वक घूमने, अध्यापक से सलाह लेने तथा इच्छित विषय पढ़ने की बालक को पूर्ण स्वतन्त्रता होनी चाहिए।

(३) व्यक्तिगत भेद के अनुसार शिक्षा ग्रहण करने का अवसर—तीव्र बुद्धि, सामान्य बुद्धि तथा मन्द बुद्धि सभी प्रकार के बालकों को एक साथ कक्षा में बिठाकर पढ़ाना उनके प्रति अन्याय करना है। यह क्रिया अमनोवैज्ञानिक है। पढ़ाने में तो तीव्र बुद्धि बालकों को तीव्र गति से बढ़ने का अवसर दिया जाना चाहिए और मन्द बुद्धि बालकों को मन्द गति से। तभी व्यक्तिगत समानता के अनुकूल वे शिक्षा ग्रहण कर सकेंगे।

(४) सहयोग की भावना—व्यक्तिगत शिक्षा के साथ-साथ बालकों में सामूहिक जीवन की आदत डालना भी आवश्यक है जिससे परस्पर सहयोग की भावना उत्पन्न होगी। इसलिए शाला में नित्य व्यक्तिगत कार्य के अलावा बालक मिलकर काम कर सकें ऐसा वातावरण भी उत्पन्न किया जाना चाहिए, इसी से बालकों को सामाजिक जीवन का भी अनुभव होता रहेगा।

(५) सप्रयोजन अध्ययन—बालकों को पढ़ाया जाता है पर उन्हें यह पता नहीं होता कि उनको पढ़ना आवश्यक क्यों है। अतः बालक के सामने समस्या रखी जानी चाहिए ताकि उसे उसके पढ़ने का लक्ष्य मालूम रहे। ऐसा करने से वह पढ़ने का उत्तरदायित्व समझेगा। उसमें लक्ष्य सिद्धि की जिज्ञासा जागृत होगी। समस्या, प्रश्न और लक्ष्य को सामने देखकर वह उसको हल करने में जुट जाता है।

(६) प्रयोगात्मक दृष्टिकोण—बालक को ज्ञान देना अध्यापक का कार्य नहीं है वरन् बालक के ज्ञान के अनुसंधान में सहयोग देना है। अतः प्रयोग तथा अनुभव के द्वारा ज्ञान प्राप्त कराने की प्रणाली ही श्रेष्ठ प्रणाली है।' इस पद्धति वाली शाला में प्रत्येक विषय की प्रयोगशालाएँ होती हैं जहाँ बालक स्वयं ज्ञान का अनुसन्धान करता है।

(७) विभिन्न विषयों में समन्वय—हेलन के अनुसार सभी विषयों में एकत्व होना चाहिए। वे अलग-अलग न जान पड़ें। एक ही समस्या के हल करते समय बालक तत्सम्बन्धी सभी विषयों का ज्ञान यथासमय प्राप्त कर सकते हैं।

(८) परीक्षा—परीक्षा के आस पास के दिनों में बालक कड़ी मेहनत कर पास हो जाते हैं। शेष समय में पढ़ाई की ओर विशेष ध्यान नहीं देते। कक्षा में अध्यापक आगे से आगे पढ़ाता जाता है और यह नहीं देखता कि बालक ने कितना ग्रहण किया है। इस कमी को दूर करने के लिए हेलन ने बताया है कि बालक ने जितना कार्य दिन-भर में किया है उसका विवरण रखा जाना चाहिए। यदि बालक ने उसे सौंपे गये निश्चित कार्य को ठीक-ठीक किया है तब तो उसे आगे बढ़ने दिया जाना चाहिए अन्यथा उसे तब तक रोक देना चाहिए जब तक वह सौंपे गये कार्य को ठीक ढंग से न कर ले। इस प्रकार डाल्टन पद्धति में प्रतिदिन के कार्य की परीक्षा हो जाती है।

डाल्टन योजना की शिक्षण पद्धति—इस प्रणाली द्वारा शिक्षण पद्धति का कार्य निम्नलिखित प्रकार से होता है—

(१) दैनिक कार्यक्रम—दैनिक शाला समय को दो भागों में बाँटा जाता है। प्रथम १२ बजे पहले तक तथा दूसरा भाग २ बजे से ५ बजे तक। शाला के प्रातः-कालीन समय के प्रारम्भ मे सामूहिक प्रार्थना होती है। प्रार्थना के पश्चात् विद्यार्थियों तथा अध्यापकों का सम्मेलन होता है। इस समय बालक अध्यापक से कार्य के निमित्त आवश्यक निर्देश पाते हैं। तत्पश्चात् बालक अपने विषय की प्रयोगशाला में कार्य मे जुट जाते हैं। अपराह्न (दोपहर के पश्चात्) के शाला समय मे सामूहिक कार्य होते हैं। विवाद (चर्चा) सभा दिन मे किये गये कार्य के विषय में अध्यापक मे बातचीत, सामूहिक मेल, कलाकौशल, आदि कार्यक्रम होते है। इस शाला मे प्रति ४० मिनट या ४५ मिनट पर घटे नही लगाये जाते। बालक इच्छानुसार विषय पढ़ते रहते हैं।

(२) विषय का ठेका—शाला का सत्र १० मास का होना है। विषय के वर्ष-भर के कार्य को १० भागों मे बाँट कर प्रतिमास का कार्य निश्चय कर दिया जाता है। इस तरह एक मास के लिए निश्चित कार्य को महीने भर मे समाप्त कर लेने का बालक ठेका लेता है। यह ठेका मास के प्रारम्भ में होता है। बालक को निम्नांकित रूप में लिख कर देना पड़ता है :—

"मैं······कक्षा······का छात्र अपने······विषय के निश्चित कार्य······को मास के अन्त तक पूरा करने का ठेका लेता हूँ।

दिनांक······ हस्ताक्षर······ कक्षा·········।"

(३) निर्दिष्ट पाठ—मास-भर के ठेके के कार्य को चार भागो मे बाँट दिया जाता है। इस प्रकार प्रत्येक सप्ताह के कार्य को निर्दिष्ट पाठ कहते हैं। इस निर्दिष्ट पाठ की लिखित रूपरेखा अध्यापक बालक को दे देता है जिसमे पाठ का शीर्षक, उस की समस्या, उसमें कितना लिखित कार्य करना होगा, कितना याद करना होगा, कितने प्रश्नो के उत्तर देने होंगे, पुस्तकें कौन-कौन सी और उनके कहाँ से कहाँ तक पृष्ठ पढ़ने होंगे। ग्राफ की तैयारी, कितने चित्र या मानचित्र बनाने होंगे आदि सूचनाएँ लिखी होती हैं। साथ ही यह भी लिखा होता है कि इस पाठ का कोई अंश यदि बालक ने दूसरे विषय के अध्ययन के समय पढ़ लिया है तो उसे छोड़ दिया जाय। इसे विभागीय छूट या कटौती कहते हैं।

(४) इकाई—एक सप्ताह के निर्दिष्ट पाठ को पाँच भागों मे बाँटा जाता है। एक भाग को इकाई कहते है। एक महीने के कार्य के ४ निर्दिष्ट पाठ और प्रत्येक निर्दिष्ट पाठ की ५ इकाइयों के हिसाब से २० इकाइयाँ होती हैं जिसका तात्पर्य यह है कि मास के कार्य का २० इकाइयों अर्थात् २० दिनों में विभाजन हो गया। शैक्षिक मास के भी साधारणतया २० दिन ही होते हैं। अतः बालक को यह स्पष्ट हो जाता है कि उसे प्रतिदिन कितना काम करना है।

(५) सम्मेलन तथा प्रयोगशाला—जैसा पहले बताया जा चुका है शाला के दैनिक कार्य के प्रारम्भ में प्रार्थना के बाद सम्मेलन होता है जिसमे बालक अध्यापक से आवश्यक निर्देश प्राप्त करता है उसके उपरान्त वह अपने विषय की प्रयोगशाला में चला जाता है। प्रत्येक विषय की अलग-अलग प्रयोगशाला होती है जिसमें

तत्सम्बन्धी विषय की सभी सहायक सामग्री उपस्थित रहती है। प्रयोगशाला का कमरा बहुत बड़ा होता है जिसमें अलग-अलग कक्षाओं के लिए स्थान निश्चित होते हैं। वहाँ उसी कक्षा सम्बन्धी सामग्री रखी होती है। कक्षा में कोई निश्चित पाठ्य पुस्तकें नहीं होतीं। प्रयोगशाला में इच्छानुकूल पुस्तकों का अध्ययन बालक करते हैं।

(६) विचार सभा—तीसरे पहर के समय साप्ताहिक सभा होती है जिसमें पहले से किसी निश्चित विषय पर छात्र अपने-अपने अनुभव तथा शंकाओं को व्यक्त करते हैं। इस प्रकार वे सामाजिकता का पाठ पढ़ते हैं।

(७) प्रगति सूचक रेखाचित्र—तीन प्रकार के प्रगति सूचक रेखाचित्र बनाये जाते हैं :—

(१) स्वयं बालक के द्वारा—बालक स्वयं अपना प्रगति-पत्र भरता जाता है जिससे उसे पता रहता है कि उसने कितना काम कर लिया है। इससे बालक में आत्म-निर्भरता, सत्यता एवं उत्तरदायित्व की भावनाएँ उत्पन्न होती हैं।

(२) शिक्षक द्वारा—विषय के अध्यापक द्वारा भी प्रत्येक बालक का प्रगति सूचक रेखाचित्र भरा जाता है।

(३) सामूहिक रेखाचित्र—कक्षा के प्रत्येक बालक की साप्ताहिक प्रगति को दर्शाता है। यह कक्षाध्यापक द्वारा भरा जाता है।

डाल्टन पद्धति एवं बुनियादी शिक्षा—दोनों पद्धतियों में समानतायें तथा असमानतायें दोनों ही विद्यमान हैं।

समानतायें निम्नलिखित हैं :—

(१) दोनों पद्धतियाँ आत्म शिक्षण अर्थात् स्वयं ज्ञान प्राप्त करने की प्रणाली पर बल देती हैं।

(२) दोनों में अध्यापक पथ-प्रदर्शक के तौर पर कार्य करता है।

(३) दोनों ही बालकों की व्यक्तिगत रुचि एवं क्षमता के आधार पर ज्ञान प्राप्त कराती हैं।

(४) दोनों मनोविज्ञान के सिद्धान्तों पर आधारित हैं।

(५) दोनों व्यक्तिगत शिक्षण करते हुए समाज का पूरा ध्यान रखती हैं।

(६) परीक्षा के नवीन दृष्टिकोण को दोनों अपनाती हैं।

(७) दोनों बालक का सर्वांगीण विकास चाहती हैं। साथ ही समाज व राष्ट्र का विकास ध्यान में रखती हैं।

(८) सानुबन्ध शिक्षा का दोनों में प्रयोग किया जाता है।

(९) दोनों बालक केन्द्रित शिक्षण पद्धतियाँ हैं।

(१०) दोनों बालक को पूर्ण स्वतन्त्रता प्रदान करती हैं।

असमानतायें—(१) डाल्टन पद्धति जीवन और शिक्षा के अन्तर को नहीं पाटती। बुनियादी शिक्षा जीवन की, जीवन द्वारा, जीवन के लिए प्रदत्त शिक्षा है।

(२) डाल्टन पद्धति में उद्योगों के शिक्षण का अभाव है। बुनियादी शिक्षा उद्योग द्वारा ज्ञानार्जन कराती है।

(३) डाल्टन पद्धति स्वावलम्बन का कोई ध्यान नहीं रखती। बुनियादी शिक्षा स्वावलम्बन पर आधारित है।

(४) डाल्टन पद्धति मे पाठ्य पुस्तकें नही होती। बुनियादी शिक्षा में पाठ्य पुस्तकों को भी स्थान है।

(५) डाल्टन पद्धति १२ वर्ष के आगे की आयु के बालकों के लिए उपयुक्त शिक्षा है और आगे की सम्पूर्ण जीवन की शिक्षा व्यवस्था नहीं करती। बुनियादी शिक्षा सम्पूर्ण जीवन की शिक्षा व्यवस्था है।

(६) डाल्टन पद्धति रूढ़िगत प्राचीन शिक्षा का सुधरा हुआ रूप है। बुनियादी शिक्षा नई शिक्षा है जो सर्वोदयी समाज की रचना करती है।

(७) डाल्टन पद्धति का आधार आदर्शवाद है। बुनियादी शिक्षा का आधार आदर्शवाद युक्त यथार्थवाद है।

(८) डाल्टन पद्धति मे शिक्षण शालाभवन की प्रयोगशालाओं मे होता है, प्रकृति की गोद में नही। बुनियादी शिक्षा प्रकृति की गोद में रख कर शिक्षा प्रदान करती है।

(९) डाल्टन पद्धति मे व्यय बहुत होता है। बुनियादी शिक्षा पद्धति मे व्यय उतना अधिक नही होता।

सारांश

प्रस्तावना—अमेरिका की शालाओं में पढ़ाई की दूषित प्रणाली देखकर कुमारी हेलन पार्खर्स्ट ने नई पद्धति निकाली जिसका सर्वप्रथम प्रयोग डाल्टन नगर के हाई स्कूल में होने के कारण इसे डाल्टन पद्धति कहा जाता है।

हेलन पार्खर्स्ट का जीवन तथा कार्य—वह जन्मजात शिक्षिका थी। उसने मांटेसरी के साथ रहकर उसकी शिक्षण पद्धति का अध्ययन किया था। उसने प्राथमिक शाला से लगाकर ट्रेनिंग कालेजों में काम किया था।

हेलन पार्खर्स्ट की विचारधारा—(१) बालक शिक्षा का केन्द्र—वह बालक ही को शिक्षा का केन्द्र मानती थी। (२) बालक की स्वतन्त्रता—बालक को पूर्ण स्वतन्त्रता दी जानी चाहिए। (३) व्यक्तिगत भेद के अनुसार शिक्षा ग्रहण करने का अवसर—बालकों को उनके व्यक्तिगत भेद के अनुसार शिक्षा दी जानी चाहिए। उनकी रुचि और क्षमता का ध्यान रखना चाहिए। (४) सहयोग की भावना—सामूहिक जीवन की आदत डालनी चाहिए। (५) सप्रयोजन अध्ययन—शिक्षण समस्या पर आधारित होकर किसी लक्ष्य की ओर उन्मुख होना चाहिए। (६) प्रयोगात्मक दृष्टिकोण—शाला में प्रयोगों के आधार पर बालक को शिक्षा ग्रहण करने का अवसर दिया जाना चाहिए। (७) विभिन्न विषयों में सम्बन्ध—सभी विषयों में एकत्व होना चाहिए। (८) परीक्षा—प्रतिदिन के कार्य की परीक्षा होनी चाहिए।

डाल्टन योजना की शिक्षण पद्धति—(१) दैनिक कार्यक्रम—शाला में घण्टों के बजने के आधार पर विषय नहीं बदलते। शाला प्रातः १२ बजे तक तथा अपराह्न में २ से ५ तक चलती है। प्रातः प्रार्थना तथा सम्मेलन होने के बाद छात्र प्रयोगशालाओं में कार्य करते हैं। अपराह्न में विचार विमर्श आदि होते हैं। (२) विषय का ठेका—कक्षा के पूरे सत्र के कार्य को १० भागों में बाँटकर प्रत्येक मास के कार्य का बालक को ठेका दिया जाता है। (३) निर्दिष्ट पाठ—प्रत्येक मास के कार्य को चार भागों में बाँट देते हैं जिसे निर्दिष्ट पाठ कहते हैं। (४) इकाई—प्रत्येक निर्दिष्ट पाठ को ५ भागों में बाँटा जाता है। प्रत्येक को इकाई कहते हैं। (५) सम्मेलन तथा प्रयोगशाला—प्रार्थना के बाद सम्मेलन में अध्यापक छात्रों को आवश्यक निर्देश देता है। तब वे प्रयोगशाला में काम करते हैं। (६) विवाद सभा—अपराह्न में किसी विषय पर विचार विमर्श होता है। (७) प्रगति सूचक रेखाचित्र—बालक स्वयं अपनी प्रगति का रेखा चित्र बनाता है। विषय का अध्यापक बनाता है तथा कक्षाध्यापक सब बालकों का साप्ताहिक रेखा चित्र बनाता है।

डाल्टन पद्धति एवं बुनियादी शिक्षा—दोनों में समानता तथा असमानतायें हैं।

अभ्यासार्थ प्रश्न

(१) हेलन पार्खर्स्ट की विचारधारा स्पष्ट करते हुए डाल्टन शिक्षण पद्धति की रूप रेखा स्पष्ट कीजिए।

(२) डाल्टन पद्धति एवं बुनियादी शिक्षा में कौन कौन सी समान विशेषतायें हैं तथा कौन-कौन सी असमान ? स्पष्ट विवेचना कीजिये।

अध्याय २२

योजना पद्धति और बुनियादी शिक्षा

प्रस्तावना—बालक उसकी रुचि एवं मूल प्रवृत्तियों के अनुसार शिक्षा ग्रहण करता है। बालक की प्रवृत्तियों में रचनात्मक प्रवृत्ति का मुख्य स्थान है। अतः शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जो उसकी रचनात्मक प्रवृत्ति के अनुकूल हो। तभी बालक शिक्षा ग्रहण करने में रुचि लेगा। शिक्षा सप्रयोजन होनी चाहिए। जिसके लिये एक योजना बनाना आवश्यक है और उसी योजना के अनुसार काम होना चाहिए। अमेरिका के शिक्षा शास्त्री ड्यूई की इस विचारधारा के आधार पर उनके शिष्य किलपैट्रिक ने एक पद्धति चलाई जिसे योजना पद्धति (Project Method) कहते हैं। इस पद्धति में 'अनुभव' द्वारा सीखने की प्रधानता है। इसके आधार पर सीखने के ३ पहलू माने गये हैं। (१) शारीरिक विकास—अर्थात् हाथ से काम करने की क्षमता होना। (२) बौद्धिक विकास—किसी भी समस्या को हल करने की बुद्धि का विकास होना। (३) स्वभावगत विकास—अच्छी आदतों का निर्माण होना। योजना विधि इन तीनों की ओर ध्यान देती है।

योजना पद्धति की आधारभूत विचारधारा :—

(१) **जीवन की सक्रियता**—जीवन की विशेषता ही यह है कि वह सक्रिय है। वह वातावरण को अपने अनुकूल बनाने अथवा अपने को वातावरण के अनुकूल बनाने के लिए प्रतिक्षण प्रयत्न करता रहता है।

(२) **परिवर्तनशीलता**—ससार परिवर्तनशील है। ज्यों-ज्यों जीवन आगे बढ़ता है त्यों-त्यों ससार भी परिवर्तनशील होता जाता है। जीवन में नई-नई समस्यायें उत्पन्न होती जाती हैं। मानव स्वभावतः इन समस्याओं को हल करना चाहता है।

(३) **जीवन में 'अनुभव की' प्रधानता**—समस्याओं को हल करते हुए मनुष्य अनुभव प्राप्त करता है। इसी अनुभव से ज्ञान का विकास होता है, मन का विकास होता है तथा व्यवहारों का संशोधन होता है।

(४) **व्यक्ति तथा समाज का सामंजस्य**—व्यक्ति के दो पहलू हैं। पहला व्यक्तिगत तथा दूसरा सामाजिक। व्यक्ति की अपनी इच्छायें, भावनायें, कल्पनायें तथा प्रवृत्तियाँ हैं। दूसरी ओर समाज का पहलू है जो अधिक प्रबल है तथा पहले वाले पहलू को नियन्त्रित भी करता है। ड्यूई और किलपैट्रिक ने सामाजिक पहलू पर अत्यधिक बल दिया है। व्यक्ति एक सामाजिक प्राणी है। यद्यपि व्यक्ति का व्यक्तित्व (उसका अपनापन) सर्वोपरि है तथापि वह समाज के रंग में रंगा हुआ है। समाज के विपरीत कार्य उसे असामाजिक बनायेंगे। अतः शिक्षा का कार्य यह होना चाहिए कि वर्तमान समाज की तीन प्रधान शक्तियाँ प्रजातन्त्र, उद्योग और विज्ञान का व्यक्ति में सामंजस्य स्थापित करे। इसके लिए प्रयोगात्मक मार्ग अपनाना होगा

जिससे बालक प्रत्यक्ष अनुभव प्राप्त कर सके। इस प्रयोगात्मक मार्ग का निर्धारण योजना के बिना नहीं हो सकता।

(५) नवीन मूल्यों की सृष्टि—शिक्षा केवल आदर्शवादी ही नहीं होनी चाहिए वह यथार्थवादी भी होनी चाहिए। योजना, प्रयोग एवं अन्वेषण के द्वारा नये मूल्यों का निर्धारण किया जाना चाहिए। अतः अध्यापक को बालक के लिए ऐसी परिस्थिति उत्पन्न कर देनी चाहिए कि वह स्वयं नये मूल्यों की रचना कर सके, नये अनुभव प्राप्त कर सके।

(६) शिक्षा अनुभव तथा जीवन की पर्यायवाची—व्यक्ति का अपने आपको समाज में व्यवस्थित करना उसके अनुभव के आधार पर ही सम्भव है। यह आजीवन क्रिया है। अतः शिक्षा का काल सम्पूर्ण जीवन है अर्थात् जन्म से लेकर मृत्यु तक मनुष्य विद्यार्थी ही है। सम्पूर्ण संसार शिक्षा का क्षेत्र है।

(७) शाला पूरे समाज का प्रतिबिम्ब—ड्यूई ने कहा है "शाला एक विशेष वातावरण है जो किसी शैक्षिक उद्देश्य की प्राप्ति के लिए यत्नपूर्वक आयोजित की गई हो। क्योंकि शिक्षा का उद्देश्य बालक का सामाजीकरण है अतः यह समाज का सक्षिप्त एवं लघु रूप होना चाहिए।" तात्पर्य यह है कि समाज में प्रचलित विचार-धारा, उसकी शक्तियाँ, उद्योग, प्रजातन्त्र एवं विज्ञान, धार्मिक भावना आदि का शाला बालक को पूर्ण ज्ञान कराकर उसे समाज में प्रगतियुक्त जीवन व्यतीत करने की ओर उन्मुख करती है। अतः शालाओं का वातावरण भी समाज के बदलने के साथ बदलता रहता है।

(८) क्रिया द्वारा ज्ञानार्जन तथा सामाजिक चेतना—बालक को स्वयं कार्य करके अनुभव प्राप्त करने का अवसर देना चाहिए। इसी अनुभव से वह ज्ञान प्राप्त करेगा और समाज में अपने आपको व्यवस्थित कर सकेगा।

(९) सहयोग की भावना—विद्यालय का वातावरण स्नेह, बन्धुत्व, सेवा भावना से परिपूर्ण होना चाहिए। विद्यालय को आदर्श-गृह का रूप होना चाहिए ताकि बालक को घर के समान प्रेम का वातावरण मिले। इस प्रकार विद्यालय को एक ओर तो घर का वातावरण उत्पन्न करना चाहिए तथा दूसरी ओर वह समाज का लघु रूप होना चाहिए।

(१०) नैतिकता की भावना—शाला के कार्य ऐसे होने चाहिएँ कि बालकों मे आचरण की शुद्धता, चारित्रिकता एवं नैतिकता का विकास करें।

योजना पद्धति द्वारा शिक्षण—योजना पद्धति समस्यात्मक कार्य है जो स्वाभाविक वातावरण एव गति के अनुसार पूरा किया जाता है। यह पद्धति क्रियाशीलता को ही प्रधानता देती है। यह क्रियाशीलता छात्रों द्वारा स्वयं आयोजित तथा प्रयोजनपूर्ण होनी चाहिए। इस पद्धति द्वारा शिक्षण के ५ सोपान हैं :—

(१) समस्या उत्पत्ति—इस पद्धति द्वारा शिक्षण में बालकों की रुचि एवं स्तर के अनुकूल अध्यापक को समस्या उत्पन्न करनी चाहिए। यह समस्या सामाजिकतापूर्ण होनी चाहिए। अतः दैनिक जीवन से सम्बन्धित होना अधिक आवश्यक

है। मान लीजिए कि कोई महत्वपूर्ण त्यौहार आने वाला है। दीवाली को ही लीजिए। घरों मे सफाई, सफेदी, रग आदि होने लगते हैं। अध्यापक अपनी शाला की सफाई और रग करने की समस्या बालको के सामने उत्पन्न कर सकता है। मित्र या सम्बन्धियों को मिठाई भेजने की समस्या उत्पन्न कर सकता है। इसी प्रकार अन्य समस्याये उत्पन्न कर सकता है।

(२) **चयन**—समस्याओ के उत्पन्न करने पर बालक उतावले हो जाते हैं कि वे भी प्रौढो के समान ऐसा ही कार्य करेंगे। अत. अध्यापक को चाहिए कि बालको से किसी एक ऐसी समस्या को चुनवायें जिसमे उनकी पूर्ण रुचि हो। अर्थात् जो बालकों की मनोवैज्ञानिक स्थिति के अनुकूल हों, सोद्देश्य हो तथा वास्तविक जीवन से सम्बन्धित हों। मान लीजिए सम्बन्धी को मिठाई भेजने की समस्या चुनी गई।

(३) **योजना बनाना**—समस्या निश्चित हो जाने के बाद उसकी कार्यविधि की योजना तैयार की जानी चाहिए। यह योजना क्रमबद्ध व स्वाभाविक होनी चाहिए। प्रत्येक छात्र को इसमें भाग लेना चाहिए। उपरोक्त मिठाई भेजने की समस्या मे मिठाई बनाने के लिए आवश्यक सामग्री जुटाना, कौन-कौन, कितनी-कितनी सामग्री लाएगा, मिठाई तैयार कैसे की जायेगी, फिर तैयार मिठाई का बडल बनाना, पत्र लिखना, पोस्ट आफिस की कार्यविधि आदि अनेक क्रियाओं की योजना बनाई जा सकती हैं।

(४) **कार्यान्वित करना**—योजना तैयार होने पर उसे कार्यान्वित करना चाहिए। पर अध्यापक को चाहिए कि वह सभी कार्य बालको से ही करावे। अपनी ओर से आवश्यकता पड़ने पर समस्या सुलझाने का प्रयत्न करे। योजना को पूरा करने मे शीघ्रता नही करनी चाहिए। क्रिया के समय सम्बन्धित ज्ञान कराया जाना चाहिए। यह ज्ञान सानुबन्ध शिक्षा द्वारा अर्थात् सक्रिय समन्वय द्वारा प्राप्त कराना चाहिए। उपरोक्त योजना मे त्यौहारो का महत्व, उनके मनाने की विधि एव संस्कृति आदि के विषय मे पढ़ाया जा सकता है। यह सामाजिक ज्ञान कहलायेगा। मिठाई के लिए विभिन्न मोल की सामग्री को इकट्ठा करने से गणित पढ़ाई जा सकती है। पत्र लिखने से भाषा पढाई जा सकती है। डाक व्यवस्था से गणित तथा डाक, तार, रेल विभाग का अध्ययन कराया जा सकता है।

(५) **परीक्षणार्थ प्रयोग**—सम्पूर्ण योजना की समाप्ति पर उसके महत्वपूर्ण अशो को दुहराना चाहिए। बालको ने कितना अनुभव प्राप्त किया, कितना ज्ञान प्राप्त किया, किन नये मूल्यो का सृजन किया आदि की जानकारी के लिए अध्यापक को बालको से अन्य प्रयोग कराये जाने चाहियें।

योजना पद्धति एवं बुनियादी शिक्षा—योजना पद्धति ऐसी शिक्षण पद्धति है जो बुनियादी शिक्षण पद्धति से बहुत मिलती जुलती है। कई व्यक्ति बुनियादी शिक्षा को योजना पद्धति का निखरा हुआ रूप मानते हैं। कई बुनियादी शिक्षा और योजना पद्धति को समान ही मानते हैं। वास्तव में दोनो पद्धतियों में समानतायें भी हैं और असमानताएँ भी। समानतायें निम्नलिखित हैं :—

(१) दोनों बालक को शिक्षा का केन्द्र मानती हैं तथा बालक की रुचि एवं क्षमता पर बहुत बल देती हैं।

(२) दोनों पद्धतियाँ पूर्णतः मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों पर आधारित हैं।

(३) दोनों ही व्यक्तिगत शिक्षण के साथ-साथ सामाजिक पहलू का पूरा ध्यान रखती हैं तथा बालक को समाज का उपयोगी नागरिक बनाती हैं।

(४) दोनों व्यावहारिक शिक्षा प्रदान करती हैं तथा क्रियाशीलता द्वारा ज्ञान प्राप्त कराती हैं। दोनों में बालक स्वयं ही प्रत्यक्ष अनुभव द्वारा ज्ञान प्राप्त करता है।

(५) दोनों पद्धतियाँ समन्वय और समवाय द्वारा शिक्षण प्राप्त कराती हैं। विभिन्न विषयों का यथावसर तथा यथावश्यक ज्ञान प्राप्त करने का अवसर दोनों पद्धतियाँ बालक को प्रदान करती हैं।

(६) दोनों पद्धतियाँ बालक का सर्वांगीण विकास करने का प्रयत्न करती हैं।

(७) दोनों पद्धतियाँ यथार्थवाद के साथ-साथ आदर्शवाद को भी अपनाती हैं।

(८) दोनों पद्धतियाँ शाला को समाज का प्रतिबिम्ब मानती हैं।

(९) दोनों पद्धतियाँ संसार की परिवर्तनशीलता के नियम को ध्यान में रखते हुए समाज के अनुकूल व्यक्तिगत शिक्षा प्रदान करती हैं।

(१०) दोनों पद्धतियाँ नवीनतम मनोविज्ञान, दर्शन, सिद्धान्त एवं नियमों का अपने में समावेश करती हैं।

(११) दोनों रचनात्मक कार्य को ज्ञान प्राप्ति का आधार मानकर बालकों को रचनात्मक कार्य की ओर प्रवृत्त करती हैं।

(१२) दोनों जन्म से मृत्यु तक शिक्षा काल मानती हैं तथा मानव को शिक्षार्थी।

(१३) दोनों बालकों में सहयोग की भावना तथा नैतिकता के विकास पर पूर्णतया बल देती हैं।

(१४) दोनों अध्यापक को पथ-प्रदर्शक एवं समाज व राष्ट्र का निर्माता मानती हैं।

(१५) दोनों शिक्षा को पूर्णतः जीवन से सम्बन्धित मानती हैं तथा जीवन द्वारा जीवन की शिक्षा प्रदान करती हैं।

इस प्रकार दोनों प्रणालियाँ पूर्णतः समान दिखाई पड़ती हैं तथापि उनमें कुछ असमानताएँ हैं जो निम्नलिखित हैं :—

(१) योजना विधि जीवन को विभिन्न समस्याओं का समूह मानती है। इसीलिए बालक के सामने समस्या उत्पन्न कर सम्पूर्ण शिक्षा उस समस्या का हल खोजना ही होता है। बुनियादी शिक्षा जीवन को एक इकाई मानती है। अतः इस पद्धति द्वारा शिक्षण क्रमानुसार आगे बढ़ता रहता है।

(२) योजना पद्धति राष्ट्रीय शिक्षा नहीं बन सकती जबकि बुनियादी शिक्षा राष्ट्रीय शिक्षा का श्रेय प्राप्त किए हुए है।

(३) योजना पद्धति में जीवन की यथार्थता अवश्य है। उसकी समस्यायें व योजनायें जीवन से सम्बन्धित होती हैं पर ये योजनायें शिक्षण कार्य के बाद उतनी महत्त्वपूर्ण नहीं रहती जितनी बुनियादी शिक्षा में उपयोगी धंधे की शिक्षा। इसी धंधे को केन्द्र मानकर समवायी शिक्षा दी जाती है।

(४) योजना पद्धति का कोई भी रचनात्मक कार्य बालक के भावी जीवन का व्यवसाय नहीं बन पाता। बुनियादी शिक्षा में सीखा गया उद्योग बालक का व्यवसाय बनकर उसे बेकार नागरिक नहीं बनने देता है।

(५) योजना पद्धति में सिखाये गये रचनात्मक कार्य से आय का होना आवश्यक नहीं है पर बुनियादी शिक्षा उत्पादक धन्धे द्वारा ज्ञान प्राप्ति के साथ-साथ अर्थ प्राप्ति भी कराती है। वह बालकों को स्वावलम्बन का पाठ पढ़ाती है।

(६) योजना पद्धति में पहले से कार्य की कोई निश्चित रूप-रेखा नहीं होने के कारण समस्या के उत्पन्न करने व योजना बनाने में बहुत अधिक समय एवं शक्ति का अनावश्यक व्यय होता है। बुनियादी शिक्षा में कार्यप्रणाली उत्तरोत्तर आगे बढ़ने के कारण स्वतः स्पष्ट होती है अतः समय व शक्ति व्यर्थ खर्च नहीं होती।

(७) योजना पद्धति बालक में केवल व्यावहारिक कुशलता एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण उत्पन्न करती है, पर बुनियादी शिक्षा इसके साथ-साथ व्यावसायिक निपुणता का दृष्टिकोण भी उत्पन्न करती है।

(८) योजना पद्धति बुनियादी शिक्षा पद्धति की अपेक्षा अधिक खर्चीली है।

(९) योजना पद्धति के स्कूलों में एक बालक का एक स्कूल से दूसरे स्कूल में जाना कठिन होता है क्योंकि दोनों शालाओं में एक ही प्रकार की योजनायें चलाना निश्चित नहीं। बुनियादी शालाओं के बालक आवश्यकता पड़ने पर बड़ी आसानी से एक स्कूल में दूसरे स्कूल में जा सकते हैं।

(१०) योजना पद्धति में रचनात्मक कार्य या प्रवृत्ति केवल ज्ञानात्मक विषयों को पढ़ाने का साधन मात्र है पर बुनियादी शिक्षा में प्रवृत्ति गौण साधन नहीं है। बुनियादी शिक्षा क्रियात्मक विषय एवं ज्ञानात्मक विषय दोनों को ही समान रूप से महत्व स्वीकार करती है।

(११) समवाय की दृष्टि से दोनों पद्धतियों में साम्य अवश्य है पर योजना पद्धति में तो वर्णनात्मक विषयों की मुख्यता होती है। उनको सिखाने के लिए योजनाओं की आवश्यकता होती है। बुनियादी शिक्षा में मूल उद्योग योजना के रूप में निश्चित रहता है और उसी से समवायी विषयों का ज्ञान कराया जाता है।

सारांश

प्रस्तावना—अमेरिका के शिक्षाशास्त्री ड्यूई की विचारधारा के आधार पर उनके शिष्य किलपेट्रिक ने जो पद्धति चलाई उसे योजना पद्धति कहते हैं।

योजना पद्धति की आधारभूत विचारधारा—(१) जीवन की सक्रियता

—जीवन सक्रिय है। (२) परिवर्तनशीलता—संसार परिवर्तनशील है। (३) जीवन में अनुभव की प्रधानता—मनुष्य अनुभव प्राप्त करता है और उसी से ज्ञान मिलता है। (४) व्यक्ति तथा समाज का सामंजस्य—व्यक्ति के दोनों पहलुओं व्यक्तिगत एवं सामाजिक में शिक्षा समन्वय उपस्थित करती है। (५) नवीन मूल्यों की सृष्टि—योजना, प्रयोग एवं अन्वेषण द्वारा नये मूल्यों का निर्धारण किया जाना चाहिये। (६) शिक्षा अनुभव तथा जीवन की पर्यायवाची—शिक्षा प्राप्त करना जीवन-भर की क्रिया है अर्थात् जीवन ही शिक्षा है। (७) शाला पूरे समाज का प्रतिबिम्ब—शाला समाज का प्रतिबिम्ब होनी चाहिये। (८) क्रिया द्वारा ज्ञानार्जन तथा सामाजिक चेतना—बालक को स्वयं कार्य कर अनुभव प्राप्त करने का अवसर देना चाहिए। (९) सहयोग की भावना—शाला में सहयोग की भावना को पूर्ण विकास मिलना चाहिए। (१०) नैतिकता की भावना—शाला को बालकों में नैतिकता का विकास करना चाहिए।

योजना पद्धति द्वारा शिक्षण—योजना पद्धति समस्यात्मक कार्य है जो स्वाभाविक वातावरण एवं गति के अनुसार पूरा किया जाता है। इस पद्धति द्वारा शिक्षण के पांच अंग हैं—(१) समस्या उत्पत्ति—बालकों की रुचि एवं स्तर के अनुकूल समस्याएँ उत्पन्न की जानी चाहिए। (२) चयन—इन समस्याओं में से एक या दो ऐसी समस्याएँ चुननी चाहियें जिनमें सभी बालकों की रुचि हो (३) योजना बनाना—समस्या निश्चित हो जाने के बाद उसकी योजना बनाई जानी चाहिये। (४) कार्यान्वित करना—उस योजना को प्रवृत्ति द्वारा संचालित किया जाना चाहिए तथा समय समय पर तत्सम्बन्धी आवश्यक विषयों को पढ़ाना चाहिए। (५) परीक्षणार्थ प्रयोग—सम्पूर्ण कार्यवाही समाप्त होने पर परीक्षा करनी चाहिए कि बालक ने कितना अनुभव एवं ज्ञान प्राप्त किया है।

योजना पद्धति एवं बुनियादी शिक्षा—दोनों पद्धतियों में अत्यधिक समानता होने के कारण यह शंका होने लग जाती है कि दोनों एक ही पद्धति के अलग-अलग दो नाम हैं। अथवा योजना पद्धति का सुधरा हुआ रूप बुनियादी शिक्षा है पर वास्तव में दोनों में कई असमानताएँ भी हैं।

अभ्यासार्थ प्रश्न

(१) योजना पद्धति शिक्षा सम्बन्धी किन-किन विचारों पर आधारित है ? स्पष्ट कीजिये।
(२) योजना पद्धति द्वारा आप शिक्षण किस प्रकार करेंगे ? सविस्तार एवं उदाहरण सहित लिखिये।
(३) क्या बुनियादी शिक्षा को योजना पद्धति का सुधरा हुआ रूप कहना उचित है ? दोनों की समानताओं और असमानताओं पर पूर्ण प्रकाश डालिये।

वर्कशॉप पद्धति और बुनियादी शिक्षा

प्रस्तावना—हमारा देश आज नवजागरण के युग में गुजर रहा है। राष्ट्र-निर्माण की अनेक योजनायें आज हमारे सामने हैं। जनता के सहयोग से इन्हे पूरी करना है। जनता से सहयोग कैसे लिया जावे यह एक सवाल है। दूसरा सवाल यह है कि जनता किस प्रकार सरकार को अपने राष्ट्र के निर्माण में सहयोग दे। ऐसे उदाहरण भी मिलते है जहाँ सहायता लेने वाले अधिकारी तथा सहायता देने वाली जनता, दोनों ही इस काम के ज्यादा अच्छे तरीकों के जानकार नहीं हैं। आज सबको उपरोक्त जरूरत पूरी करने की दृष्टि से शिक्षा देनी है। यह शिक्षा उन्हे स्कूल भेज कर दी जानी संभव नहीं है। अतः कुछ नवीन तरीको का सहारा लेना जरूरी हो गया। इस दृष्टि से सेमीनार, गोष्ठी एवं वर्कशॉप पद्धति के प्रयोग का श्रीगणेश हुआ। वर्कशॉप पद्धति राष्ट्र-निर्माण के अमरीकी सहयोगियों द्वारा भारत में भी प्रारम्भ की गई है। शिक्षा के क्षेत्र में भी यह पद्धति शुरू हुई। शिक्षकों को ऐसा शैक्षणिक अनुभव प्रदान करने का प्रयत्न किया गया जिससे वे बालक की शिक्षा में अधिक अच्छा योग दे सकें।

वर्कशॉप पद्धति के उद्देश्य—इस तरीके से निम्नलिखित उद्देश्य की पूर्ति की अपेक्षा की गई :—

(१) शिक्षकों को नजदीक लाने के लिए ऐसा प्रयत्न करना जो उनके बीच की खाई को पाट दे।

(२) शिक्षकों को सार्वलौकिक भलाई का काम करते हुए अपने-अपने विकास का अवसर देना।

(३) शिक्षकों को ऐसी समस्याओं पर विचार करने का अवसर देना जो उनकी निजी हैं और दैनिक जीवन की हैं।

(४) शिक्षकों को सहयोग से काम करने की आदत सिखाना।

(५) शिक्षकों को ऐसा ज्ञान देना और ऐसी पद्धतियाँ सिखाना जो उनके कक्षा कार्य में सुधार करें और समाज में उनके आदर को बढ़ावें।

(६) शिक्षकों को अपने प्रयत्न, कार्य एवं ज्ञान का तुलनात्मक दृष्टि से मूल्यांकन करने का अवसर देना।

(७) शिक्षा सहायक उपकरणों को सहयोग से तैयार करने का प्रशिक्षण एवं अवसर देना।

(८) शिक्षक के लिए जरूरी गुणों के विकास का अवसर प्रदान करना।

वर्कशॉप का आयोजन—यह स्पष्ट किया जा चुका है कि यह एक नवीनतम पद्धति है इसका शनैः शनैः विकास हो रहा है। वर्तमान दशा में जो इसका स्वरूप है

उस दृष्टि से इस आयोजन के निम्न भाग हो सकते हैं :—

प्रथम सम्मेलन (परिचय एवं टोली विभाजन)—इकट्ठे होने वाले सदस्यों प्रथम सम्मेलन हेलमेल करने का अवसर प्रदान करता है। वर्कशॉप का प्रार संगीत से होता है। इसी अवसर पर आपसी परिचय होता है। आयोजन करने व अधिकारियों को लोग अपना लिखित एवं विस्तृत परिचय देते हैं। यह परिचय ब में वर्कशॉप की सदस्य-परिचय पत्रिका में छपकर सबको वितरित हो जाता है। इ अवसर पर वर्कशॉप के उद्देश्य एवं उसके आयोजन के तरीके पर किसी ए व्यवस्थापक अधिकारी की ओर से भाषण दिया जाता है। इसके पश्चात् समस्या का चुनाव करने वाली टोलियों का निर्माण किया जाता है। इन टोलियों के निर्मा में व्यक्तियों की अपनी इच्छा की ओर ध्यान नहीं दिया जाता। इस अवसर प टोलियाँ साधारणतः निम्न पद्धति से बनाई जाती हैं :—

मानलो कि सात टोलियाँ बनानी हैं तब फिर नामों की सूची में एक से शु कर सात तक संख्या लिख दी जावेगी फिर उस सूची की क्रमसंख्या आठ पर वाप एक की संख्या से शुरु होकर चौदह तक दूसरा सात का क्रम चलेगा और यही तरीक आगे भी दुहराया जायेगा। तत्पश्चात् मानलो कि किसी वर्कशॉप में ३५ व्यक्ति तब फिर एक की संख्या वाले पाँच व्यक्ति प्रथम टोली में और दो की संख्या वाले पाँच दूसरी में और इसी क्रम में सात की संख्या तक सात टोलियाँ बन जावेंगी अलग-अलग विचारधाराओं के व्यक्तियों का मेल नाना प्रकार की समस्यायें सामने लाने में सहायक होता है। अगर कुछ मित्रों को प्रथम सम्मेलन की टोलियों में एक साथ रखा जावे तो उनकी समस्यायें साधारणतः समान होने से समस्यायें अधिक संख्या में प्रस्तुत नहीं हो सकेंगी। वर्कशॉप में विचारार्थ समस्यायें कम संख्या में होने से यह भी सम्भव है कि कुछ महत्त्वपूर्ण प्रसंगों पर विचार न हो सके। प्रत्येक टोली में वर्कशॉप आयोजित करने वाले अधिकारियों में से भी एक व्यक्ति शामिल होता है। इन टोलियों में साधारणतः दस से पन्द्रह तक सदस्य होते हैं। टोलियों के निर्माण के पश्चात् प्रथम सम्मेलन समाप्त हो जाता है।

द्वितीय एवं तृतीय सम्मेलन (समस्याओं का चुनाव)—समस्याओं के चुनाव के कार्य के लिए दो या तीन बैठकें करनी जरूरी होती हैं। प्रत्येक टोली अपनी समस्याओं की एक सूची तैयार करती है। प्रत्येक समस्या को एक कार्ड पर लिख दिया जाता है। इस कार्ड पर प्रेषक टोली की संख्या भी दर्ज कर दी जाती है। तत्पश्चात् ये कार्ड वर्कशॉप कार्यालय में दे दिये जाते हैं। सब टोलियों से जब समस्यायें प्राप्त हो जाती हैं तो अधिकारीगण उनको इस प्रकार से विभाजित करते हैं कि एक विषय से सम्बन्धित समस्याएँ एक-एक साथ इकट्ठी हो जावें। अगर कोई समस्या किसी अन्य व्यापक विषय के अन्तर्गत नहीं आती तो उसको स्वतन्त्र इकाई के रूप में स्थान दे दिया जाता है। एक वर्कशॉप में प्राप्त कुल समस्याएँ अधिक से अधिक बारह व्यापक विषयों के अन्तर्गत आ जावेंगी। प्रत्येक व्यापक विषय के अन्तर्गत उन सब समस्याओं को जिस रूप में वे आई हैं उसी रूप में दर्ज कर

दिया जावेगा। जैसे "शिक्षकों का आर्थिक एवं सामाजिक स्तर" जैसे व्यापक शीर्षक के अन्तर्गत (क) शिक्षकों के वेतन का स्तर, (ख) शिक्षकों का सामाजिक स्तर, (ग) शिक्षकों के रहने की सुविधा, (घ) शिक्षकों के बच्चों की शिक्षा, (ङ) शिक्षक पेंशन के बाद क्या करें, (च) शिक्षक का सामाजिक व्यवहार आदि अनेकों विषय आ जाते हैं। उपरोक्त कार्य पूरा हो जाने के पश्चात् आगामी सम्मेलन आमन्त्रित किया जावेगा।

चतुर्थ सम्मेलन (काम करने वाली टोलियों का निर्माण)—इस सम्मेलन में अधिकारियों द्वारा संकलित समस्याओं की सूचिका प्रत्येक को दे दी जाती है। सदस्य अपनी समस्या को उस तालिका में ढूंढते हैं। उस समस्या के साथ अन्य समस्याओं पर भी दृष्टि डालते हैं क्योंकि प्रस्तावित करने वाले सदस्य का उसी समस्या पर काम करना जरूरी नहीं है। वे मनन करते हैं कि अन्य भी कौन-कौन सी ऐसी समस्यायें हैं जिन पर काम करना अधिक लाभकारी होगा। समस्याओं की संकलित सूची पर यह मत जान लिया जाता है कि उसमें सब टोलियों की समस्याओं को स्थान प्राप्त हो गया है। तत्पश्चात् काम करने वाली टोलियों का निर्माण होता है। अनेक समस्याओं को समाविष्ट करने वाले प्रत्येक व्यापक विषय पर मत लिया जाता है। मत देने वाले व्यक्तियों का नाम उस पर काम करने वालों की सूची में लिख लिया जाता है। ऐसा भी सम्भव हो सकता है कि किसी एक विषय पर कोई भी काम करने की इच्छा न रखता हो। ऐसी अवस्था में उस पर मत प्राप्त नहीं होंगे। वह विषय स्वतः ही समाप्त हो जावेगा। अगर किसी विषय पर तीन से कम मत आवें तो उसके मतदाताओं द्वारा किसी अन्य विषय के चुन लेने पर राजी हो जाने पर वह विषय भी समाप्त हो जावेगा। कुछ विषयों पर काम करने वालों की संख्या बीस तक पहुँच जाती है। इतनी संख्या भी बर्दाश्त करनी चाहिए क्योंकि काम की सुविधा की दृष्टि से उस टोली के सदस्य स्वयं ही अपना काम बाँटकर करने की व्यवस्था कर लेंगे। वर्कशॉप में दबाव डालकर किसी टोली को छोटी नहीं बनाते क्योंकि दबाव से किये गए दो भाग लाभकारी सिद्ध नहीं होते।

ऐसे अवसरों पर कुछ शालाओं के व्यक्ति अपनी शाला की समस्याएँ लेकर आते हैं और वे वर्कशॉप में उन पर ही काम करना चाहते हैं। वर्कशॉप अधिकारी उनकी समस्या को संकलित सूचि में सम्मिलित करके उन्हें उस पर काम करने देते हैं। उन्हें खुले अधिवेशन एवं सब टोलियों के सम्मेलन में जब जब भी वह आयोजित हो भाग लेना जरूरी होता है। उपरोक्त कार्य पूरा होने पर यह सम्मेलन समाप्त हो जाता है।

टोली की प्रथम बैठक (अध्यक्ष और मन्त्री का चुनाव)—प्रत्येक टोली के पहली बार इकट्ठे होने पर अध्यक्ष और मन्त्री के विषय में निर्णय लिया जाता है। कहीं एक व्यक्ति को सारे वर्कशॉप के लिए टोली का नेता चुनते हैं, कभी टोली की प्रत्येक बैठक के लिए नेता चुनते हैं और कभी सबसे अधिक योग्यता वाले व्यक्ति को नेता चुन लिया जाता है।

बैठकों की कार्यवाही का ब्योरा रखने को एक व्यक्ति का मन्त्री के रू
भी चुनाव कर लिया जाता है। टोली को अपने कार्य में सफलता प्राप्ति बहुत
में उपयुक्त व्यक्तियों को अध्यक्ष और मन्त्री चुनने पर भी निर्भर रहती है।

समस्याओं का हल—समस्या हल करने की स्थिति ही जीवन में कुछ सी
की स्थिति होती है। समस्या एवं उद्देश्य ऊँचे दर्जे का होना चाहिए। उद्दे
निर्णय के पश्चात् उसकी योजना बनाई जानी चाहिए। योजना स्पष्ट तैयार
जानी चाहिए कि उद्देश्य प्राप्ति सामने दृष्टिगत होने लगे। योजना पर काम
किया जाना चाहिए। कुछ काम पूरा होने पर काम का मूल्यांकन करके यह दे
जाना चाहिए कि उद्देश्य के निकट पहुँचा जा रहा है अथवा नहीं। अगर उद्दे
निकट आता दिखाई दे तब उसी मार्ग पर बढ़ते जाना चाहिए। सफलता प्राप्त होगी
अगर प्रथम मूल्यांकन में सफलता निकट आती दिखाई न दे और ऐसा दिखाई दे
हम भटक रहे हैं तब फिर अनुमान के आधार पर नया मार्ग निश्चित किया जा
चाहिए। नवीन मार्ग पर काम शुरू करके इस मार्ग का भी मूल्यांकन किया जा
चाहिए और यह मार्ग अगर सही है तब फिर इस पर आगे बढ़ते जाना चाहिए
सफलता निश्चित ही प्राप्त होगी।

टोली के कार्य को टोली का काम मानने पर कठिनाई आये बिना न
रहती। अगर कठिनाई को जीतना है तो टोली के काम को व्यक्तिगत काम मान
चलना होगा। ऐसी दशा में यहाँ पर तो व्यक्ति केवल अपने ज्ञान के स्थान प
अनेकों व्यक्तियों के ज्ञान का भी लाभ उठा सकता है। इस योग के कारण यह का
व्यक्ति के व्यक्तिगत काम के मुकाबले कई गुना अच्छा होता है।

सम्प्राप्ति (एचीवमेन्ट)—उद्देश्य प्राप्ति के पूर्व कई बार योजना में प
वर्तन एवं मार्ग का मूल्यांकन करना साधारण सी बात है। ऐसा होना ही इस बा
का द्योतक है कि उद्देश्य की ओर सजगता से बढ़ा जा रहा है। कभी-कभी को
टोली इस प्रकार भटक जाती है कि उद्देश्य की ओर अग्रसर नहीं हो पाती। ऐ
अवसर पर टोली के छिन्न-भिन्न हो जाने के भय से बाहरी सहायता की व्यवस्
को बात सोची जाती है। परन्तु वास्तविकता यह है कि ऐसी टोली यह ज्ञान प्रा
करके, कि वह अपनी योजना को कार्यान्वित न कर सकी, अधिक सीख सकेगी ब
स्बत इसके कि किसी बाहरी सहायता से योजना को पूरा करके वह सीखती। ज
टोलियाँ अपनी योजना के अनुसार अपना उद्देश्य प्राप्त करती हैं वे आत्मतो
का अनुभव करती हैं।

योजना की पूर्णता एवं अपूर्णता से अधिक महत्त्वपूर्ण वह दृष्टिकोण है ज
शिक्षकों में वर्कशॉप के अन्तर्गत पैदा करने का प्रयत्न किया जाता है। यही वास्तवि
सम्प्राप्ति (एचीवमेन्ट) है। प्राप्त दृष्टिकोण को हम निम्न वस्तुओं में बाँट सकते
हैं:—

(१) सदस्यों में "एक सबके लिए और सब एक के लिए" की भावना पैदा
होती है।

(२) अकेले काम करने की बजाय टोली में काम करने का चातुर्य पैदा होता है।

(३) व्यक्ति को पूर्ण स्वतन्त्रता रहने से उत्तरदायित्व अनुभव करने की आदत पैदा होती है।

(४) एक व्यक्ति का काम न होकर टोली का काम होने से काम में स्पष्टता का अभाव और भ्रम रहता है। फिर भी काम करना पड़ता है। इस नवीन प्रकार की स्थिति में काम करने का परीक्षण प्राप्त होता है।

(५) जनतन्त्र व्यक्ति की अच्छाई और सच्चाई में विश्वास करता है। जिस व्यक्ति में यह दृष्टिकोण नहीं वह जनतन्त्र की प्रथम आवश्यकता से रहित है। वर्कशॉप में उपरोक्त दृष्टिकोण को व्यक्तियों में उतारने का प्रयत्न रहता है।

(६) मानसिक स्वास्थ्य के अमरीकी विशेषज्ञ श्री बुर्नहाम का यह सिद्धान्त है कि प्रत्येक व्यक्ति के पास योग्य काम, उसकी योजना और उसके करने की स्वतन्त्रता होनी चाहिए। इस सिद्धान्त को वर्कशॉप में कार्यान्वित किया जाकर इस पद्धति में काम करने का दृष्टिकोण पैदा किया जाता है।

उद्देश्य प्राप्ति में सहायक साधन—सहायक साधनों के बिना उद्देश्य प्राप्ति सम्भव नहीं। टोली के आन्तरिक अर्गों के अन्तर्गत उसका प्रत्येक सदस्य भी एक सहायक साधन ही है। उनमें से प्रत्येक उद्देश्य प्राप्ति की ओर बढ़ने में योग देता ही है परन्तु बाहरी साधनों की सहायता भी एक विशेष महत्व रखती है। बाहरी सहायता को हम निम्न शीर्षकों में बांट सकते हैं:—

(क) वर्कशॉप-कार्यकर्त्ता—वर्कशॉप के आयोजन हेतु चार से दस तक कार्यकर्त्ता होते हैं। प्रत्येक टोली को एक कार्यकर्त्ता की सहायता मिले ऐसा आयोजन किया जाता है। इस सहायता से टोली अपने कार्य को समय पर पूरा करने में एवं अन्य महत्वपूर्ण कामों में योग प्राप्त करती है।

(ख) पुस्तकालय—पुस्तकालय वर्कशॉप की प्रथम आवश्यकता है। पुस्तकालय जितना अच्छा होगा काम के स्तर को भी उतना ही ऊँचा उठाया जाना सम्भव है।

(ग) बाहर के व्यक्ति—कुछ बाहर के व्यक्ति, जो विषय विशेष के विशेषज्ञ हों, विशेष समस्याओं पर विचार व्यक्त करने को आमन्त्रित किये जा सकते हैं।

(घ) श्रवणनेत्रोपकरण—यद्यपि हमारे देश में सब जगह सिनेमा, रेडियो आदि का प्रयोग सम्भव नहीं है तथापि इनका प्रयोग कुछ महत्वपूर्ण सूचना एवं ज्ञान सदस्यों तक पहुँचाने के श्रेष्ठ साधनों के अन्तर्गत आता है।

(ङ) यात्रायें—उस समय जब कोई ऐसी समस्या सामने हो जिसके समाधान में कुछ निश्चित स्थानों का निरीक्षण आवश्यक हो, यात्रा एक सहायक साधन के रूप में प्रशंसनीय योग देती है।

खुला अधिवेशन—खुले अधिवेशन में सब सदस्य इकट्ठे होते हैं। वर्कशॉप के प्रत्येक दिन खुले अधिवेशन की व्यवस्था होती है। इस अवसर पर विभिन्न टोलियों की प्रगति की जानकारी साधारणतः सब सदस्यों को दी जाती है। इसी अवसर पर

महमानों के भाषण होते हैं। इसी समय वर्कशॉप के ऐसे सदस्य जो अपने विचार समाज के सामने व्यक्त करना चाहते हैं अभिव्यक्ति का अवसर पाते हैं। खुले वेशन का सबसे बड़ा उपयोग यही है कि वर्कशॉप में इकट्ठे होने वाले सब शि साथ-साथ काम करने का अवसर पाते हैं।

वर्कशॉप की सफलता का मूल्यांकन—प्रत्येक कार्य की सफलता का मूल्य हमें सतर्क करता है और विकासोन्मुख बनाने में योग देता है। इसी दृष्टि से वर्क का मूल्यांकन भी जरूरी है। इसके अन्तर्गत निम्न बिन्दुओं का समावेश होता है

(१) **स्व-मूल्यांकन**—जिसके अन्तर्गत व्यक्ति अपने विकास के विषय में म कर निर्णय लेता है कि उसके ज्ञान का किस सीमा तक विकास हुआ।

(२) **टोली की दृष्टि से मूल्यांकन**—जिसके अन्तर्गत टोली उसको दिये कार्य के आधार पर अपने उद्देश्य प्राप्ति में सफलता का मूल्यांकन करती है।

(३) **सम्पूर्ण समूह की दृष्टि से मूल्यांकन**—सम्पूर्ण समूह, जिस उद्देश्य प्राप्ति हेतु इकट्ठा हुआ है, उस दृष्टि से कितनी सफलता प्राप्त कर सका।

(४) **व्यवस्थापकों की दृष्टि से मूल्यांकन**—व्यवस्थापकगण अपने आयो को किस हद तक सफलता से आयोजित कर सके, इस दृष्टि से भी मूल्यांकन कि जा सकता है।

मूल्यांकन का सम्भव एवं लाभकारी रूप—प्रत्येक टोली को अपने कार्य पूर्ण ब्योरा रखना चाहिये। यही ब्योरा वर्कशॉप के पूर्ण होने पर वर्कशॉ व्यवस्थापकों को दिया जाना चाहिये। सभी टोलियां द्वारा तैयार ब्योरे के आधार वर्कशॉप का ब्योरा तैयार होना चाहिए। यही ब्योरा स्पष्ट करता है कि किस सी तक कार्य हुआ एवं कितनी सफलता प्राप्त हुई।

वर्कशॉप पद्धति एक जनतान्त्रिक पद्धति है। यह व्यक्ति की अच्छाई औ सच्चाई में विश्वास रखती है। उसे अधिकाधिक महत्वपूर्ण कार्य देती है। उस अपेक्षा करती है कि वह उसकी उचित योजना तैयार करेगा और उसे पूरा करेगा व्यक्ति को स्वतन्त्र वातावरण मिले, जिसमें वह अपने सहयोगियों की मदद से, अपन समस्याओं का हल ढूंढने का अवसर पा सके, यही इस पद्धति का उद्देश्य है।

वर्कशॉप पद्धति और बुनियादी शिक्षा—बुनियादी शिक्षा के विस्तार के इ युग में वर्कशॉप पद्धति भारत के लिए एक श्रेष्ठ एवं लाभकारी पद्धति का स्था रखती है। ऐसे गाँव का स्कूल जिसके आस-पास कुछ बुनियादी शालायें हों वर्कशॉ प्रारम्भ करने के लिए लाभकारी हो सकता है। पन्द्रह दिन में या एक हफ्ते में प्रत्येक शनिवार को विभिन्न शालाओं के अध्यापक यहाँ साढ़े ग्यारह बजे के करीब इकट्ठे हो सकते हैं। वे साढ़े तीन बजे से साढ़े चार बजे तक सम्मेलन कर सकते हैं। तत्पश्चात् आधा घण्टा आराम करके पाँच बजे टोलियों में विभक्त होकर साढ़े छ बजे तक बुनियादी शिक्षा में पैदा होने वाली समस्याओं पर विचार विनिमय कर हैं। विदेशों में वर्कशॉप इसी पद्धति से चलाये जाते हैं और साधारणतः प्रत्येक

[illegible]

नियमित काम पूरा करके किसी केन्द्र की शाला में इकट्ठा होते हैं और वर्कशॉप पद्धति से विचार विनिमय का अवसर पाते हैं।

सारांश

प्रस्तावना—वर्कशॉप पद्धति भारत के लिए एक नवीन पद्धति है परन्तु आज के युग में एक जरूरी पद्धति का रूप धारण करती जा रही है।

वर्कशॉप पद्धति के उद्देश्य—

(१) शिक्षकों के बीच की खाई को पाटना।
(२) सार्वलौकिक भलाई करते हुए अपनी भलाई करने का अवसर देना।
(३) निजी एवं दैनिक जीवन की समस्याओं पर विचार करने का अवसर देना।
(४) सहयोग से काम करने की आदत पैदा करना।
(५) कक्षा के कार्य में सुधार हेतु योग देना।
(६) शिक्षकों को अपने ज्ञान के तुलनात्मक मूल्यांकन का अवसर देना।
(७) सहयोग से सहायक उपकरणों की तैयारी का अवसर देना।
(८) शिक्षक के लिए जरूरी गुणों के विकास का अवसर देना।

वर्कशॉप का आयोजन—

प्रथम सम्मेलन—इसमें प्रार्थना, आपसी परिचय एवं कार्य योजना स्पष्ट की जाती है और समस्या चुनने वाली टोलियों का निर्माण किया जाता है।

द्वितीय एवं तृतीय सम्मेलन—समस्याओं का चुनाव किया जा कर उनका विभिन्न प्रमुख समस्याओं के अन्तर्गत समावेश किया जाता है।

चतुर्थ सम्मेलन—प्रत्येक व्यक्ति समस्या को चुनता है और काम करने वाली टोलियों का निर्माण होता है।

टोली की प्रथम बैठक—इस अवसर पर अध्यक्ष और मन्त्री का चुनाव किया जाकर कार्य की योजना तैयार की जाती है।

समस्याओं का हल—समस्या की पूर्ति की योजना तैयार की जाती है। योजना पर काम करना शुरू होता है। आंशिक कार्य का मूल्यांकन होता है। योजना में आवश्यकतानुसार सुधार किया जाता है। तत्पश्चात् जरूरत होने पर नवीन तरीके से भी काम शुरू होता है। कार्य का फिर से मूल्यांकन होता है। जब नया मार्ग समस्या की पूर्ति के निकट ले जाता है, तब फिर उसी योजना पर काम करते चले जाना पड़ता है।

सम्प्राप्ति—योजना की सम्प्राप्ति का मूल्यांकन इस दृष्टि से किया जाता है कि वर्कशॉप द्वारा सदस्यों में जनतान्त्रिक दृष्टिकोण और समूह में काम करने की आदत किस हद तक पैदा हुई है?

सहायक साधन—कार्य में सहायता की दृष्टि से वर्कशॉप के कार्यकर्ता,

पुस्तकालय, बाहर के भाषक, श्रवणनेत्रोपकरण, व यात्राएँ लाभकारी हो सकती हैं

खुला अधिवेशन—खुला अधिवेशन विभिन्न टोलियों एवं उनके सदस्यों बीच एकता स्थापित करने की दृष्टि से महत्वपूर्ण है।

वर्कशॉप की सफलता का मूल्यांकन एवं मूल्यांकन का लाभका रूप—इसकी सफलता का मूल्यांकन व्यक्ति, टोली, सम्पूर्ण समूह या अधिकारि की दृष्टि से अलग-अलग प्रकार से किया जा सकता है। परन्तु मूल्यांकन का लाभका स्वरूप प्रकाशित रिपोर्ट है जो यह स्पष्ट करती है कि कितना और किस स्तर प काम हुआ है।

उपसंहार—यह एक ऐसी पद्धति है जो नागरिकों को जनतान्त्रिक तरीके काम करना सिखाती है।

वर्कशॉप पद्धति और बुनियादी शिक्षा—बुनियादी शिक्षा के प्रसार के युग में पैदा होने वाली नई-नई समस्याओं के हल करने में वर्कशॉप पद्धति निश्चय ही लाभकारी सिद्ध होगी।

अभ्यासार्थ प्रश्न

(१) वर्कशॉप पद्धति के उद्देश्य स्पष्ट करते हुए यह बताइए कि इस तरीके से क्या-क्या लाभ हैं?

(२) आपको अपनी शाला में पन्द्रह दिवसीय वर्कशॉप का आयोजन करना है। इस आयोजन की रूप-रेखा तैयार कीजिए और प्रत्येक बिन्दु के समावेश के कारण विस्तार से दीजिए।

अध्याय २४

कुछ अन्य शिक्षण पद्धतियाँ और बुनियादी शिक्षा

प्रस्तावना—किंडर गार्टेन, मांटेसरी, डाल्टन व योजना पद्धति आदि प्रमुख पद्धतियों के साथ-साथ समय-समय पर कुछ अन्य शिक्षण पद्धतियाँ भी प्रचलित हुईं। यद्यपि ये प्रणालियाँ इतनी अधिक विस्तृत, संगठित, व्यापक एवं गहन नहीं तथापि उपयोगी अवश्य है। प्रत्येक में अपनी एक विशेषता है। इस प्रकार की शिक्षण पद्धतियाँ निम्नलिखित हैं :—

(क) विनेटिका पद्धति—

इस पद्धति के निर्माता डा० कार्लटन वाशबर्न हैं। आपने लगभग सौ शिक्षा शास्त्रियों द्वारा प्रचलित सभी पद्धतियों का अध्ययन कर एक पद्धति निकालने की ओर प्रेरित किया। फलस्वरूप जो पद्धति निर्धारित की गई उसका प्रयोग सर्वप्रथम विनेटिका नामक स्थान में किए जाने के कारण इस प्रणाली का नाम विनेटिका पद्धति रखा गया।

विनेटिका पद्धति की अधारभूत विचारधारा :—

(१) बालकों को उनके व्यक्तिगत भेदों के अनुसार विकास करने का अवसर दिया जाना चाहिये।

(२) बालक की प्रारम्भिक शिक्षा का प्रबन्ध उसकी मूल प्रवृत्तियों एवं प्रकृति के अनुसार किया जाना चाहिए।

(३) बालक को पूर्ण स्वतन्त्रता होनी चाहिए।

(४) बालक के व्यक्तित्व का विकास इस प्रकार होना चाहिए कि व्यक्ति और समाज दोनों को ही लाभ हो।

(५) समाज का उपयोगी नागरिक बनने के हेतु उसे ज्ञान तथा कौशल दोनों ही प्राप्त करना चाहिए।

(६) पाठ्यक्रम का एक भाग सामाजिक जीवन की आवश्यकताओं को पूरा करने वाला होना चाहिए तथा दूसरा भाग व्यक्तित्व का विकास करने वाला होना चाहिए।

विनेटिका पद्धति द्वारा शिक्षण—विनेटिका पद्धति पर बहुत अधिक प्रभाव मांटेसरी योजना तथा डाल्टन पद्धतियों का है।

(१) शैक्षणिक उपकरणों का प्रयोग—मांटेसरी पद्धति की भाँति इस पद्धति में भी शैक्षणिक उपकरणों का प्रयोग आवश्यक माना गया है जिसके प्रयोग से बालक में दक्षता आती है।

(२) इच्छानुसार विषयों का चयन—बालक को अपनी रुचि तथा क्षमता के अनुसार विषयों के चयन की स्वतन्त्रता रहती है।

(३) लक्ष्य पत्रक—बालक के लिए कुछ काम निर्धारित कर दिया ज
है जो एक कार्ड (लक्ष्य पत्रक) पर लिखा होता है। बालक अपनी रुचि व योग्यत
अनुसार जितना कार्य पूरा करता है उसी पत्रक पर लिख देता है जिससे उस
उन्नति का ज्ञान रहता है।

(४) सहायक सामग्री—शाला की ओर से अनेक उपकरणों, पुस्तकों, प
पत्रिकाओं की व्यवस्था की जाती है।

(५) सामूहिक कार्य—बालकों से सामूहिक कार्य कराये जाते हैं। यही न
तीव्र बुद्धि बालक जब अपना कार्य पूरा कर लेते हैं तो उन्हें पिछड़े हुए बालकों
सहयोग देने में लगाया जाता है।

(६) योजना कार्य—किसी भी एक योजना द्वारा रचनात्मक कार्य क
उसके आधार पर ज्ञान कराना। जैसे शिवाजी के अभिनय की योजना के लिये स्टे
का निर्माण, पार्ट्स लिखना, याद करना, अभिनय करना, खर्च का ब्यौरा लगा
आदि बालक स्वयं सीख सकेंगे।

(ख) गेरी पद्धति—

अमेरिका में शिकागो नगर के पास गेरी नगर में कारखानों की अधिकता
कारण घनी बस्ती हो गई। शाला भवन आवश्यक सामग्री आदि का अभाव प्रती
होने लगा। इस आपत्ति को दूर करने के लिए महाशय विलियम वर्ट ने एक पद्धति
प्रचलित की उसका नाम गेरी पद्धति है।

गेरी पद्धति की आधारभूत विचारधारा :—

(१) **शिक्षा में चार क्रियाओं का समावेश**—बालक की शिक्षा में च
क्रियाओं की प्रमुखता होनी चाहिए—(१) खेल और व्यायाम, (२) कारखाना तथ
प्रयोगशाला के काम, (३) सामाजिक तथा रचनात्मक कार्य, (४) ज्ञानात्मक विषयों
का अध्ययन।

(२) **भवन तथा सामग्री का अधिकाधिक प्रयोग**—वर्ट महाशय ने देखा कि
शाला भवन तथा सामग्री का प्रयोग केवल एक तिहाई समय के लिए ही छात्र करते
हैं अतः उसने प्रत्येक कक्षा में अधिक छात्रों को प्रवेश दिया तथा उनके ३ गुट बना
दिये। एक गुट एक समय कक्षा के कमरे में अध्ययन कर रहा है तो उसी समय दूसरा
कक्षा के बाहर प्रकृति निरीक्षण, व्यायाम, खेल आदि में व्यस्त है तो तीसरा गु
प्रयोगशाला या कारखाने के कमरे में काम कर रहा होता है। अर्थात् कुछ अधिक
अध्यापकों की संख्या से एक ही भवन तथा सामग्री अधिक बालकों के प्रयोग में लाई
जा सकती है।

(३) **क्रियाशीलता का सिद्धान्त**—बालक क्रियाशील होते हैं अतः बालकों
को खेल-कूद आदि के आधार पर सीखने का अवसर देना चाहिए।

(४) **सर्वाङ्गीण विकास**—बालक के सम्पूर्ण व्यक्तित्व का विकास किया
जाना चाहिए। उसे हृदय, हाथ और मस्तिष्क के समन्वय की शिक्षा दी जानी

गेरी पद्धति द्वारा शिक्षण—साधारणतया यह पद्धति विद्यालय संगठन की एक पद्धति ही मानी जानी चाहिए। पाठ्यक्रम में ऐसे विषय भी होते हैं जिनका पढ़ाया जाना कक्षा के कमरे के बाहर सम्भव हो। शाला का दैनिक समय प्रातः ८ से ५ बजे तक होता है। अध्यापक अपने निश्चित समय पर आकर चले जाते हैं। यह पद्धति योजना पद्धति की विशेषताओं को अपनाती है। कक्षा शिक्षण अधिक नहीं किया जाता है। बालकों को स्वयं के ज्ञानार्जन के लिए प्रेरित किया जाता है। प्रारम्भिक शिक्षा से लेकर उच्चतम शिक्षा तक के सभी छात्र एक ही भवन व एक ही समय में अध्ययन करते हैं। बालक बालिकाएँ एक साथ पढ़ते हैं। शाला में छुट्टियाँ नहीं होती।

(ग) बटेविया पद्धति :—

अमेरिका के बटेविया नगर में जॉन केनेडी महोदय ने कक्षा शिक्षण एवं व्यक्ति शिक्षण के समन्वय की दृष्टि से जो पद्धति चलाई उसे बटेविया पद्धति कहते हैं।

बटेविया पद्धति की आधारभूत विचारधारा :—

(१) **कक्षा शिक्षण एवं व्यक्तिगत शिक्षण में समन्वय**—कक्षा में सामूहिक शिक्षण होता है। छात्रों की बढ़ती हुई संख्या सामूहिक शिक्षण को कठिन एवं दोषपूर्ण बनाती जा रही थी। केनेडी महाशय ने कक्षा में अधिकाधिक छात्रों को भर्ती कर तथा एक और शिक्षक कक्षा में प्रदान करने की प्रणाली निकालो ताकि एक अध्यापक कक्षा का सामूहिक शिक्षण करे तथा दूसरा व्यक्तिगत आपत्तियों का निवारण करे।

(२) **छात्रों में आत्मनिर्भरता उत्पन्न करना**—छात्रों को स्वाध्याय के लिए प्रेरित करना चाहिए। उन्हें स्वतन्त्र रूप से कार्य की ओर लगाना चाहिए।

(३) **तीव्र एवं मन्द बुद्धि वालों की सहायता**—कक्षा अध्यापन सामूहिक अध्यापन है जिसमें तीव्र एवं मन्द बुद्धि बालकों को सामान्य स्तर के बालकों के अनुकूल समझ लिया जाता है। इस प्रकार दोनों प्रकार के बालकों को अपनी स्वाभाविकता, रुचि एवं क्षमता के अनुसार अध्ययन का अवसर नहीं मिलता। अतः अतिरिक्त अध्यापक द्वारा यह आपत्ति दूर की जानी चाहिए।

बटेविया पद्धति द्वारा शिक्षण—सर्वप्रथम अध्यापक को बालक से सम्पर्क स्थापित कर उसकी कठिनाइयों एवं व्यक्तिगत आपत्तियों व समस्याओं की जानकारी प्राप्त करनी चाहिये। विषयाध्यापक के साथ-साथ विशेष शिक्षक को छात्र की इन कमजोरियों को दूर करने का प्रयत्न करना चाहिए। बालकों को एकान्त अध्ययन का अवसर भी दिया जाना चाहिए। बालकों को उत्साहित कर आत्म-विकास की ओर अग्रसर किया जाना चाहिये। इस पद्धति में भी कक्षा के दो ग्रुप किये जाते हैं। विषयाध्यापक एक ग्रुप का अध्यापन करता है तब तक विशेष अध्यापक दूसरे ग्रुप की व्यक्तिगत कठिनाइयों को दूर करता है। इस प्रकार व्यक्तिगत शिक्षण एवं सामूहिक शिक्षण इस पद्धति द्वारा किया जाता है।

(घ) डेक्राली पद्धति :—

बेल्जियम देश के निवासी ओविड डेक्राली ने एक नई पद्धति निकाली जिसे डेक्राली पद्धति कहते हैं।

डेक्राली पद्धति की आधारभूत विचारधारा :—

(१) जीवन द्वारा जीवन की शिक्षा—शिक्षा का उद्देश्य वास्तविक जीवन की तैयारी होना चाहिए। बालक को समाज का उपयोगी नागरिक बनने में ही शिक्षा की सफलता विद्यमान है। जीवन की यह शिक्षा केवल जीवन द्वारा ही दी जा सकती है। अतः बालक के वातावरण को यथार्थ जीवन से सम्बन्धित बनाना चाहिये।

(२) शिक्षालय को घर व समाज का प्रतिरूप होना चाहिए—शाला व घर में साम्य होना चाहिए। घरेलू जीवन तथा सामाजिक जीवन की प्रतिच्छाया शाला में लक्षित होनी चाहिये घर और शाला में वातावरण भिन्न नहीं होना चाहिये।

(३) यथार्थ जीवन की चार प्रधान आवश्यकताएँ—बालक की रुचि जीवन की निम्नलिखित चार प्रधान आवश्यकताओं पर निर्भर होती है—

(१) भोजन प्राप्ति, (२) प्राकृतिक तत्वों—गर्मी, शीत, वर्षा—आदि से सुरक्षा, (३) शत्रुओं से प्राण रक्षा, (४) काम करने की इच्छा। शाला में शिक्षा की इन सभी आवश्यकताओं की पूर्ति के साधन सिखाने चाहिएँ।

(४) रुचि पूर्ति द्वारा अन्य विषयों की शिक्षा—इन्हीं आवश्यकताओं की पूर्ति के सहारे गणित, भूगोल, भाषा, इतिहास आदि विषय पढ़ाये जाते हैं। इस विधि में सानुबन्ध का पूरा ध्यान रखना चाहिए।

डेक्राली पद्धति द्वारा शिक्षण—इस पद्धति में माटेसरी पद्धति एवं योजना पद्धति का समन्वय है। पाठ्यक्रम बालक केन्द्रित होता है। शाला का वातावरण प्राकृतिक होना चाहिए। बालकों से कमरों की सजावट कराई जानी चाहिए। शिक्षा खेल द्वारा प्रदान की जानी चाहिए। भ्रमण आदि द्वारा निरीक्षण व अनुभव के आधार पर शिक्षा ग्रहण करने का अवसर दिया जाना चाहिए। मछली मारना, घुड़सवारी, विभिन्न वस्तुओं, पत्तियों, कीड़े-मकोड़ों का संग्रह आदि जीवन के आवश्यक कार्य सिखाये जाने चाहिएँ। पशुपालन, सफाई, बागवानी, कृषि, मुर्गीपालन आदि व्यवसाय सिखाने चाहिएँ। बालकों को पुस्तकों का अध्ययन नहीं कराना चाहिए वरन् उनको ऐसा अवसर देना चाहिये कि वे अपने अनुभवों को पुस्तक के रूप में लिखकर अपनी पुस्तक बना डालें। बालक को पूर्ण स्वतन्त्रता दी जानी चाहिए।

(ङ) निरीक्षित स्वाध्याय प्रणाली (Supervised Study) :—

प्रायः छात्रों को घर पर पढ़ाई का कार्य करने का अवसर नहीं मिलता क्योंकि निर्धनता, स्थानाभाव, कुटुम्ब के सदस्यों की अधिकता आदि बालक को घर पर पढ़ाई का पूर्ण अवसर प्रदान नहीं करते। इसके कारण बालक एक ओर जहाँ समय का पढ़ाई में सदुपयोग नहीं कर पाते वहाँ दूसरी ओर वे स्वावलम्बी एव आत्मनिर्भर नहीं बन पाते। उनमें उत्तरदायित्व का बोझ उठा सकने की क्षमता

उत्पन्न नहीं हो पाती। अतः व्यक्तिगत विकास का पूरा अवसर प्रदान करने की दृष्टि से अमेरिका के प्रोफेसर ए० एल० हालक्वेस्ट ने निरीक्षण स्वाध्याय प्रणाली की रचना की।

इस विधि में एक घण्टे से डेढ़ घण्टे तक का समय लगाया जाता है। इसमें अध्यापक बालकों को अध्ययन विशेष के लिये उत्तेजित कर उनके सामने समस्यायें प्रस्तुत कर उन्हें उनके हल ढूंढने की ओर प्रवृत्त करता है। छात्र स्वयं कार्य में लग जाते हैं। अध्यापक उनका निरीक्षण करता रहता है। आवश्यकतानुसार त्रुटि सुधार एवं पथ-प्रदर्शन करता है।

(च) सुकराती पद्धति (Socratic Method) :—

सुकराती पद्धति एक प्रकार की प्रश्नोत्तर पद्धति है, जिसमें निष्कर्ष न देकर शिक्षक बालकों से प्रश्न पूछकर उन्हें ज्ञान देने का प्रयत्न करता है। ये प्रश्न भी बालकों से अलग-अलग स्थान पर आवश्यकतानुसार पूछे जाते हैं और उनके द्वारा प्राप्त उत्तरों के आधार पर ही उनसे निर्णय निकलवाया जाता है। जब बालक कहीं भी कोई गलती करते हैं, तब भी इन्हीं प्रश्नों के आधार पर उनसे उनकी उस गलती को सही कराया जाता है और उन्हें यह अनुभव कराया जाता है कि उन्होंने बिना सोचे-समझे एवं गम्भीरता से विचार किये हुए ही कोई बात कह डाली है। सम्पूर्ण ज्ञान निरीक्षण, अनुभव, विचार एवं तर्क की कसौटी पर कस कर प्राप्त किया जाता है। इस तरीके में भाषण की प्रथा नहीं है।

बुनियादी शिक्षा तथा उपरोक्त शिक्षण पद्धतियाँ—बुनियादी शिक्षा स्वयं संगठित, विस्तृत, व्यापक, गहन, प्रमुख एवं सर्वांगपूर्ण शिक्षण पद्धति है पर उपरोक्त पद्धतियाँ संक्षिप्त प्रणालियाँ हैं जो इन विस्तृत एवं प्रमुख पद्धतियों में सहयोग देती हैं। साधारणतया ये प्रणालियाँ प्रमुख पद्धतियों से ही उत्पन्न हुई हैं। बुनियादी शिक्षा में भी इन शिक्षण पद्धतियों के प्रयोग के लिए गुंजाइश है। अध्यापक को आवश्यकतानुसार इन प्रणालियों का प्रयोग कर बुनियादी शिक्षा के आधार पर चलने वाले कार्य को सफल बनाना चाहिए।

सारांश

प्रस्तावना—किंडर गार्टन, माटेसरी, डाल्टन व योजना पद्धति आदि पद्धतियों के साथ-साथ कुछ अन्य उपयोगी पद्धतियाँ भी प्रचलित हुईं।

(क) विनेटिका पद्धति—डा० कार्लटन वाशबर्न ने लगभग सौ शिक्षा शास्त्रियों की समिति में परामर्श कर एक पद्धति की रचना की जिसे विनेटिका नामक स्थान की शाला में प्रयोग कर उसका नाम विनेटिका पद्धति रखा।

विनेटिका पद्धति की आधारभूत विचारधारा—बालकों को व्यक्ति भेद, मूल प्रवृत्तियों, रुचि एवं क्षमता के अनुसार शिक्षा देना, समाज का उपयोगी

नागरिक बनाना, उन्हें पूर्ण स्वतन्त्रता देना आदि प्रमुख बिन्दुओं पर यह पद्धति आधारित है।

विनेटिका पद्धति द्वारा शिक्षण—यह पद्धति डाल्टन, मांटेसरी एवं योजना पद्धतियों का समन्वित रूप है। इसमें शैक्षणिक उपकरणों का प्रयोग, इच्छानुसार विषयों का चयन, लक्ष्य पत्रक, सामूहिक कार्य, योजना कार्य आदि बातों पर ध्यान दिया जाता है।

(ख) गेरी पद्धति—अमेरिका के विलियम वर्ट ने शाला भवन एवं सामग्री के अधिकाधिक प्रयोग के दृष्टिकोण से जो पद्धति चलाई उसे गेरी पद्धति कहते हैं।

गेरी पद्धति की आधारभूत विचारधारा—बालक का सर्वाङ्गीण विकास, उसकी क्रियाशीलता का उपयोग, भवन तथा सामग्री का अधिकाधिक प्रयोग एवं जीवन की अनिवार्य आवश्यकताओं की पूर्ति की शिक्षा आदि इस पद्धति के आधार हैं।

गेरी पद्धति द्वारा शिक्षण—वस्तुतः तो यह विद्यालय के संगठन की ही पद्धति है तथापि इसमें योजना पद्धति की विशेषताएँ हैं।

(ग) वटेविया पद्धति—कक्षा शिक्षण एवं व्यक्ति शिक्षण के समन्वय की दृष्टि से अमेरिका के जॉन केनेडी ने वटेविया नगर में एक पद्धति चलाई। उसे वटेविया पद्धति कहते हैं।

वटेविया पद्धति की आधारभूत विचारधारा—कक्षा शिक्षण एवं व्यक्तिगत शिक्षण में समन्वय, छात्रों में आत्मनिर्भरता उत्पन्न करना, तीव्र एवं मन्दबुद्धि बालकों की विशेष सहायता करना आदि इस पद्धति के आधार हैं।

वटेविया पद्धति द्वारा शिक्षण—एक कक्षा में छात्रों की संख्या लगभग ५० होती है पर अध्यापक दो। एक विषयाध्यापक एवं दूसरा विशेषाध्यापक। कक्षा को दो ग्रुप में बांट कर एक ग्रुप को विषयाध्यापक पढ़ावे तब तक दूसरा दूसरे ग्रुप का व्यक्तिगत शिक्षण करे।

(घ) डेक्राली पद्धति—बेल्जियम देश के निवासी ओविड डेक्राली ने एक नई पद्धति निकाली जिसे डेक्राली पद्धति कहते हैं।

डेक्राली पद्धति की आधारभूत विचारधारा—जीवन द्वारा जीवन की शिक्षा, विद्यालय का घर व समाज का प्रतिरूप बनना, यथार्थ जीवन की आवश्यकता पूर्ति करना सिखाना, रुचि के आधार पर अन्य विषयों का शिक्षण आदि इस पद्धति के आधारभूत बिन्दु हैं।

डेक्राली पद्धति द्वारा शिक्षण—इस पद्धति में मांटेसरी पद्धति एवं योजना पद्धति का समन्वय है। खेल एवं व्यवहार के आधार पर शिक्षा दी जानी चाहिए।

(ङ.) निरीक्षित स्वाध्याय प्रणाली—घर के वातावरण में निर्धनता, स्थानाभाव, घर के कार्य की अधिकता, सदस्यों की अधिक संख्या के कारण बालक घर पर पढ़ाई का कार्य सुविधापूर्वक नहीं कर सकता, अतः उसे निरीक्षित स्वाध्याय अध्यापकों द्वारा पढ़ने का अवसर दिया जाना चाहिए।

(घ) सुकराती पद्धति—यह एक प्रकार की प्रश्नोत्तर पद्धति है। इसमें भाषण की प्रथा नहीं है।

बुनियादी शिक्षा तथा उपरोक्त शिक्षण पद्धतियाँ—बुनियादी शिक्षा की तरह ये पद्धतियाँ व्यापक सगठित, विस्तृत एवं सूक्ष्म नहीं हैं तथा इनमें से कोई भी प्रणाली राष्ट्रीय शिक्षा नहीं बन सकती। यह अवश्य है कि बुनियादी शिक्षा यथावश्यक इन प्रणालियों के प्रयोग द्वारा अधिक सफल बन सकती है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

(१) इन पद्धतियों में से कौन-सी पद्धति आपकी दृष्टि में अधिक उपयुक्त है और क्यों? सविस्तार लिखिये।
(२) इन पद्धतियों में से कौन-सी पद्धति बुनियादी शिक्षा के लिए अधिक उपयुक्त ठहरती है और किस प्रकार? स्पष्ट विवेचन कीजिये।

अध्याय

परीक्षा : पद्धति

प्रस्तावना—परीक्षा का मूल्य अब धीरे-धीरे छात्रों की दृष्टि से कम जा रहा है और शिक्षकों की दृष्टि से बढ़ता जा रहा है। परीक्षा में आधुनि विचारधारा यह है कि शिक्षा के सभी उद्देश्यों की परीक्षा ली जाय। अगर वे नहीं हो पा रहे है तो शिक्षण पद्धति में सुधार किया जाय। शिक्षण पद्धति में कोई कमी नहीं है तो फिर उद्देश्यों पर दृष्टि डाली जाय परन्तु इस सत्यता क सिद्धान्त का कोई भी पक्ष ऐसा न हो जो व्यवहार में न उतारा जा सके प्रमा किया जाय। प्रचलित परीक्षाएँ तो केवल छात्रों के बौद्धिक ज्ञान की ही जाँच क है। अतः वे दोषपूर्ण है।

प्रचलित परीक्षा प्रणाली के दोष—प्रथम दोष तो यह है कि छात्र शिक्षक दोनों ही शिक्षा के वास्तविक उद्देश्य को भूलकर परीक्षाओं में सफलता ही उद्देश्य मान बैठे है।

दूसरा दोष यह है कि शिक्षक बालक को पढ़ाने की बजाय पाठ्य-विषयों पढ़ाने की दौड़ में लग गये है।

तीसरा दोष इस परीक्षा-प्रणाली मे यह है कि यह छात्र के रटने की त कठाग्र कर लिखने की प्रेरणा व आदत डालती है। बुद्धि से समझ कर कार्य क की प्रणाली पर कुठाराघात करती है। यही कारण है कि अच्छी शिक्षा प्राप्त क के प्रमाण-पत्र मिल जाने पर भी उनमें वांछनीय गुणों का विकास नहीं होता।

चौथा दोष यह है कि विचारशक्ति का विकास नहीं करती। छात्र ने कुछ पढ़ा उसे मान कर उसे परीक्षा में उत्तर के रूप में लिख देना पड़ता है।

पाँचवाँ दोष यह है कि जीवन की आवश्यकताओं से सामजस्य नहीं रखती वर्तमान शिक्षा व परीक्षा जीवन की समस्याओं का हल नहीं बताती वरन् केव एकागी विकास करने का प्रयत्न करती है।

छठा दोष यह है कि यह परीक्षा-प्रणाली सामूहिक परीक्षा का रूप लिए जिसमें व्यक्तिगत विकास को कोई स्थान नहीं।

सातवाँ दोष यह है कि इसके द्वारा यह पता नहीं लगता कि बालक की प्रग की गति क्या है।

आठवाँ दोष यह है कि इसके द्वारा शिक्षक को यह पता नहीं लग पाता कि उसके शिक्षण मे कौन-कौन सी कमियाँ और अच्छाइयाँ है। इस कारण वह अपने पढ़ाने मे सुधार करने से वंचित रह जाता है।

नवाँ दोष यह है कि उत्तर-पुस्तिकाओं को जाँचने की प्रणाली उचित नहीं। एक बार छात्र की परीक्षा की कापी आठ परीक्षकों के पास भेजी गई, उन में दो

व्यक्तियों ने प्रथम श्रेणी में, तीन ने द्वितीय श्रेणी में, एक ने तृतीय श्रेणी में और दो ने उसे अनुत्तीर्ण घोषित किया। इससे स्पष्ट है कि परीक्षकों के पास उत्तर-पुस्तिकाओं के जांचने का कोई मापदण्ड नहीं है।

दसवाँ दोष यह है कि यह बालक को भाग्यवादी बनाती है। कई बार परिश्रम करने पर भी छात्र फेल हो जाते हैं, और कई बार पढ़ाई की ओर अधिक ध्यान न देने वाले छात्र पास हो जाते हैं। तब बालकों को "अपना भाग्य" कहकर सन्तोष कर लेना पड़ता है।

ग्यारहवाँ दोष यह है कि कतिपय बालकों को अनुत्तीर्ण घोषित कर, हतोत्साहित कर उसी कक्षा में नए आने वाले उत्तीर्ण छात्रों के साथ पढ़ाया जाता है, जिसके कारण उत्साह की दृष्टि से उनमें मेल नहीं खाता।

बारहवाँ दोष यह है कि हमारे यहाँ परीक्षाओं की भरमार है। इस प्रकार वर्तमान परीक्षा-प्रणाली दोषपूर्ण है।

परीक्षा की पद्धतियाँ—पद्धति के अनुसार निम्न प्रकार की परीक्षाओं का आज प्रयोग होता है :—

(१) निबन्धात्मक परीक्षा—इस पद्धति के अन्तर्गत पूछे गए प्रश्नों का उत्तर छात्र, निबन्ध लिखकर दिया करते हैं। निबन्धात्मक परीक्षा छात्र की योग्यता का सही मूल्यांकन नहीं करती। एक छात्र की उत्तर-पुस्तिका का एक ही परीक्षक द्वारा अलग-अलग परिस्थितियों में बार-बार मूल्यांकन किया गया। फलस्वरूप भारी अन्तर सामने आया। इसी कारण इस पद्धति में सुधार होने की एवं इनके स्थान पर नवीन पद्धति की स्थापना की आवश्यकता है। परन्तु इस ओर कोई विशेष कदम अब तक नहीं उठाया गया और साधारणतः हमारे देश में समस्त स्थानों पर इसी पद्धति का प्रयोग हो रहा है।

(२) बुद्धि परीक्षा—किसी प्रश्न के सामने उपस्थित होने पर उचित समय में सब पक्षों को समझ कर अकाट्य एवं सही उत्तर जो व्यक्ति शीघ्रता से दे सकता है उसे हम साधारणतः विद्वान् व्यक्ति कहते हैं। इस विषय में विस्तार से वर्णन पूर्व पुस्तक 'बुनियादी शिक्षा—सिद्धान्त एवं मनोविज्ञान' के बौद्धिक विकास की सीमा एवं बुद्धि परीक्षा नामक पाठ के अन्तर्गत किया जा चुका है। यहाँ तो यही स्पष्ट करना पर्याप्त होगा कि इस प्रयोग का श्रीगणेश सन् १९०४ में सर्व श्री बिने और साइमन ने किया। उन्होंने तीन से पन्द्रह वर्ष तक के बालकों के लिए प्रश्नावली तैयार की, और बालकों पर उनका प्रयोग करके उनमें सुधार किया और उनको अन्तिम रूप दिया। अन्तिम रूप दिये जाने पर वे प्रश्नावलियाँ बालक को उत्तर देने को दी जाती हैं। जो बालक जिस उम्र के बालकों की प्रश्नावली का सही उत्तर दे सकता है वही उस बालक की मानसिक आयु मानी जाती है। स्वयं की आयु से अधिक आयु के बालकों के उपयुक्त प्रश्नावली का सही उत्तर देना तीव्र बुद्धि का द्योतक है और कम आयु के बालकों के उपयुक्त प्रश्नावली का उत्तर देना मन्दबुद्धि का द्योतक है।

(३) पदार्थ परीक्षा (आब्जेक्टिव टेस्ट्स)—आजकल पदार्थ परीक्षा अवैयक्तिक परीक्षा भी कहते हैं नवीन परीक्षा के रूप में अधिक प्रचार में आती रही है। इसमें कुछ निश्चित प्रश्न होते हैं। उन प्रश्नों का स्पष्ट और निश्चित उ कुछ अथवा एक ही शब्द में देना पड़ता है। ऐसी परीक्षा में शिक्षक का व्यक्ति दृष्टिकोण परीक्षाफल को किसी भी प्रकार प्रभावित नहीं कर पाता। अतः परी फल अधिक विश्वसनीय होता है। पदार्थ परीक्षा के निम्न दो प्रमुख प्रकार होते हैं:

(क) स्मरण परीक्षा—जिसके अन्तर्गत यह जाँच की जाती है कि बालक पढ़े हुए ज्ञान का कितना अंश स्मरण है। इसके भी दो भाग हैं:—

(अ) साधारण स्मरण परीक्षा—इसके अन्तर्गत सीधे प्रश्न द्वारा जाँच जाती है। जैसे दस फुट चौड़े और पन्द्रह फुट लम्बे कमरे का क्षेत्रफल क्या है (सही उत्तर दीजिए)।

(आ) पूर्तिकारी परीक्षा—इसके अन्तर्गत रिक्त स्थान की पूर्ति की जाती जैसे दस फुट चौड़े और पन्द्रह फुट लम्बे कमरे का क्षेत्रफल""""" होता है। (पू कीजिए)।

(ख) पहिचान जाँच—इसके अन्तर्गत दिए गये विकल्प को पहिचानना पड़ है। इसके निम्न भाग होते हैं:—

(अ) बहुविकल्प परीक्षा—इसके अन्तर्गत दो से अधिक उत्तर अंकित क दिये जाते हैं और सही उत्तर पर सही का निशान (√) लगाने को कहा जाता है जैसे—महाराणा प्रताप के पिता का नाम था? (१) संग्रामसिंह, (२) अमरसिं (३) उदयसिंह, (४) रत्नसिंह।

(आ) द्विविकल्प परीक्षा—इसके अन्तर्गत पूछे गये प्रश्नों के केवल दो उत्तर है। इस क्रम में सत्य एवं असत्य को बालक स्पष्ट करता है जैसे—

(१) महाराणा प्रताप के पिता का नाम उदयसिंह था। सत्य/असत्य।

(२) क्या अकबर के पिता का नाम हुमायूँ था? हाँ/नहीं।

(३) किसी प्रदेश का सबसे बड़ा मन्त्री, प्रधान मन्त्री/मुख्य मन्त्री कहलाता है।

ऐसे प्रश्नों के उत्तर में बालक गलत शब्दों को काट दिया करते हैं।

(इ) मिश्रित सम्बन्ध परीक्षा—इस जाँच के अन्तर्गत अधिकांशतः एक ही मेल के शब्दों में एक शब्द बेमेल भी रख दिया जाता है। ऐसे शब्द को ढूंढ निकालने को कहा जाता है। जैसे—आगामी चार शब्दों के समूह से वह शब्द काट दीजिये जो उस समूह का नहीं है—पेंसिल, कलम, निर्झर, लेखनी, सकड़ी।

(ई) मैचिंग टेस्ट—इस परीक्षा के अन्तर्गत दो समूह में बातों को लिख दिया जाता है। एक समूह में लिखी गई बातों से मिलती हुई बातें दूसरे समूह में लिखी जाती हैं। जितनी बातें एक समूह में होती हैं साधारणतः उतनी ही बातें दूसरे समूह में होती हैं। छात्रों से उपयुक्तता की दृष्टि से दोनों समूहों में लिखी गई बातों का मेल बिठाने को कहा जाता है। जैसे—

प्रथम समूह में लिखी गई जानकारी दूसरे समूह में लिखे गये स्थानों में किसी एक स्थान पर मिलेगी। उसे प्रथम समूह में अंकित कोष्ठक में उपयुक्तता की दृष्टि से अंकित कीजिये।

(   ) शिक्षा के अर्थ (१) पश्चिमी शिक्षा का इतिहास
(   ) भारतीय गणराज्य के प्रधान मन्त्री के अधिकार (२) शिक्षा सिद्धान्त
(   ) रूसो की शिक्षण पद्धति (३) हमारा संविधान
(   ) गंगा नदी का उद्गम व मार्ग (४) स्वास्थ्य शिक्षा
(   ) बच्चों का स्वास्थ्य (५) नवीन एटलस—भारत

उपरोक्त परीक्षा में पांच से पन्द्रह तक प्रश्न पूछे जा सकते हैं।

(३) पुनर्व्यवस्थीकरण परीक्षा—इस परीक्षा के अन्तर्गत दी गई जानकारी अव्यवस्थित रूप में प्रस्तुत की जाती है। छात्रों से उस सम्पूर्ण जानकारी को व्यवस्थित रूप से जमाने को कहा जाता है। व्यवस्थित करने के अन्तर्गत क्रम जैसे छोटे से बड़े की ओर, प्रारम्भ से अन्त की ओर आदि को स्पष्ट कर दिया जाता है। जैसे :—

जिस समय क्रम के अनुसार सवारियों का उपयोग शुरू हुआ वह क्रम सामने लिखे गये कोष्ठक में लिख कर स्पष्ट कीजिए :—

(   ) रेल का उपयोग।
(   ) गाड़ी का उपयोग।
(   ) वायुयान का उपयोग।
(   ) घोड़े का उपयोग।
(   ) मनुष्य का उपयोग।

पदार्थ परीक्षा के अन्तर्गत कुछ अन्य परीक्षाएं भी आती हैं, परन्तु वर्तमान पुस्तक के क्षेत्र को दृष्टि में रखते हुए उपरोक्त परीक्षाओं का ही वर्णन किया जाना उपयुक्त समझा जा रहा है।

(४) सम्प्राप्ति परीक्षा (एचीवमेण्ट टेस्ट)—शिक्षक ने बालक को किस योग्यता से ज्ञान दिया है अथवा बालक ने किस हद तक अपनी योग्यता को बढ़ाया, इस विषय की जाँच सम्प्राप्ति परीक्षा द्वारा की जाती है। इसी परीक्षा को अंग्रेजी भाषा में 'एचीवमेंट टेस्ट' कहते हैं। प्रत्येक आयु के छात्र के लिए प्रश्नावली तैयार की जाती है। प्रश्नावली में सभी विषय के प्रश्नों का समावेश किया जाता है। उसका छात्र पर प्रयोग किया जाता है। प्रयोग के आधार पर उसमें सुधार किया जाता है और अन्तिम रूप दिया जाता है। इस प्रकार आठ वर्ष की आयु के छात्र के लिए तैयार की गई प्रश्नावली का जो छात्र पूर्णतः सही उत्तर दे सकता है उसकी सम्प्राप्ति आयु एवं पठन आयु आठ वर्ष मानी जावेगी। अगर इस छात्र की जन्म के अनुसार आयु भी आठ वर्ष है तब उसकी पठन-योग्यता साधारण मानी जावेगी। जन्म के अनुसार आठ वर्ष की आयु का कोई छात्र पाँच वर्ष की आयु के छात्रों की प्रश्नावली का ही सही उत्तर दे सकता है और कोई छात्र बारह वर्ष की आयु के छात्रों

महत्व की दृष्टि से समय-समय पर शालाओं में उनका प्रयोग होता है।

परीक्षा में नवीनतम दृष्टि—यद्यपि पदार्थ परीक्षाओं के श्रीगणेश ने बहुत सी सहूलियतें पैदा कर दीं। उदाहरणतः उनसे परीक्षा थोड़े समय में होने लगी, उनसे छात्रों के ज्ञान के अधिक विस्तृत क्षेत्र की जाँच होने लगी। उत्तर-पुस्तिकाओं के अंकन में समानता आने लगी, फिर भी यह सारा कार्य अपूर्ण ही रहा। इस दृष्टि से कि इससे भी बालक के सम्पूर्ण व्यक्तित्व की जाँच होना सम्भव नहीं हुआ। शिक्षा तो बालक को ज्ञान ही नहीं देती वरन् उसके व्यवहार में परिवर्तन लाने का यत्न करती है। उसके बौद्धिक स्तर के अतिरिक्त व्यवहार स्तर की जाँच के काम में हम लोगों को अब भी काफी काम करना बाकी है।

पाठ की इकाइयाँ और उनके द्वारा बालक पर प्रभाव—पाठ की प्रत्येक इकाई (यूनिट) के अन्तर्गत जो ज्ञान-ग्रहण की स्थितियाँ (लनिंग सिच्यूएशन्स) छात्र के लिए पैदा होती हैं उनमें साधारणतः निम्नलिखित उद्देश्यों की पूर्ति होने की अपेक्षा की जानी चाहिए :—

(१) छात्र के ज्ञान की वृद्धि हो।
(२) छात्र में उस ज्ञान के आधार पर सामान्यकृत धारणाओं का निर्माण हो।
(३) उसमें इस ज्ञान से सूझबूझ पैदा हो।
(४) उसकी रुचि और मनोवृत्ति उस ओर लगने लगे।
(५) उसमें उस क्षेत्र में कार्य करने की दक्षता पैदा हो।
(६) उस क्षेत्र के प्रति उसमें श्लाघायें विकसित हों।

उपरोक्त उद्देश्यों की पूर्ति किस सीमा तक हो पा रही है इसकी जाँच भी होनी चाहिए। ऐसी जाँच कि जिससे बालक का सर्वाङ्गीण विकास जाँचा जा सके। इस जाँच के लिए लम्बे समय तक अवसर आने का इन्तजार भी न किया जाय वरन् एक इकाई के पूरे होते ही उसके शिक्षण के उद्देश्य पूरे हुए या नहीं यह जाँचा जाए। इससे पाठ की प्रभावोत्पादकता शक्य न रहेगी और बालक में सर्वतोन्मुखी विकास का क्रम चालू रहेगा। अगर जाँच से अपेक्षित उद्देश्यों की पूर्ति सम्भव नहीं तो फिर पाठ्यक्रम और शिक्षा पद्धति पर विचार किया जाये कि उनमें क्या-क्या कमियाँ हैं या फिर यह देखा जाए कि जो उद्देश्य निश्चित किए गये हैं उनमें कहाँ सुधार होना चाहिए।

पाठ के उद्देश्य, ज्ञान ग्रहण की स्थितियाँ और परीक्षण का आपसी सम्बन्ध—वास्तव में उद्देश्यों को सामने रखकर ही पाठ योजना तैयार की जाती है। उसके द्वारा बालक के सामने ऐसी स्थितियाँ उपस्थित की जाती हैं जिनसे बालक सीखे और वह सुधरता जाये। इस परिवर्तन को हो हमें परीक्षा भी करनी पड़ती है। अतः बालक के लिए ज्ञान ग्रहण की परिस्थितियों का शिक्षक द्वारा निर्माण जिस प्रकार उद्देश्य प्राप्ति में सहायक होता है, वैसे ही बालकों का परीक्षण भी उद्देश्य प्राप्ति में सहायक होता है। अतः उद्देश्य, ज्ञान ग्रहण की परिस्थितियाँ और परीक्षा—तीनों ही एक दूसरे से सम्बद्ध हैं।

परीक्षा की नवीनतम पद्धति—उपरोक्त आधार पर ही अब परीक्षा इतना विस्तृत और व्यापक बनाया जा रहा है कि जिससे बालक में होने मुखी परिवर्तन को समझा जा सके। इस दृष्टि से निम्नलिखित तरीकों को जरूरी है :—

(१) लिखित परीक्षा—इसमें लिखित उत्तर की अपेक्षा की जाती उत्तर लेख के रूप में या यथार्थ परीक्षा के संक्षिप्त उत्तरों की तरह हो स इससे छात्रों के बौद्धिक-ज्ञान, उनकी तार्किक शक्ति, उनकी वर्णन शक्ति शक्ति और जानकारी को व्यवस्थित रूप में प्रस्तुत करने की योग्यता की जा सकती है।

(२) व्यवहार निरीक्षण—इसमें छात्र के व्यवहार पर नजर रखकर समाज से व्यवस्थीकरण एवं भावनात्मक विकास को जाँचने का यत्न किया है। इनमें उन अवसरों का बड़ा महत्व है जहाँ छात्र का विशेष प्रकार का इन बातों को प्रमाणित करने में सहायक होता है।

(३) प्रश्नावलियों का प्रयोग—छात्रों के सामने प्रश्नावलियाँ प्रस्तुत उनके प्रभावों का अध्ययन किया जाता है। इससे उनकी रुचियों और मनो के अध्ययन करने में मदद मिलती है।

(४) साक्षात्कार पद्धति—छात्रों से साक्षातकार किया जाकर उनकी और मनोवृत्तियों का अध्ययन किया जाता है और होने वाले परिवर्तन की जाती है।

(५) छात्रों के कार्य का निरीक्षण—छात्रों के कार्य से उनकी कार्य की दक्षता और रुचि को समझने में मदद मिलती है।

(६) छात्रों का लेखा-जोखा—छात्र का प्रगतिपत्र (क्यूमूलेटिव रेक उसकी दैनिक डायरी, उसके समाज सेवा के कार्य का ब्यौरा, उसका पुस्तकालय खाता आदि सभी बालक के परीक्षण के अच्छे साधन हैं।

इस प्रकार आज बालक के सभी पक्षों की जाँच का क्रम शुरू हुआ बालक, शिक्षा और अभिभावक सभी के लिए लाभकारी है।

उपसंहार—इस प्रकार आज परीक्षा का उद्देश्य बड़ा व्यापक हो गया यह बालक की प्रगति की जाँच करती है, उसे प्रगति करने में मदद देती है शिक्षक को अपने प्रयत्न की सफलताओं एवं असफलताओं के प्रति सजग करती बुनियादी शाला के छात्रों को ऐसी व्यापक जाँच बुनियादी शाला की प्रगति निश्चित ही सहायक हो सकती है।

सारांश

प्रस्तावना—परीक्षा के बाबत आधुनिकतम विचारधारा यह है कि शिक्षा के सभी उद्देश्यों की पूर्ति किस सीमा तक हो रही है उसकी जाँच की जाए।

प्रचलित परीक्षा प्रणाली के दोष :—

(२) बालकों की बजाय पाठ्य विषयों को अधिक महत्व देती है।
(३) रटने की आदत का पड़ना।
(४) विचारशक्ति के विकास का न हो सकना।
(५) जीवन की आवश्यकताओं से सामंजस्य न रखना।
(६) व्यक्तिगत विकास की परीक्षा न होना।
(७) बालक की प्रगति का पता नहीं लगता।
(८) शिक्षक को अपने कार्य को सुधारने में मदद नहीं मिलती।
(९) जाँचने की अनुपयुक्त प्रणाली।
(१०) बालक को भाग्यवादी बनाना।
(११) उत्साहित और हतोत्साहित बालकों को एक ही कक्षा में रखना।
(१२) परीक्षाओं की भरमार होना।

परीक्षा की पद्धतियाँ—बालकों की परीक्षा की निम्नलिखित पद्धतियाँ हैं :—

(१) निबन्धात्मक परीक्षा, (२) बुद्धि परीक्षा, (३) यथार्थ परीक्षा—(क) स्मरण परीक्षा, (ख) पहिचान परीक्षा, (४) सम्प्राप्ति परीक्षा, (५) विशेष योग्यता परीक्षा, (६) अभिरुचि परीक्षा, (७) पूर्व निदानात्मक परीक्षा, (८) निदानात्मक परीक्षा, (९) कुछ अन्य पद्धतियाँ।

परीक्षा में नवीनतम दृष्टि—शिक्षा बालक को ज्ञान देने के अतिरिक्त उसके व्यवहार में भी परिवर्तन लाती है। अतः उसके बौद्धिक स्तर और व्यवहार स्तर सभी की जाँच हो।

पाठ की इकाइयाँ और उनका बालक पर प्रभाव—पाठ की इकाइयाँ बालक के ज्ञान की वृद्धि करती हैं। उसमें सामान्यकृत धारणाओं का निर्माण करती हैं। सूझबूझ पैदा करती हैं। रुचि और मनोवृत्ति को प्रभावित करती हैं। उसमें दक्षता पैदा करती हैं। उसमें प्रशंसाओं को विकसित करती हैं।

पाठ के उद्देश्य, शैक्षणिक अनुभव और परीक्षण का आपसी सम्बन्ध—ये सभी एक दूसरे से सम्बद्ध हैं।

परीक्षा की नवीनतम पद्धति—इसमें लिखित परीक्षा, व्यवहार परीक्षा, प्रश्नावलियों का प्रयोग, साक्षात्कार, कार्य-निरीक्षण और लेखा-जोखा सभी का प्रयोग होता है।

उपसंहार—बुनियादी शाला के छात्रों की व्यापक जाँच बुनियादी शाला को प्रभावपूर्ण और सफल बनाने में निश्चित ही सफल हो सकेगी।

अभ्यासार्थ प्रश्न

(१) वर्तमान परीक्षा प्रणाली के क्या दोष हैं? यथार्थ-परीक्षाएँ इन दोषों को किस सीमा तक दूर करने में सफल हो सकती हैं।

(२) परीक्षा के बारे नवीनतम धारणा क्या है? यह धारणा हमारी परीक्षा पद्धति के दोषों को किस प्रकार दूर कर सकती है?

क्रम	तुलना के आधार	बुनियादी शालाएं	योजना पद्धति (प्रोजेक्ट मेथड)	किंडर गार्टन पद्धति	मांटेसरी पद्धति	डाल्टन पद्धति
	(१८) विद्यालय	सर्वोदयी समाज का नमूना।	समाज का लघु स्वरूप।	वाटिका-सम सुन्दर।	बाल-संसार।	प्रयोगशाला के समान।
(ख)	शिक्षक	राष्ट्र निर्माता।	कुशल पथ-प्रदर्शक।	कुशल-बागवान के समान।	केवल निरीक्षक।	निपुण सहयोगी।
(ग)	छात्र	भावी स्वावलम्बी एव आदर्श नागरिक	लघु मानव।	उद्यान के कोमल पौधे के समान।	प्रौढ़ के समान आदरित।	समाज का सम्मानित सदस्य।
(घ)	शिक्षक और छात्र का पारस्परिक सम्बन्ध	गुरु शिष्य सम्बन्ध।	मैत्री-सम्बन्ध।	संरक्षक और संरक्षित का सम्बन्ध।	निरीक्षक और निरीक्षित का संबंध।	नेता और अनुसरण कर्ता का सम्बन्ध।

द्वितीय खण्ड

पाठ्य विषय शिक्षण पद्धति

जीवन भर की शिक्षा है प्रतः वह बालक के जन्म से ही शिक्षा काल तव जीवन को शिक्षा का क्षेत्र मानती है। बालक जन्म लेते ही पारिवारिक वात मातृभाषा की शिक्षा ग्रहण करना प्रारम्भ करता है। बुनियादी शाला परिव मातृभाषा शिक्षण में इस प्रकार का योग देती है कि बालक ठीक ढंग से समझना, लिखना, पढ़ना सीख सके। इसी दृष्टिकोण से बुनियादी शाला में के शिक्षण के लिए निम्नलिखित उद्देश्य निर्धारित किए गए हैं :—

(१) बालक को स्वयं को मौखिक एवं लिखित रूप में व्यक्त करना सि

(२) दूसरों की लिखित एवं मौखिक अभिव्यक्तियों को ठीक ढंग से सिखाना।

(३) बोलने तथा लिखने में उचित शब्दों एवं वाक्यों का प्रयोग सिखाना।

(४) भाषा की शिक्षा द्वारा बालकों का मानसिक विकास करना।

(५) भाषा का अध्ययन कराकर साहित्य के आनन्द की अभिव्यक्ति क

(६) उपस्थित परिस्थिति, घटना, विवाद, तर्क के प्रति अपने मौखि लिखित विचार व्यक्त कर ज्ञान तथा अभ्यास की वृद्धि करना।

(७) आवश्यकतानुसार सहायक ग्रन्थों का अध्ययन करना सिखाना।

(८) किसी भाषण, निबन्ध, पत्र या पुस्तक का संक्षिप्त रूप उपस्थित सिखाना।

(९) कठिन स्थलों तथा पद्य आदि का भावार्थ प्रस्तुत कर सकना सिख

(१०) कुशलतापूर्वक घरेलू पत्रव्यवहार कर सकना, आवेदन-पत्र आदि सकना सिखाना।

संक्षेप में सीताराम चतुर्वेदी के शब्दों में हम कह सकते हैं कि "भाषा की का उद्देश्य यह है कि हम दूसरों की कही और लिखी हुई बातों को ठीक-ठीक और पढ़ सकें तथा शुद्ध, प्रभावोत्पादक, मधुर और रमणीय ढंग से बोल और सकें।"

बुनियादी शाला में मातृभाषा की पढ़ाई के अवसर—बुनियादी शिक्ष यही विशेषता है कि कोई भी विषय बालकों पर लादा नहीं जाता। वरन् स्यकता उत्पन्न होने पर ही ज्ञान प्राप्त कराया जाता है। अध्यापक उपयुक्त अ खोज में रहता है। इसीलिए बुनियादी शाला का अध्यापक ग्रीष्म ऋतु में कविता नहीं पढ़ाएगा और न ही सर्दी की ऋतु में ग्रीष्म ऋतु की भीषण गर्म ।वह इस बात का पूर्ण ध्यान रखेगा कि प्रकृति के दृष्टिकोण तथा समय के दृष्टिकोण से उपयुक्त समय उपस्थित हुम

द्वारा समवायी शिक्षण प्रणाली है। उद्योग कार्य है, प्रक्रिया करनी पड़ती है, अनुभव प्राप्त कर । इसी प्रकार बालक ग्राम पड़ोस

या समाज की क्रियाओं को देखता है। उसे भी लिखना पड़ता है। प्रकृति पर्यवेक्षण
। बुनियादी शिक्षा की एक विशेषता है। प्रकृति के जिस दृश्य से वह बड़ा प्रसन्न
आ है, प्रकृति की जिस वस्तु से उसे लाभ हुआ है और प्रकृति की जिस वस्तु या
श्य से आश्चर्य हुआ है, इन सभी को बतलाने की इच्छा प्रबल हो उठती है। यही
ापा ज्ञान का उपयुक्त अवसर माना जाना चाहिये। अर्थात् उद्योग, सामाजिक
रीक्षण तथा प्रकृति पर्यवेक्षण के आधार पर अध्यापक बालकों को भाषा ज्ञान कराने
ो चेष्टा करता है।

उदाहरणार्थ कताई-बुनाई उद्योग की, कपास से लेकर वस्त्र तैयार करने तक
की विभिन्न प्रक्रियाओं को लिखना, कृषि व बागवानी उद्योग के तरह-तरह के खाद
और उनके उपयोग, शाक सब्जी बोने काटने की प्रक्रियाओं को लिखना, सामाजिक
निरीक्षण मे सफाई, नागरिकता के नियमों के विषय में त्योहारों, उत्सवों, पर्वों के
विषय में परिचय प्राप्त करना, वार्तालाप करना, कविता बोलना आदि भाषा शिक्षण
के साधन है। प्रकृति निरीक्षण में वर्षा, गर्मी, सर्दी, बिजली, तारे, बादल, चन्द्र, सूर्य,
इन्द्र धनुष, वन, उपवन, पहाड़, नदी आदि के विषय मे जानकारी कर भावों को
व्यक्त करने से भी भाषा का ज्ञान भली प्रकार होता है। छोटी कक्षाओं में मौखिक
कार्य अधिक होना चाहिए। वार्तालाप, प्रश्न और उत्तर के रूप में भाषा शिक्षण किया
जाना चाहिए। पहली कक्षा में विभिन्न अवसरो पर निम्नलिखित रूप से अध्यापक
भाषा शिक्षण कर सकता है :—

अवसर	विषय
(क) बागवानी, सफाई, कताई, प्रकृति पर्यवेक्षण घरेलू काम, प्रकृति निरीक्षण, आदि कामों में भाग लेते समय यथावसर—	(१) वार्तालाप का अभ्यास कराया जा सकता है;
	(२) सरल शब्दो का शुद्ध उच्चारण कराया जा सकता है;
	(३) कताई के समय तकली का गीत गाया जा सकता है।
(ख) पर्वों, त्योहारों, उत्सवों, जयन्तियों, नाटकों, सास्कृतिक अवसरो, प्रदर्शनियो के आयोजनो, आदि के अवसर पर—	(१) कहानियाँ, लोक कथाएँ, भिन्न-भिन्न देशों के बालकों की कहानियाँ कही तथा कहलाई जा सकती हैं;
	(२) सरल कविताओं का पाठ कराया जा सकता है;
	(३) छोटे-छोटे वक्तव्य तैयार कराए जा सकते हैं।
(ग) कक्षा के नाटक के समय—	(१) [illegible] -अपने पार्ट याद कर, विभिन्न [illegible] पशुओं, पक्षियो की [illegible] कर बालकों को शुद्ध [illegible] की नकल [illegible]

अवसर	विषय
	करना सिखाया जा
(घ) उपरोक्त अवसरों के वार्तालापों, दिनचर्या, कार्यविधियों को छोटे-छोटे शब्दों में लिखा कर—	(१) लिखने की शुरुआत सकती है।
(ड) जयन्तियों, त्यौहारों, उत्सवों, जलसों, विभिन्न कार्यों, वार्तालापों आदि के आयोजन के समय—	(१) पुस्तक में लिखा हुआ ज्ञान पढ़ाकर, पढ़ने व जा सकती है।

इसी प्रकार आगे की कक्षाओं में यही क्रम विस्तार, दुहरा प्राप्त करता जाएगा। तात्पर्य यह है कि शाला में विभिन्न उद्योगों, था की योजना बनाते, सामान एकत्र करते, कार्य सम्पादित करते, प्राप्त सुनाते, लिखते समय बालक को शुद्ध उच्चारण, शब्द संग्रह, उपयुक्त, यथ वार्तालाप करने का ढंग, लिखना, पढ़ना आदि सिखाकर भाषा का सही सकते हैं। इससे बालक की रचना शक्ति, वाचन शक्ति, पाठन शक्ति व शक्ति का विकास होगा।

बुनियादी शाला में मातृभाषा शिक्षण के सहायक उपकरण—सहायक उपकरणों के बारे में विस्तार से इसी पुस्तक के प्रथम खण्ड में उल गया है। यहां केवल भाषा शिक्षण की दृष्टि से थोड़ा प्रकाश डाला जाए शिक्षण में निम्नलिखित सहायक उपकरण प्रयोग में लाए जा सकते हैं:—

(१) **पुस्तकें**—वैसे बुनियादी शिक्षा केवल पाठ्य पुस्तक अध्याप का विरोध करती है। पर इसका अर्थ यह कदापि नहीं है कि वह पुस्तकों क करती है। यह अवश्य है कि यह पद्धति बालकों को पाठ्य पुस्तकों के भार में नहीं बांधती पर पुस्तकों के अधिकाधिक प्रयोग पर बल देती है। केवल के उपयुक्त अवसर एवं ढंग में अन्तर है। पुस्तकों का संग्रह इस शाला रूढ़िवादी शालाओं की अपेक्षा अधिक होना चाहिए। बालकों की रुचि पुस्त की ओर लगानी चाहिए जिससे उन्हें विषय ज्ञान के साथ भाषा ज्ञान भी मात्रा में होगा।

(२) **पत्र-पत्रिकाएँ**—भाषा के शिक्षण के लिए बालोपयोगी पत्र-प भी एक उपयोगी साधन हैं। कहानियां, चुटकुलों, कविताओं के आकर्षक वि कारण बालकों को इन्हें पढ़ने में आनन्द आता है जिससे उनके शब्द भंडार की होती है। वे शुद्ध भाषा का प्रयोग करना सीखते हैं।

(३) **चित्र**—तस्वीरें बालकों को बहुत पसन्द आती हैं। आवश्यक समय चित्र उपस्थित कर बालकों से उनका स्पष्टीकरण कराने से उनमें अभि शक्ति बढ़ती है।

(४) **चार्ट्स**—भाषा शिक्षण के लिए कई प्रकार के चार्ट्स तैयार अक्षर रचना, वाक्य रचना आदि [illegible]

कापियाँ) होती हैं। उनमें वे सभी बातें लिखते हैं। अतः अध्यापक को उनमें संशोधन करते रहना चाहिए ताकि वे त्रुटि से बचें।

(६) लोक-कथाएँ एवं लोक-गीत—ये भी भाषा शिक्षण के अच्छे साधन हैं। मातृभाषा शिक्षण में ये अधिक उपयोगी सिद्ध होते हैं क्योंकि इनमें बालकों की स्वाभाविक दिलचस्पी होती है।

(७) श्यामपट्ट आदि—अध्यापक को पढ़ाते समय आवश्यकतानुसार श्यामपट्ट का प्रयोग करना चाहिए तथा बालकों के द्वारा भी श्यामपट्ट पर लिखाया जाना चाहिए ताकि उन्हें शुद्ध लिखना आ सके।

(८) श्रव्य श्रवण नेत्रोपकरण—चलचित्र, रेडियो, ग्रामोफोन आदि ऐसे उपकरण हैं जिनसे वार्तालाप, कहानी, चुटकुले आदि सुनकर बालक भाषा का ज्ञान प्राप्त करते हैं। इनके विषय में यथास्थान अधिक उल्लेख कर दिया गया है।

मातृभाषा के विभिन्न अंगों का शिक्षण—मातृभाषा के विभिन्न अंगों में से प्रत्येक के शिक्षण में उनके लिए निर्धारित निम्न परिपाटी प्रयोग में लाई जानी चाहिए :—

(१) शुद्ध उच्चारण की शिक्षा—प्रारम्भ में बालक की तोतली वाणी प्रिय लगती है पर यही आदत यदि आगे भी पड़ जाये तो अशुद्ध उच्चारण कर्णकटु लगता है। प्रायः बालक स, श और ष के उच्चारण में अशुद्धियाँ करते हैं। अतः अध्यापक को यह ध्यान रखना चाहिए कि बालक अशुद्ध न बोलें तथा अशुद्ध बोलते ही उसे तत्काल शुद्ध करना चाहिए। उच्चारण शुद्ध करने की तीन विधियाँ हैं—(१) आवृत्ति, पुनरावृत्ति अर्थात् बार-बार अभ्यास कराकर शुद्ध बोलना सिखाना, (२) स्थान परिवर्तन अर्थात् अशुद्ध बोलने वालों की संगति से हटाकर शुद्ध बोलने वालों की संगति में रखना, (३) तीव्रता तथा अस्पष्टता से बोलने के स्थान पर धीरे-धीरे स्पष्ट बोलने का अभ्यास कराना। शुद्ध उच्चारण पर प्रारम्भिक काल से ही ध्यान देना चाहिए अन्यथा अशुद्ध बोलने की आदत पड़ने पर उसे छुड़ाना बड़ा कठिन होता है।

(२) बोलचाल की शिक्षा—मनुष्य सामाजिक प्राणी है। समाज में रहकर वह बिना बोले नहीं रह सकता। उसके कितने ही काम वाणी एवं बोलचाल पर ही बिगड़ते एवं सुधरते हैं। वार्तालाप, भाषण या साधारण बोलने के समय शुद्ध सरल, लोक व्यवहार सिद्ध भाषा का प्रयोग करना चाहिए। साथ ही बात को ढंग से कहना आना चाहिए। अतः भाषण पटुता का सिखाया जाना अत्यन्त आवश्यक है। भाषण पटुता के लिए निम्नलिखित उपाय प्रयोग में लाए जाने चाहिएँ —(१) मौखिक रचनाओं का अभ्यास, (२) नाटक में पार्ट याद कराकर अभिनय कराना, (३) वार्तालाप वाली पुस्तकों को पढ़ने के लिए देना, (४) सभ्य एवं शिक्षित बालकों के सम्पर्क में रखना, (५) सुन्दर संवादों की रचना करना आदि।

(३) वाचन की शिक्षा—वैसे तो यह विवादास्पद ही है कि पहले लिखना सिखाया जाए अथवा पढ़ना। पढ़ना लिखने की अपेक्षा सुगम है तथापि पढ़ने में भी

बड़ा ध्यान रखने की आवश्यकता है। पढ़ने में भी इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि पढ़ने वाला भावों के अनुसार स्वर का उचित उतार चढ़ाव रखकर पढ़े। इस ढंग से पढ़ना न आने पर मनुष्य को कई बार नीचा देखना पड़ता है। पढ़ना सिखाने की कई प्रणालियाँ हैं। उनमें से कुछ ये हैं :—(१) देखो और कहो प्रणाली, (२) अक्षर बोध प्रणाली, (३) अनुध्वनि प्रणाली, (४) संगति (एसोसिएशन) प्रणाली, (५) भाषा-शिक्षण-यन्त्र प्रणाली, (६) ध्वनिसाम्य प्रणाली, (७) समवेत पाठ प्रणाली, (८) वाक्य प्रणाली। इन विधियों को ध्यान से देखा जाय तो अक्षर, शब्द एवं वाक्य की महत्ता के अनुसार ही इनमें अन्तर है। इन सभी को तीन भागों में बाँटा जा सकता है—(१) अक्षर बोध प्रणाली, (२) शब्द प्रणाली, (३) वाक्य प्रणाली। वैसे आवश्यकतानुसार इनमें से किसी भी प्रणाली का प्रयोग किया जा सकता है। बालकों को पढ़ना सिखाने के लिए उन्हीं शब्दों का प्रयोग सबसे पहले करना चाहिए जिनमें उनको आनन्द अधिक आता हो। बालक चाहे अक्षरों को न समझे पर उसका नाम लिखकर उसे कहा जाय कि यह तुम्हारा नाम लिखा है तो उसे बड़ा आनन्द आयेगा। कई बार लिखकर मिटा देने पर एक स्थिति यह आ जायेगी कि वह उसके नाम के अक्षरों को पहचान जायेगा। इसी के साथ-साथ उनके घर के सदस्यों के नाम, मित्रों के नाम, पशुओं के नाम पढ़ने का अभ्यास कराया जा सकता है और उसके बाद छोटे-छोटे वाक्यों का अभ्यास कराया जा सकता है। शाला व दीवारों पर लिखे गए उपदेशों को लिखना न जानने वाले छात्र भी पढ़ना सीख जाते हैं। छोटे बच्चों को धीरे-धीरे पुस्तक पढ़ना भी इसी प्रकार सिखाया जा सकता है। प्रारम्भ में बालकों को जोर-जोर से पढ़ना चाहिए। ऊँची कक्षाओं में मौन पाठ दिया जाना चाहिए। पढ़ना सिखाते समय इन बातों का ध्यान रखा जाना चाहिए :—(१) पुस्तक आँखों से एक फुट दूर रहनी चाहिए। (२) पढ़ने की गति न तो बहुत तीव्र हो और न बहुत शिथिल। (३) स्वर न बहुत तेज हो और न बहुत धीमा। (४) शब्द का उच्चारण स्पष्ट होना चाहिए। (५) स्वर में उतार चढ़ाव भावों के अनुकूल होना चाहिए। (६) आँखें निरन्तर पेज पर गढ़ी हुई न रहनी चाहियें। (७) पढ़ते समय बहुत अधिक हिलना डुलना न चाहिए।

(४) लिखने की शिक्षा—साधारणतया पढ़ना पहले सिखाकर लिखना बाद में सिखाने की मनोवैज्ञानिक प्रणाली को ही विद्वानों ने अपनाया है। पढ़ने की योग्यता के साथ लिखने की योग्यता ही आदमी को पूर्ण बनाती है। लिखना भी पढ़ने की प्रणाली के अनुसार ही सिखाया जाना चाहिए। बालक को पढ़ना आ जाए शब्द एवं अक्षर को पहचानना आ जाए, तब बालक को उसके नाम को लिखने का प्रयास कराना चाहिए। पहले अशुद्धियाँ होंगी पर बाद में वह ठीक ढंग से लिखने लगेगा। उद्योग की वस्तुओं में जिसमें उसे अधिक स्नेह है उसके नाम को लिखाना चाहिए। तत्पश्चात् बालक छोटे-छोटे वाक्य लिखना सीख जायेंगे। लिखना सिखाने में बैठने के ठीक ढंग का ध्यान रखना चाहिए। लिखते समय रीढ़ की हड्डी झुकनी न चाहिए तथा कापी आँखों से एक फुट दूर होनी चाहिए। कलम को ठीक ढंग से

पकड़ा जाना चाहिए। अक्षरों के मध्य की दूरी तथा शब्दों के मध्य की दूरी बराबर होनी चाहिए। अक्षर सुन्दर व सुडौल होना चाहिए। अक्षर टेढ़े नहीं लिखे जाने चाहियें। स्वच्छता की ओर पूर्ण ध्यान दिया जाना चाहिए। सुलेख लिखाकर सुन्दर लिखने का अभ्यास कराया जा सकता है।

(५) रचना की शिक्षा—बालकों में शुद्ध, सरल, मुहावरेदार भाषा लिखने की आदत डालना आवश्यक है। शब्द भण्डार को बढ़ाने की आदत डालना चाहिए। उनकी चिन्तन शक्ति को बढ़ाना चाहिए तभी बालक सुसंगठित एवं मँजी हुई भाषा लिख सकेंगे। मातृभाषा में रचना शिक्षण का उद्देश्य ही यह है कि बालक अपने विचारों को सुसस्कृत, सुसगठित, सरल एवं मुहावरेदार भाषा में व्यक्त कर सकें। रचना की शिक्षा सिखाने के लिए दस प्रकार की प्रणालियाँ विद्यमान हैं—(१) 'देखो और रचो' प्रणाली, (२) प्रश्नोत्तर प्रणाली, (३) प्रबोधन प्रणाली, (४) भाषा शिक्षक-पत्र प्रणाली, (५) उद्‌बोधन प्रणाली, (६) अनुकरण प्रणाली, (७) सूत्र प्रणाली, (८) विचार प्रणाली, (९) तर्क प्रणाली, (१०) मन्त्रणा प्रणाली। इन प्रणालियों के आधार पर बालक को कहानी, निबन्ध, नाटक, सवाद, चुटकुले आदि की रचना सिखाई जा सकती है।

बुनियादी शाला में पढ़ाते समय अध्यापक के सामने ऐसे कितने ही अवसर आते हैं जब वह रचना की शिक्षा प्रदान कर सकता है। बागबानी तथा सागबानी की उपज के विषय में लिखना, अन्य फसलों के विषय में लिखना, कताई की श्रेष्ठ प्रणाली के विषय में लिखना, कताई के समय किन किन बातों का ध्यान रखना चाहिए। उन बातों को एक स्थान पर लिखना, पौधे या कपडे की आत्मकथा लिखना, पशुओं के विषय में लिखना, अपने पर्यटन का प्रकृति निरीक्षण का हाल लिखना, यात्राओं का वर्णन लिखना, पर्वों, त्योहारों का हाल लिखना, किसी अतिथि के भाषण का सार लिखना, प्रार्थना-पत्र, निमन्त्रण-पत्र, घरेलू पत्र, व्यावसायिक-पत्र, अभिनन्दन-पत्र, प्रशसा-पत्र लिखना, बाल सभाओं तथा मन्त्रिमण्डल की रिपोर्ट लिखना, कार्यों की योजना बनाना आदि रूपों में रचना की शिक्षा दी जा सकती है। इसी के साथ कभी-कभी अध्यापक किसी कहानी या निबन्ध के सूत्र लिखकर उनका विकास करा सकते हैं। इस प्रकार रचना की शिक्षा दी जा सकती है। रचना की शिक्षा में कहानी की रचना पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए। कहानी में बालक, युवक, वृद्ध, स्त्री, पुरुष सभी को रुचि होती है। अतः मातृभाषा का शिक्षण कहानी रचना के आधार पर सुगमता से किया जा सकता है। बालकों के सम्मुख पहले गुण विशेष युक्त कहानी कहनी चाहिए जैसे परोपकार, अहिंसा, त्याग, सत्यवादिता, स्नेह, सहानुभूति, आत्मनिर्भरता आदि की कहानियाँ तथा पशु-पक्षियों की कहानियाँ कहनी चाहिएँ। तत्पश्चात् बालकों को उसी कहानी को वापस कहने या वैसी ही दूसरी कहानी कहने को प्रेरित करना चाहिए। कहानी को कभी-कभी बालकों से लिखाना भी चाहिए।

(६) व्याकरण की शिक्षा—बालकों को व्याकरण की शिक्षा भी दी जानी

चाहिये। अर्थात् व्याकरण अलग विषय नहीं है अपितु उसे रुचिकर बनाकर उसे शिक्षा बालकों को देना आवश्यक है ताकि बालक शुद्ध लिखना, बोलना, वाक्य रचना जान सकें। वैसे व्याकरण की शिक्षा रचना की शिक्षा के अन्तर्गत ही आ जाती है तथापि समय में व्याकरण पढ़ाने की ५ प्रणालियाँ प्रचलित हैं—(१) सूत्र प्रणाली—व्याकरण के सूत्र रटा कर उनका प्रयोग कराना। (२) प्रयोग प्रणाली—कई उदाहरणों के आधार पर एक नियम निकलवाना। (३) पाठ्यपुस्तक प्रणाली—व्याकरण की पुस्तक से व्याकरण के नियम रटा देना। (४) [illegible] प्रणाली—उन लेखकों की कृतियाँ पढ़ाना जिनका भाषा पर अधिकार हो। (५) सहयोग प्रणाली—रचना शिक्षण के साथ-साथ व्याकरण की शिक्षा देना। इनमें से अन्तिम ही का प्रयोग अधिक मनोवैज्ञानिक माना जाता है। इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि बालकों पर व्याकरण लादी न जावे। प्रारम्भिक अवस्था में व्याकरण का अलग से ज्ञान कराना उचित नहीं। व्याकरण की दृष्टि से अध्यापक को उनकी वाक्य रचना को भी सुधारते रहना चाहिये तथा रचना की शिक्षा में ही व्याकरण की शिक्षा का समावेश करना चाहिए।

(७) गद्य की शिक्षा—वैसे तो साहित्य का उद्भव पद्य रूप में ही माना जाता है तथापि साधारण बोल-चाल, विचारों का आदान-प्रदान, भाव प्रकाशन की दृष्टि से गद्य ही का अधिक प्रयोग होता है। सर्वत्र सभी कार्य गद्य में ही होते हैं। अतः मातृभाषा में गद्य के शिक्षण की ओर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिये। गद्य शिक्षण में विभिन्न कथाओं, जीवन-चरित्रों, अन्य कथाओं, निबन्धों, वर्णनों, संवादों, नाटकों, पत्रों, यात्रा तथा प्राकृतिक दृश्यों के वर्णनों आदि के पढ़ाने का समावेश होता है। इन गद्यों के पढ़ाने के निम्नलिखित उद्देश्य होते हैं :—

(१) छात्रों को विविध विषयों का ज्ञान कराना।

(२) उनके शब्द भण्डार एवं सूक्ति भण्डार में वृद्धि करना।

(३) भली प्रकार से पाठ का भाव तथा अर्थ समझाना।

(४) समझे हुए भाव को अपने शब्दों में व्यक्त करने की क्षमता उत्पन्न करना।

(५) गद्य लिखने की विभिन्न शैलियों से परिचित कराना।

(६) इन शैलियों का अनुकरण करना सिखाना।

(७) गद्य की भाषा एवं भावों का आनन्द प्राप्त कराना।

(८) लेखक के भावों के अनुसार सस्वर (उतार-चढ़ाव के साथ) पढ़ना सिखाना।

(९) छात्रों की कल्पना शक्ति का विकास करना।

(१०) छात्रों की क्रिया शक्ति को जागृत करना।

(११) छात्रों को व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त करना।

(१२) उनमें नैतिकता एवं चरित्र का विकास करना।

(१३) वैज्ञानिक आविष्कारों के पाठों से साहसी बनाना। विज्ञान के साथ

व हानि से परिचित करना, प्राकृतिक विषय वाले ग्रन्थों से प्रेम, ईश्वर में आस्था, विश्वबन्धुत्व उत्पन्न कराना।

(१४) तर्क एवं विवेक उत्पन्न करना।

यह आवश्यक नहीं कि गद्य के किसी पाठ में सभी उद्देश्यों का समावेश कर लिया जाए। बुनियादी शाला में आवश्यकता उत्पन्न होने पर गद्य का पाठ हरबर्ट के पंच सोपानों के आधार पर (जिनका वर्णन इसी पुस्तक के पहले खण्ड में कर दिया गया है) पढ़ाया जायगा। इसके आधार पर गद्य के पाठ की योजना निम्न-लिखित रूप रेखा के आधार पर तैयार की जायगी :—

शाला का नाम······कक्षा······खण्ड······

छात्र सं०······ दिनांक······ समय······

प्रस्तुत विषय (पाठ का शीर्षक)

(१) साधारण उद्देश्य।

(२) मुख्य उद्देश्य।

(३) पाठ्य सामग्री।

(४) पूर्व ज्ञान।

(५) प्रस्तावना—(उद्योग कार्य के समाप्त होने पर पुनरावृत्ति भाषा के पाठ की प्रस्तावना बन जायेगी)

(६) उद्देश्य कथन।

(७) अध्यापक द्वारा आदर्श सस्वर पाठ—(जितना अंश पढ़ाना हो उसका अध्यापक द्वारा सस्वर पाठ)

प्रत्येक अन्विति में :—

(८) अन्विति का आदर्श सस्वर पाठ (यदि निश्चित अंश को एक से अधिक अन्वितियों में बाँटा गया है तो प्रथम अन्विति का अध्यापक द्वारा सस्वर शुद्ध पाठ)।

(९) बालकों द्वारा अन्विति का सस्वर पाठ (छोटी कक्षा में एक या अधिक बालकों से)।

(१०) उच्च कक्षा में छात्रों द्वारा अन्विति का मौन पाठ कराया जावेगा।

(११) बोध परीक्षात्मक प्रश्न (केवल प्रथम अन्विति पर दो या तीन प्रश्न ताकि बालक अन्विति का भाव समझ जावें)।

(१२) आत्मीकरण—(क) कठिन शब्दों, मुहावरों की व्याख्या (ख) विचार विश्लेषण (प्रश्नों द्वारा, तुलना द्वारा, भाव प्रकाशन द्वारा भावों का स्पष्टीकरण कराना)।

(१३) विचार विश्लेषणात्मक प्रश्न—यहाँ ऐसे प्रश्न पूछे जायेंगे जिनसे पठित अंश में निहित विचारों का पूरा-पूरा विश्लेषण हो सके।

(यही उपरोक्त क्रम आगे की अन्वितियों में भी अपनाया जायगा)।

अन्वितियों के समाप्त होने पर :—

(१४) पुनरावृत्ति—(सम्पूर्ण पाठ पर ऐसे प्रश्न जो बालक के पूर्णतया समझने को स्पष्ट कर सकें)।

(१५) प्रयोग—(गृह कार्य, अभ्यास कार्य आदि)।

(८) पद्य की शिक्षा—बालकों को गीत, कविताएँ, लयदार पद्य बहुत प्रिय हैं। प्रारम्भिक अवस्था के बालकों को लयदार तुकबन्दियाँ प्रिय होती हैं। मध्य अवस्था वाले बालकों को सरल पदमय रचनाएँ तथा उच्च कक्षा के बालकों को भावमयी कविताएँ सिखाई जानी चाहिएँ। छोटे बालकों को तो ऐसी लययुक्त तुकबन्दियाँ पढ़ाई जानी चाहिएँ जिनमें अभिनय भी किया जा सके। बुनियादी शाला में उद्योग के कार्य के साथ गीत गाए जावें। विभिन्न उद्योगों की अभिनयात्मक क्रियाशीलता की तुकबन्दियाँ बालकों को अधिक रुचिपूर्ण होंगी। बालकों को कविता पढ़ाने के निम्नलिखित उद्देश्य होते हैं :—

(१) लय, ताल और भाव के अनुसार कविता पाठ करना सिखाना।
(२) कविता में बालकों की रुचि उत्पन्न करना।
(३) कवि के भावों को समझाना।
(४) कविता में निहित भाव, सौन्दर्य का आनन्द प्राप्त कराना।
(५) कविता के भावों एवं सौन्दर्यानुभूति की अपने शब्दों में व्याख्या करना।
(६) बालकों की कल्पना शक्ति को बढ़ाना।
(७) कविता की रचना करने की ओर प्रेरित करना।
(८) काव्य की भाषा का सौन्दर्य परखना सिखाना।
(९) रस और भाव का आनन्द प्राप्त करना सिखाना।
(१०) विभिन्न काव्य शैलियों से परिचित कराना।

कविता के किसी भी पाठ में उपरोक्त उद्देश्यों में से कुछेक की पूर्ति होगी। बालकों के स्तर, कविता के विषय एवं कक्षा की दृष्टि से आवश्यकतानुसार उद्देश्यों का चयन कर लिया जावेगा। कविता पढ़ाने की जो प्रणालियाँ प्रचलित हैं उनमें से मुख्य ये हैं—(१) गीत तथा अभिनय प्रणाली—गीत के साथ अभिनय करना छोटे बालकों के लिए अनुकूल प्रणाली है। यह माटेसरी एवं किंडर गार्टन प्रणालियों में अधिक प्रयोग में आती है। बुनियादी शिक्षा में भी इसका प्रयोग किया जाना चाहिए। गीत सामूहिक रूप से अभिनय के साथ गाया जाय। कभी-कभी व्यक्तिगत छात्र को भी अभिनय के साथ गाने के लिए प्रेरित करना चाहिए। (२) अर्थबोध प्रणाली—बालकों की कक्षा में पुस्तकें खुलवा कर चुपचाप बिठा देना तथा अध्यापक का अर्थ बताते जाना (यह दूषित प्रणाली है)। (३) व्याख्या प्रणाली—कविता में आए हुए प्रसंग, अन्तरकथा, विशेषता आदि का स्पष्टीकरण करना, (४) खण्डान्वय प्रणाली—[illegible] स्पष्टीकरण, (५) व्यास प्रणाली—भावात्मक कविताओं को भाषा व [illegible] की दृष्टि से समझाना, (६) तुलना प्रणाली—एक ही प्रसंग को अनेक कवियों की कविताओं की तुलना से या उसी कवि के द्वारा अलग-अलग छन्दों

(३) शुद्ध उच्चारण, सस्वर तथा भावों के उतार-चढ़ाव के अनुकूल बोलना सिखाना।

(४) आंगिक संचालन द्वारा भावों को व्यक्त करना सिखाना।

नाटक पढ़ाने की प्रणालियाँ निम्नलिखित हैं :—

(१) प्रयोग प्रणाली—रंगमंच पर नाटक का अभिनय कराया जाय। (२) आदर्श नाट्य प्रणाली—नाटक के सभी पात्रों का भावात्मक अभिनय कक्षा में अध्यापक स्वयं ही करे। (३) कक्षा नियम प्रणाली—कक्षा में विभिन्न छात्रों को नाटक के पात्र निर्धारित कर भावपूर्वक संवाद पढ़ाया जाये। (४) व्याख्या प्रणाली—प्रश्नों द्वारा नाटक की विशेषता बताई जाय।

इस प्रकार नाटक एवं अभिनय की शिक्षा द्वारा मातृभाषा की शिक्षा दी जा सकती है।

(१०) मातृभाषा का अन्य पाठ्य विषयों से समन्वय—कक्षा के विभिन्न पाठ्य विषयों का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। इतिहास, भूगोल, गणित या सामान्य विज्ञान का शिक्षण बिना भाषा ज्ञान के अधूरा ही रह जाता है। अतः मातृभाषा के शिक्षक को अन्य विषयों के ज्ञान कराने का ध्यान रखना चाहिए तथा अन्य विषयों के अध्यापकों को मातृभाषा का ज्ञान कराने का ध्यान रखना चाहिए। यदि मातृभाषा का अध्यापक शुद्ध भाषा के प्रयोग पर ध्यान देता है पर अन्य विषयों के अध्यापक ध्यान नहीं देते तो बालक में शुद्ध भाषा लिखने, बोलने की आदत दृढ़तापूर्वक न जम सकेगी अतः दोनों अध्यापकों का समन्वय आवश्यक है। भाषा तथा इतिहास का समन्वय होना चाहिए। भाषा तथा भूगोल, भाषा तथा विज्ञान, भाषा तथा नागरिक शास्त्र, भाषा तथा गणित सभी विषयों का परस्पर समन्वय बालकों में शुद्ध भाषा के लिखने, बोलने की प्रेरणा को जगायेगा तथा दृढ़ आदत का निर्माण करेगा। यदि अन्य विषयों के अध्यापकों का भाषा पर अधिकार न हो तो भाषा के शिक्षक से इसमें सहायता लेनी चाहिये।

(११) मातृभाषा की शिक्षा में त्रुटि सुधार—मातृभाषा के शिक्षण का महत्त्वपूर्ण अंग उसमें त्रुटि सुधार का कार्य है। प्रारम्भ ही से बालक के सही बोलने लिखने पर ध्यान दिया जाना चाहिए। ज्यों ही बालक गलती करे उसे सुधारना चाहिये। सुधार के दृष्टिकोण से निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिये :—

(१) बालकों को तब तक शुद्ध बोलने का अभ्यास कराया जाना चाहिए जब तक वे शुद्ध न बोलने लग जायें। (२) लिखित कार्य में यदि त्रुटियाँ अधिक हों तो बालकों को नित्य घर से एक पृष्ठ नकल कर लाने को दिया जाना चाहिये। शब्द की वर्तनी (स्पेलिंग) गलत हो उस शब्द को कम से कम ५ बार लिखवाना है। (३) छोटी कक्षाओं में श्रुति लेख लिखाया जाना चाहिए। (४) बालकों एक दूसरे की कापियाँ देकर उनकी अशुद्धियाँ निकलवानी चाहिए। (५) बालकों की कापियाँ उन्हीं के सामने देखना अधिक लाभदायक होगा। (६) भाव, भाषा तथा शैली में भी आवश्यक सुधार किये जाने चाहिएँ। (७) यदि बालक प्रश्न शुद्ध

व साफ न लिखते हो तो उनसे सुलेख लिखाये जाने चाहिएँ।

सारांश

भाषा की महत्ता एवं स्वरूप—मनुष्य में बोलकर अपने विचारों को समझाने की विशेषता अन्य प्राणियों की अपेक्षा अधिक परिष्कृत है। मनुष्य बालक के रूप में घर की बोली सीखता है, किशोर के रूप में नगर की भाषा सीखता है। युवक के रूप में प्रान्त और राष्ट्र की भाषा सीखता है। वह सामाजिक प्राणी है। मातृभाषा सीखे बिना उसका काम नहीं चलता।

बुनियादी शाला में मातृभाषा शिक्षण के उद्देश्य—बुनियादी शिक्षा जन्म से मृत्यु तक का शिक्षा काल मानती है। अतः इस दृष्टि से उद्देश्य बड़े ही विस्तृत हैं।

बुनियादी शाला में मातृभाषा की पढ़ाई के अवसर—बुनियादी शिक्षा में अवसर की महत्ता को ध्यान में रखा जाता है। उपयुक्त अवसर पर ही विषय का अध्यापन कराया जाता है। अत: अध्यापक को पाठ्यक्रम की ऐसी योजना बनानी चाहिए कि मातृभाषा के शिक्षण के अनुकूल अवसर प्राप्त हो सकें।

बुनियादी शाला में मातृभाषा शिक्षण के सहायक उपकरण—पुस्तकों, पत्र-पत्रिकाओं, चित्रों, चार्ट्स, कार्डियों, लोक कथाओं एवं लोक गीतों, श्यामपट्ट तथा अन्य श्रवण नेत्रोपकरणों आदि की सहायता से मातृभाषा शिक्षण को अधिक सरल एवं सफल बनाया जा सकता है।

मातृभाषा के विभिन्न अंगों का शिक्षण—मातृभाषा के शिक्षण में उसके विभिन्न अंगों की शिक्षा पर बल देना चाहिये। जैसे शुद्ध उच्चारण की शिक्षा दी जानी चाहिए। बोल-चाल के ढंग सिखाने चाहिएँ। वाचन की शुद्ध प्रणालियाँ सिखाई जानी चाहिएँ। लिखने की शिक्षा, रचना की शिक्षा, व्याकरण की शिक्षा, गद्य की शिक्षा, पद्य की शिक्षा, नाटक एवं अभिनय की शिक्षा उपयुक्त प्रणालियों द्वारा दी जानी चाहिए। अन्य विषयों के अध्यापकों को भी भाषा की शुद्धि का ध्यान रखना चाहिए। बालकों द्वारा की गई त्रुटियों का सुधार किया जाना चाहिये।

अभ्यासार्थ प्रश्न

(१) बुनियादी शाला में मातृभाषा शिक्षण के क्या-क्या उद्देश्य होते हैं? इन उद्देश्यों की पूर्ति कक्षा तीन में भिन्न-भिन्न अवसरों पर मातृभाषा के भिन्न-भिन्न अंगों को पढ़ा कर किस प्रकार करोगे? स्पष्ट लिखिए।

(२) बुनियादी शाला में गद्य पढ़ाने के क्या उद्देश्य हो सकते हैं? किसी एक कक्षा के स्तर का कताई से गद्य की शिक्षा के समवायी पाठ की योजना प्रस्तुत कीजिए।

(३) छोटी कक्षाओं में पद्य किस प्रणाली द्वारा पढ़ाओगे? उसके क्या उद्देश्य होंगे? कृषि उद्योग से किसी एक कविता के समवायी पाठ की योजना प्रस्तुत कीजिए।

अध्याय २८

सुलेख पाठ : एक नमूना

शाला का नाम········ कक्षा·········· खण्ड··········

छात्र संख्या········ दिनांक·········· समय··········

उद्देश्य—

(१) सृजनात्मक कार्य करने में छात्रों की रुचि उत्पन्न करना।

(२) शुद्ध लिखने का अभ्यास कराना।

(३) सुन्दर लेखन के प्रति ध्यान आकर्षित करना।

सहायक सामग्री—

कक्षोपयोगी सामान्य उपकरण।

पूर्व ज्ञान—बालक सुन्दर लेख लिखने का अभ्यास करते हैं।

प्रस्तावना—पाठ की प्रस्तावना हेतु शिक्षक बालकों को निम्न उद्धरण सुनावेगा :—

एक बार एक स्त्री एक पढ़े-लिखे व्यक्ति के पास पत्र लिखवाने को गई। उस व्यक्ति ने पत्र लिखने के लिए मना कर दिया और कहा कि मेरे पैर में दर्द है अतः मैं पत्र नहीं लिखूंगा। स्त्री ने कहा, "पत्र तो आप हाथ से लिखेंगे।" वह बोला, "जब कभी भी मैं किसी का पत्र लिखता हूँ उसे पढ़ने के लिए मुझे ही जाना पड़ता है।" स्त्री समझ गई और लौट गई।

उपरोक्त उद्धरण पर निम्न प्रश्न पूछे जावेंगे :—

(१) पढ़े-लिखे व्यक्ति ने पत्र लिखने से क्यों मना कर दिया?

(२) पाँव में दर्द होने से पत्र लिखने का उसने क्या सम्बन्ध बताया?

(३) अगर कोई ऐसा पत्र लिखे जिसे अन्य कोई न पढ़ सके तो उसे हम कैसा लिखना कहेंगे?

(४) अच्छा लिखना (सुलेख) सीखने के लिए हमें क्या करना चाहिए?

पाठ्य-सामग्री—अध्यापक निम्नलिखित पंक्तियाँ श्यामपट्ट पर स्पष्ट, स्वच्छ और सुन्दर अक्षरों में लिख देगा :—

(१) बड़ों का कहना मानो।

(२) मेरे भगवान् बालकों में हैं।

(३) अपना काम स्वयं करो और समय पर करो।

अध्यापन विधि—छात्रों को उपरोक्त पंक्तियाँ अपनी-अपनी अभ्यास पुस्तिका में लिखने को कहा जावेगा। अध्यापक बालकों को सहायता व मार्गदर्शन देता रहेगा।

अध्याय २

श्रुति लेख पाठ : एक नमूना

शाला का नाम······ कक्षा········ खण्ड········

छात्र संख्या······ दिनांक········ समय········

सामान्य उद्देश्य

(१) छात्रों में सृजनात्मक कार्य करने की रुचि उत्पन्न करना।

(२) शुद्ध लिखने का अभ्यास कराना।

(३) विराम चिन्हों के प्रयोग का ज्ञान कराना।

विशिष्ट उद्देश्य—

सहायक सामग्री—कक्षोपयोगी सामान्य उपकरण।

पूर्व ज्ञान—छात्र सप्ताह में एक दिन श्रुति लेख लिखते हैं और उन्हें श्रुति लेख लिखने का सामान्य अभ्यास है।

प्रस्तावना—जिस प्रकार सुलेख लिखना, सुन्दर लिखने के अभ्यास का अवसर देता है। सस्वर वाचन सही उच्चारण के अभ्यास का अवसर देती है उसी प्रकार श्रुति लेख सही लिखने के अभ्यास का अवसर देता है। श्रुति लेख का भाषा शिक्षण में महत्वपूर्ण स्थान है।

उद्देश्य कथन—आज हम श्रुति लेख लिखने का अभ्यास करेंगे और देखेंगे कि कौन-कौन, किस-किस सीमा तक सही लिखना सीख चुका है।

शीर्षक—"श्रुति लेख" (यह शीर्षक श्यामपट्ट पर लिख दिया जायेगा)।

पाठ का विकास—अध्यापक छात्रों से अपनी-अपनी अभ्यास पुस्तिकायें खोलने को कहेगा। वह उन्हें इस विषय में सचेत करेगा कि प्रथम बार जब वह पुस्तक से उस गद्यांश को बोलेगा, जिसे श्रुति लेख के अन्तर्गत लिखना है तो छात्र केवल [illegible] लिखने को कहा जावे तभी वे लिखेंगे।

से कोई भी हस्तक्षेप किया जावे। भूमि की सुव्यवस्था-सम्बन्धी किन्हीं भी योजनाओं के मार्ग में यह एक भारी अड़चन हमारे देश में है।

द्वितीय वाचन—शिक्षक अब छात्रों से लिखने को कहेगा और प्रथम वाचन के अनुसार शनैः-शनैः बोलता जावेगा। बालक लिखते जावेंगे। इस प्रकार सम्पूर्ण अनुच्छेद को बालकों से लिखा दिया जावेगा।

तृतीय वाचन—इस बार शिक्षक अनुच्छेद को इस दृष्टि से पढ़ेगा कि अगर बालक पूर्व पठन के समय कुछेक शब्द छोड़ गये हों तो उनकी पूर्ति करलें और अगर कहीं अशुद्धि रह गई हो तो उसे शुद्ध करलें।

शुद्धिकरण—अब अध्यापक प्रत्येक छात्र की अभ्यास पुस्तिका, उसके दूसरे छात्र को दे देगा और कक्षा में पाठ्यपुस्तक की उस पृष्ठ पर खुलवाकर जिस पर से श्रुतिलेख का अनुच्छेद लिया गया है, छात्रों से अशुद्ध शब्दों को अंकित (X) करने को कहेगा। अशुद्धियों को गिनकर संख्या को अभ्यास पुस्तिका के हाशिये (Margin) में लिखने को कहेगा।

मूल्यांकन—शिक्षक श्यामपट्ट पर निम्नलिखित तालिका तैयार करेगा :—

क्रम संख्या	अशुद्धि संख्या	छात्र संख्या					
		दि० —	दि० —	दि० —	दि० —	दि० —	दि० —
१	२	३	३	३	३	३	३
२	०						
३	३						
४	४						
५	५						
६	६						
७	७						
८	८						
	९						
	१० (या इससे अधिक)						

श्रुति लेख पाठ : एक नमूना

शाला का नाम······ कक्षा········ खण्ड·······

छात्र संख्या······ दिनांक········ समय········

सामान्य उद्देश्य

(१) छात्रों में सृजनात्मक कार्य करने की रुचि उत्पन्न करना।

(२) शुद्ध लिखने का अभ्यास कराना।

(३) विराम चिन्हों के प्रयोग का ज्ञान कराना।

विशिष्ट उद्देश्य—

सहायक सामग्री—कक्षोपयोगी सामान्य उपकरण।

पूर्व ज्ञान—छात्र सप्ताह में एक दिन श्रुति लेख लिखते हैं और उन्हें श्रुति लेख लिखने का सामान्य अभ्यास है।

प्रस्तावना—जिस प्रकार सुलेख लिखना, सुन्दर लिखने के अभ्यास का अवसर देता है। सस्वर वाचन सही उच्चारण के अभ्यास का अवसर देती है उसी प्रकार श्रुति लेख सही लिखने के अभ्यास का अवसर देता है। श्रुति लेख का भाषा शिक्षण में महत्त्वपूर्ण स्थान है।

उद्देश्य कथन—आज हम श्रुति लेख लिखने का अभ्यास करेंगे और देखेंगे कि कौन-कौन, किस-किस सीमा तक सही लिखना सीख चुका है।

शीर्षक—"श्रुति लेख" (यह शीर्षक श्यामपट्ट पर लिख दिया जावेगा)।

पाठ का विकास—अध्यापक छात्रों से अपनी-अपनी अभ्यास पुस्तिकायें खोलने को कहेगा। वह उन्हें इस विषय में सचेत करेगा कि प्रथम बार जब वह पुस्तक से उस गद्यांश को बोलेगा, जिसे श्रुति लेख के अन्तर्गत लिखना है तो छात्र केवल सुनेंगे। जब उन्हें लिखने को कहा जावे तभी वे लिखेंगे।

पाठन विधि :—

प्रथम वाचन—शिक्षक निम्नलिखित अनुच्छेद का वाचन करेगा। प्रत्येक वाक्य को खण्ड में विभाजित करके एक-एक खण्ड को बोलता जावेगा। वाचन इस तरह करेगा कि बालक यह समझ सकें कि किस-किस स्थान पर विराम चिन्ह लगाने चाहिएँ।

अनुच्छेद—

भारत में एक बड़ी समस्या भूमि पर किसानों के पैतृक स्वामित्व की है। पिता की मृत्यु के उपरान्त किसान के सारे खेत बटौती के रूप में उसके पुत्र को मिलते हैं और पुत्र के मरने पर पौत्र को। भूमि के इस व्यक्तिगत और पैतृक स्वामित्व के कारण कोई किसान नहीं चाहता कि उसके खेतों के सम्बन्ध में बाहर

से कोई भी हस्तक्षेप किया जाये। भूमि की सुव्यवस्था-सम्बन्धी किन्ही भी योजनाओं के मार्ग मे यह एक भारी अड़चन हमारे देश में है।

द्वितीय वाचन—शिक्षक अब छात्रों से लिखने को कहेगा और प्रथम वाचन के अनुसार शनै-शनैः बोलता जावेगा । बालक लिखते जायेंगे । इस प्रकार सम्पूर्ण अनुच्छेद को बालको को लिखा दिया जावेगा ।

तृतीय वाचन—इस बार शिक्षक अनुच्छेद को इस दृष्टि से पढ़ेगा कि अगर बालक पूर्व पठन के समय कुछेक शब्द छोड़ गये हों तो उनकी पूर्ति करलें और अगर कहीं अशुद्धि रह गई हो तो उसे शुद्ध करलें ।

शुद्धिकरण—अब अध्यापक प्रत्येक छात्र की अभ्यास पुस्तिका, उससे तीसरे छात्र को दे देगा और कक्षा से पाठ्यपुस्तक को उस पृष्ट पर खुलवाकर जिस पर से श्रुतिलेख का अनुच्छेद लिया गया है, छात्रों से अशुद्ध शब्दों को अंकित (X) करने को कहेगा। अशुद्धियों को गिनकर संख्या को अभ्यास पुस्तिका के हाशिये (Margin) में लिखने को कहेगा।

मूल्यांकन—शिक्षक श्यामपट्ट पर निम्नलिखित तालिका तैयार करेगा :—

क्रम संख्या	अशुद्धि संख्या	छात्र संख्या					
		दि०	दि०	दि०	दि०	दि०	दि०
१	२	३	३	३	३	३	३
२	२						
३	३						
४	४						
५	५						
६	६						
७	७						
८	८						
९	९						
१०	१० (या इससे						

अध्याय

श्रुति लेख पाठ : एक नमून

शाला का नाम······ कक्षा·········

छात्र संख्या······· दिनांक·········

सामान्य उद्देश्य

(१) छात्रों में सृजनात्मक कार्य करने की रुचि उत्पन्न क

(२) शुद्ध लिखने का अभ्यास कराना।

(३) विराम चिन्हों के प्रयोग का ज्ञान कराना।

विशिष्ट उद्देश्य—

सहायक सामग्री—कक्षोपयोगी सामान्य उपकरण।

पूर्व ज्ञान—छात्र सप्ताह में एक दिन श्रुति लेख लिखते हैं लेख लिखने का सामान्य अभ्यास है।

प्रस्तावना—जिस प्रकार सुलेख लिखना, सुन्दर लिखने के अभ देता है। सस्वर वाचन सही उच्चारण के अभ्यास का अवसर देती श्रुति लेख सही लिखने के अभ्यास का अवसर देता है। श्रुति लेख क में महत्त्वपूर्ण स्थान है।

उद्देश्य कथन—आज हम श्रुति लेख लिखने का अभ्यास क कि कौन-कौन, किस-किस सीमा तक सही लिखना सीख चुका है।

शीर्षक—"श्रुति लेख" (यह शीर्षक श्यामपट्ट पर लिख दिया

पाठ का विकास—अध्यापक छात्रों से अपनी-अपनी अभ्यास पु को कहेगा। वह उन्हें इस विषय में सचेत करेगा कि प्रथम बार जब व उस गद्यांश को बोलेगा, जिसे श्रुति लेख के अन्तर्गत लिखना है तो सुनेंगे। जब उन्हें लिखने को कहा जावे तभी वे लिखेंगे।

पाठन विधि :—

प्रथम वाचन—शिक्षक निम्नलिखित अनुच्छेद का वाचन करेग वाक्य को खण्ड में विभाजित करके एक-एक खण्ड को बोलता जावेगा। तरह करेग······ मझें कि किस-किस स्थान पर विराम चि चाहिएँ

भूमि पर किसानों के पैतृक स्वामित्व के सारे खेत बपौती के रूप में उनके को। भूमि के इस व्यक्तिगत और पैतृ नहीं चाहता कि उनके खेतों के सम्बन्ध में

से कोई भी हस्तक्षेप किया जाये। भूमि की सुव्यवस्था-सम्बन्धी किन्ही भी योजनाओं के मार्ग में यह एक भारी अड़चन हमारे देश में है।

द्वितीय वाचन—शिक्षक अब छात्रों से लिखने को कहेगा और प्रथम वाचन के अनुसार शनैः-शनैः बोलता जावेगा। बालक लिखते जायेंगे। इस प्रकार सम्पूर्ण अनुच्छेद को बालको को लिखा दिया जावेगा।

तृतीय वाचन—इस बार शिक्षक अनुच्छेद को इस दृष्टि से पढ़ेगा कि अगर बालक पूर्व पठन के समय कुछेक शब्द छोड़ गये हों तो उनकी पूर्ति करलें और अगर कहीं अशुद्धि रह गई हो तो उसे शुद्ध करलें।

शुद्धिकरण—अब अध्यापक प्रत्येक छात्र की अभ्यास पुस्तिका, उससे तीसरे छात्र को दे देगा और कक्षा से पाठ्यपुस्तक को उस पृष्ठ पर खुलवाकर जिस पर से श्रुतिलेख का अनुच्छेद लिया गया है, छात्रों से अशुद्ध शब्दों को अंकित (X) करने को कहेगा। अशुद्धियों को गिनकर सख्या को अभ्यास पुस्तिका के हाशिये (Margin) में लिखने को कहेगा।

मूल्यांकन—शिक्षक श्यामपट्ट पर निम्नलिखित तालिका तैयार करेगा :—

क्रम संख्या	अशुद्धि संख्या	छात्र संख्या					
		दि०	दि०	दि०	दि०	दि०	दि०
१	२	३	३	३	३	३	३
२	२						
३	३						
४	४						
५	५						
६	६						
७	७						
८	८						
९	९						
१०	१० (या इससे ज्यादा)						

शिक्षक निम्नलिखित प्रश्नों द्वारा कोष्ठक क्रमांक ३ की पूर्ति करेगा :—

(१) वे छात्र जिनके एक प्रशुद्धि है वे हाथ ऊँचा करें।

(२) वे छात्र जिनके दो प्रशुद्धियाँ हैं वे हाथ ऊँचा करें।

(३) वे छात्र जिनके तीन प्रशुद्धियाँ हैं वे हाथ ऊँचा करें।

(इस प्रकार क्रम संख्या २० तक की पूर्ति कराली जावेगी)

(यह तालिका शिक्षक सारे सत्र के श्रुति लेख के दिनांक के अनुसार पूर्ण करता जावे जिससे कक्षा की प्रगति का लगातार मूल्यांकन होता रहना सम्भव होगा

कक्षा कार्य—वे प्रशुद्धियाँ जो अधिकांश छात्रों ने की हैं उनको श्यामपट्ट पर लिखकर बालकों को यह समझाया जावेगा कि इनमें ज्यादातर बालकों ने गलती क्यों की है।

गृह कार्य—प्रशुद्धियों को घर से सही लिखकर लाने को कहा जावेगा।

गद्य पाठ : एक नमूना

शाला का नाम······ कक्षा······ खण्ड······

छात्र संख्या······ दिनाक······ समय······

सामान्य उद्देश्य—

(१) छात्रो मे गद्यों को पढने और भावो को समझने की क्षमता पैदा करना।

(२) अपने भावो को लिखकर व्यक्त करने की योग्यता पैदा करना।

(३) शब्दभण्डार एवं सूक्ति भण्डार की वृद्धि करना।

(४) गद्य लिखने की विभिन्न शैलियों से परिचित कराना।

(५) गद्य लेखक के भावों के अनुसार सस्वर पाठ करना सिखाना।

विशिष्ट उद्देश्य :—

छात्रों को शिकारियों के जीवन की विशेषताओं स अवगत कराना।

सहायक सामग्री—कक्षोपयोगी सामान्य उपकरण।

पूर्वज्ञान—छात्र इसी स्तर के विभिन्न गद्य पाठो को पढ़ चुके है।

प्रस्तावना—(शिक्षक निम्नलिखित प्रश्न पूछ कर पाठ को प्रस्तावित करेगा)

(१) वनों और पहाडी भागो मे कौन-कौन से हिंसक पशु पाये जाते हैं?

(२) उन हिंसक पशुओं से निकटवर्ती गाँवों को क्या खतरा रहता है?

(३) उनमे बचाव के लिए लोग क्या करते हैं?

उद्देश्य कथन—इसी प्रकार के बचाव प्रयत्न में जो एक घटना घटी उसे ही हम यहाँ "बाघ से भिड़न्त"—शीर्षक के अन्तर्गत पढ़ेंगे। पाठ निम्नलिखित है :—

"बाघ से भिड़न्त"

(श्री राम शर्मा)

किसी ने बाहर से पुकारा, "मास्टर साहब! मास्टर साहब!! जरा बाहर आइये। एक आदमी बाघ की खबर लेकर आया है।" देखा तो बाहर पश्मीने की चादर ओढ़े मेरे शिकारी मित्र पंडित लक्ष्मीदत्त थपलियाल खड़े है और उनकी बगल मे एक हाड़ का ककाल बूढ़ा खड़ा है। बूढ़े की मुखाकृति उसकी अन्तर्वेदना की द्योतक थी।

एक तो दिन भर की थकावट, दूसरे कुसमय और तिस पर भी कड़ाके का जाड़ा। तबीयत बाहर निकलने को नहीं करती थी, पर उस बूढ़े ने मेरे कधे पर हाथ रखकर कहा, "मालिक, ऊपर देखो। ठीक उस डाँडे पर मेरी गाय मरी पड़ी है। वहाँ से चार फर्लांग पर पहाड़ की दूसरी ओर दूसरी गाय मरी पड़ी है।"

बूढ़े की बात सुनकर बाघ को मारने की इच्छा प्रबल हुई। लक्ष्मीदत्त जी

और मुझमें चार मिनिट के लिए परामर्श हुआ। परामर्श क्या था, एक प्रकार की युद्ध-कान्फ्रेंस-सी थी जिसमें अपने शत्रु की सब चालों का ख्याल किया गया।

बाघ ने दो गायें मारी थी। परामर्श में हम लोग इस नतीजे पर नहीं आये कि एक ही बाघ ने दो गायों को मारा है। सम्भव है, मारा हो। पहली गाय को मारने के पश्चात् यदि किसी प्रकार वह वहाँ से भगा दिया गया हो तो उसने दूसरी गाय को मार्ग में पाकर पेट की अग्नि शांत करने के लिए मार डाला हो और यह भी सम्भव था कि दूसरी गाय को किसी दूसरे ही बाघ ने मारा हो। मेरी राय यही थी और लक्ष्मीदत्त जी ने मुझे प्रधान मान कर मेरी बात मान ली।

दो बाघों की आशंका में हम लोगों ने अपने दल को दो भागों में विभाजित कर लिया। लक्ष्मीदत्त जी दूसरी गाय की लाश की ओर चले जो सामने के डांडे पर मरी पड़ी हुई गाय से चार फर्लांग दूर थी। मैं डांडे की ओर चला और यह निश्चय हुआ कि समय अधिक हो जाने पर लाश पर आज बैठना ठीक नहीं, क्योंकि बैठने के लिए स्थान दिन में चार बजे तक बन जाना चाहिए था, जिससे बाघ को किसी बात का शक न हो। क्रमशः

पाठ का विकास—पाठ का विकास दो अन्वितियों में किया जायेगा :—

प्रथम अन्विति—किसी ने·········किया गया।

द्वितीय अन्विति—बाघ ने·········शक न हो।

अध्यापन विधि—

(१) आदर्श पाठ—शिक्षक प्रथम अन्विति का सस्वर आदर्श पाठ करेगा।

(२) अनुकरण वाचन—इसी अन्विति का एक या अधिक छात्र सस्वर वाचन करेंगे।

बोध परीक्षात्मक प्रश्न—

(१) मास्टर साहब के यहाँ कुसमय कौन लोग आये थे?

(२) वे किस काम से आये थे?

स्पष्टीकरण—

शब्द	अर्थ	विधि	श्यामपट्ट कार्य
कंकाल	अति दुर्बल	वाक्य प्रयोग	बीमारी के बाद मोहन कंकाल मात्र रह गया है।
मुखाकृति	शक्ल	वाक्य प्रयोग	मनोहर की मुखाकृति सुन्दर है।
मर्मवेदना	हृदय की पीड़ा	वाक्य प्रयोग	भौतिक दुःख को तो सहा जा सकता है परन्तु मर्मवेदना नहीं सही जा सकती।
[illegible]	बेवक्त, अनुपयुक्त समय	वाक्य प्रयोग	कुसमय किसी के घर जाना अच्छा नहीं लगता।
[illegible]	[illegible]	वाक्य प्रयोग	[illegible]

विचार विश्लेषणात्मक प्रश्न :—

(१) मास्टरजी ने जब बाहर देखा तो किनको खड़ा पाया ?

(२) पं० लक्ष्मीदत्त की बगल में कौन खड़ा था ?

(३) बूढ़े की आकृति क्या व्यक्त कर रही थी ?

(४) बूढ़े ने मास्टरजी के कन्धे पर हाथ रखकर क्या कहा ?

(५) बूढ़े की बात का मास्टरजी पर क्या प्रभाव पड़ा ?

(६) लक्ष्मीदत्त जी से उन्होंने क्या परामर्श किया ?

(७) इस परामर्श को युद्ध-कान्फ्रेंस-सा क्यों कहा गया है ?

द्वितीय अन्विति :—

(१) आदर्श पाठ—शिक्षक द्वारा द्वितीय अन्विति का सस्वर आदर्श पाठ।

(२) अनुकरण वाचन—छात्रों द्वारा सस्वर वाचन।

बोध परीक्षात्मक प्रश्न :—

(१) लक्ष्मीदत्तजी ने मास्टरजी की किस राय को मान लिया ?

(२) बैठने के लिए स्थान चार बजे तक बन जाना क्यों जरूरी माना
ा है ?

स्पष्टीकरण :—

शब्द	अर्थ	विधि	श्यामपट्ट कार्य
ी अग्नि	भूख	वाक्य प्रयोग	पेट की अग्नि बिना कुछ खाये पिए शान्त नहीं होती।
भाजित	बाँट देना	वाक्य प्रयोग	अगर सारे काम को अलग-अलग लोगों में दिया जावे तो वह जल्दी पूरा हो सकता है।
ाशका	सन्देह	वाक्य प्रयोग	कमजोर विद्यार्थी को फेल होने की आशंका रहती है।

विचार विश्लेषणात्मक प्रश्न :—

(१) बाघ ने कितनी गायें मारी थीं ?

(२) दोनों मित्र परामर्श करने पर किस नतीजे पर नहीं आ सके ?

(३) मास्टरजी की बातों की सच्चाई के विषय में क्या राय थी ?

(४) दोनों शिकारी दो भागों में क्यों विभाजित हो गये ?

(५) बाघ को किसी बात का शक न हो इसके लिए क्या करना चाहिए ?

पद्य पाठ : एक नमूना

शाला का नाम .... कक्षा .... खण्ड ....
छात्र संख्या .... दिनांक .... समय ....

सामान्य उद्देश्य :—

(i) छात्रों की विचार एवं कल्पना शक्ति का विकास करना।

(ii) छात्रों को कविता की रसानुभूति का अनुभव कराना।

(iii) छात्रों में सस्वर, लय और भाव-भंगिमा के साथ कविता पाठ की क्षमता पैदा करना।

(iv) छात्रों में सुन्दर कविताओं के प्रति सराहना पैदा करना।

(v) छात्रों में कविताओं के पढ़ने की रुचि का विकास करना।

विशिष्ट उद्देश्य—'माँ कह एक कहानी' नामक कविता पाठ पढ़ाना और बालकों को करुण-रस और बालहठ का ज्ञान कराना।

सहायक सामग्री—कक्षोपयोगी सामान्य उपकरण।

पूर्वज्ञान—छात्र कुछेक कवितायें पढ चुके है।

प्रस्तावना :—

(१) घर में बच्चे कहानियाँ साधारणतः किस समय सुनना पसन्द करते है ?

(२) किस उम्र के बच्चे कहानियाँ सुनना पसन्द करते है ?

(३) ये कहानियाँ घर में साधारणतः कौन सुनाता है ?

(४) अगर घर में दादी या नानी न हो तो छोटा बालक किससे कहानी सुनाने को कहेगा ?

उद्देश्य कथन—आज हम एक ऐसी ही कविता का पाठ करेंगे जिसमे कि बालक अपनी माता से कहानी कहने का आग्रह करता है। यह कविताश मैथिलीशरण गुप्त द्वारा लिखित 'यशोधरा' से लिया गया है। इस कविता का शीर्षक है—"माँ कह एक कहानी"।

कविता निम्नलिखित है :—

(कवि श्री मैथिलीशरण गुप्त लिखित यशोधरा से)

माँ कह एक कहानी

राहुल —माँ कह एक कहानी, हाँ माँ एक कहानी।
यशोधरा—बेटा, समझ लिया क्या तूने मुझको अपनी नानी ?
राहुल —कहती है मुझसे यह चेटी, तू मेरी नानी की बेटी।
कह माँ कह लेटी ही लेटी, राजा था या रानी ?
राजा था या रानी ? माँ कह एक कहानी ॥

यशो०— तू है हठी मान धन मेरे, सुन उपवन में बड़े सवेरे।
तात भ्रमण करते थे तेरे, जहाँ सुरभि मनमानी॥
राहुल— जहाँ सुरभि मनमानी ? हाँ माँ यही कहानी॥
यशो०— गाते थे खग कल-कल स्वर से, सहसा एक हंस ऊपर से
गिरा, बिद्ध होकर खर शर से, हुई पक्ष की हानी॥
राहुल— हुई पक्ष की हानी ? करुणा-भरी कहानी॥
यशो०— चौंक उन्होंने उसे उठाया, नया जन्म सा उसने पाया।
इतने में आखेटक आया, लक्ष्य-सिद्धि का मानी॥
राहुल— लक्ष्य सिद्धि का मानी ? कोमल कठिन कहानी॥
यशो०— माँगा उसने आहत पक्षी, तेरे तात किन्तु थे रक्षी।
तब उसने जो था खग भक्षी, हठ करने की ठानी॥
राहुल— हठ करने की ठानी ? अब बढ़ चली कहानी॥
यशो०— हुआ विवाद सदय निर्दय में, उभय आग्रही थे स्व विषय में
गई बात तब न्यायालय में, सुनी सभी ने जानी॥
राहुल— सुनी सभी ने जानी ? व्यापक हुई कहानी॥
यशो०— राहुल तू निर्णय कर इसका, न्याय पक्ष लेता है किसका ?
कह दे निर्भय जय हो जिसकी, सुन लूँ तेरी बानी।
राहुल— माँ मेरी क्या बानी ? मैं सुन रहा कहानी॥
कोई निरपराध को मारे, तो क्यों अन्य उसे न उबारे।
रक्षक पर भक्षक को वारे, न्याय दया का दानी।
यशो०— न्याय दया का दानी ? तूने गुनी कहानी॥

आदर्श पाठ :—

(१) अध्यापक द्वारा सम्पूर्ण कविता का उपर्युक्त गति, लय, हाव-भाव आदर्श पाठ। (छात्रों द्वारा पुस्तक खोलने से पूर्व)

(२) अध्यापक द्वारा सम्पूर्ण कविता का पुनः आदर्श पाठ (इस समय छात्र पुस्तक खोल लेंगे)।

कतिपय छात्रों द्वारा सस्वर पाठ :—

छात्रों से भी आदर्श पाठ के अनुसार ही पाठन करने को कहा जावेगा। पाठ पूरा हो जाने पर उच्चारण की अशुद्धियाँ छात्रों की सहायता से सही की जावेंगी।

भावविश्लेषणात्मक प्रश्न—छात्रों से निम्नलिखित प्रश्न पूछे जावेंगे :—

(१) राहुल किससे कहानी कहने को कह रहा है ?
(२) माता क्या उत्तर देती है ?
(३) माता ने कहानी में—उपवन में किसके घूमने की बात कही ?
(४) राहुल के पिता जब उपवन में घूम रहे थे तो हंस कहाँ से आकर गिरा ?
(५) हंस क्यों आ गिरा था ?

(६) राहुल के पिता (सिद्धार्थ) ने क्या किया ?
(७) आखेटक ने सिद्धार्थ से क्या चाहा ?
(८) जब आखेटक हंस लेने की हठ पर जमा रहा तो क्या हुआ ?
(९) बात सब लोगों को किस प्रकार मालूम हुई ?
(१०) राहुल ने इस विवाद का क्या निर्णय किया ?
(११) इस निर्णय से राहुल के ज्ञान के विषय में हम क्या अनुमान लगा सकते हैं ?

अध्यापक द्वारा आदर्श पाठ—सौन्दर्यानुभूति के प्रश्न पूछने से पूर्व अध्यापक आदर्श पाठ करेगा जिससे पाठ में निहित सौन्दर्य की अभिव्यक्ति के लिए कक्षा तत्पर हो जावे।

सौन्दर्यानुभूति के प्रश्न:—कक्षा से निम्न प्रश्न पूछे जावेंगे :—

सौन्दर्यानुभूति के प्रश्न

(१) 'राहुल को उसकी माता कहानी नहीं सुनाना चाहती हैं' यह विचार किन पंक्तियों से स्पष्ट होता है ?
(२) कवि ने राहुल के लिए हठी शब्द का प्रयोग क्यों किया है ?
(३) यशोधरा ने पुत्र को धन क्यों कहा है ?
(४) बगीचे की सुन्दरता इस कविता के किन अंशों से स्पष्ट होती है ?
(५) राहुल ने इस कहानी को करुणाभरी कहानी क्यों कहा।
(६) कवि ने 'सदय' शब्द का प्रयोग किस व्यक्ति के लिए किया है ?
(७) सिद्धार्थ के किस काम से उनका दयावान होना प्रकट होता है ?
(८) निर्दय शब्द किसके लिए प्रयोग में आया है ?
(९) आखेटक का निर्दय होना उसके किस काम से प्रकट होता है ?
(१०) न्यायालय में जाने वाली बात किस प्रकार व्यापक हो जाती है ?
(११) माता यशोधरा राहुल से ही निर्णय क्यों कराना चाहती है ?
(१२) राहुल के निर्णय से उसकी किस भावना का परिचय मिलता है ?
(१३) 'न्याय' को 'दया' का दानी क्यों कहा गया है ?
(१४) यशोधरा ने अन्त में 'तूने सुनी कहानी' क्यों कहा है ?

तुलनात्मक अध्ययन—अध्यापक उपरोक्त नमूने की ही दूसरी कविता जिसमें पुत्र ने माता से कहानी कहने को कहा हो, अगर वे जानते हों तो सुनाने को कहेगा। छात्रों को ऐसी कहानी की जानकारी होगी तो वह सुनी जाकर तुलना कराई जावेगी, अन्यथा निम्न कविता जो श्यामपट्ट पर लिखित होगी कक्षा के सामने प्रस्तुत की जावेगी :—

सुना माँ ऐसी एक कहानी
सुना माँ ऐसी एक कहानी।
जिसको दादा दाऊ ने भी नहीं आज तक जानी॥

श्याम कहानी मुझे न ग्राती पर तूने हठ ठानी।
तो सुन मुझे याद ग्राती है, सुन्दर वीर कहानी ॥
राजा दशरथ के घर जन्में राम बड़े सुत ज्ञानी।
कौशल्या माता थी उनकी, राजा की पटरानी ॥
कैकेयी ने राजतिलक पै की थी अति नादानी।
दिलवाया बनवास राम को राजनीति नहीं मानी ॥
गये राम वन को सह सीता ले लक्ष्मण सेनानी।
हर ले गया वहाँ सीता को रावण महा अभिमानी ॥
कस निज होठ, लाल कर ग्राँखें, पूर्व जन्म स्मृति मानी।
अभी मारता हूँ रावण को बोले सारंग पानी ॥
मैं सुन चुका कहानी ॥

अध्यापक द्वारा आदर्श पाठ—अध्यापक तुलनात्मक कविता का उपयुक्त गति, लय, हाव-भाव से पाठ करेगा।

तुलनात्मक प्रश्न :—

(i) इस कविता में कहानी कहने का आग्रह कौन कर रहा है?
(ii) कृष्ण यह आग्रह किससे कर रहे हैं?
(iii) माता ने किसकी कहानी सुनाई?
(iv) माता की कहानी न कहने की भावना जिन पंक्तियों में स्पष्ट होती है वे पंक्तियाँ दोनों कविताओं से ढूँढ निकालिये।

अध्यापक द्वारा मूल कविता का आदर्श पाठ—अध्यापक मूल कविता का अन्तिम बार आदर्श पाठ करेगा, जिससे कक्षा उस कविता एवं उसके भावों से प्रभावित रहते हुए विसर्जित हो सके।

व्याकरण पाठ : एक नमूना

शाला का नाम.......... कक्षा.......... खण्ड.......
छात्र संख्या.......... दिनांक.......... समय.........

सामान्य उद्देश्य :—

(१) छात्रों को शुद्ध एवं परिमार्जित भाषा को प्रयोग में लाना सिखाना।
(२) छात्रों को नवीन शब्दों का निर्माण करना सिखाना।
(३) भाषा का प्रयोग करते हुए शुद्धाशुद्ध की विधिवत् विवेचना करने की क्षमता उत्पन्न करना।

सहायक सामग्री—कक्षोपयोगी सामान्य उपकरण।

पूर्वज्ञान—छात्रों ने 'संज्ञा' का अध्ययन कर लिया है।

प्रस्तावना—निम्न वाक्य श्यामपट्ट पर लिखकर प्रश्न पूछे जावेंगे :—

(१) मेहनती लड़के की प्रशंसा होती है।
(२) सुस्त विद्यार्थी को फेल होने का डर रहता है।
(३) अच्छे काम से तारीफ होती है।

प्रश्न :—

(१) प्रथम वाक्य में कौनसा शब्द संज्ञा है ?
(२) दूसरे वाक्य में कौनसा शब्द संज्ञा है ?
(३) तीसरे वाक्य में कौनसा शब्द संज्ञा है ?
(४) इन वाक्यों में मेहनती, सुस्त, अच्छा उक्त संज्ञा शब्दों की क्या विशेषता बताते हैं ?

उद्देश्य कथन—आज हम संज्ञा की विशेषता बताने वाले शब्दों का अध्ययन करेंगे।

शीर्षक—'संज्ञा की विशेषता बताने वाले शब्द' (यह शीर्षक श्यामपट्ट पर लिख दिया जावेगा)

पाठ का विकास—श्याम-फलक (ब्लैक बोर्ड रोलप) पर लिखित निम्नलिखित वाक्य कक्षा के सामने प्रस्तुत किये जावेंगे।

(१) उसने सफेद टोपी पहन रखी है।
(२) मैंने काली गाय खरीदी है।
(३) यहां पर दस बेंचें हैं।
(४) यहां पर चालीस छात्र हैं।
(५) उन्होंने खट्टे आम खरीदे।
(६) मैंने मीठा पपीता खाया।

(७) उसने बहुत खाना खाया।
(८) मैंने थोड़ा पानी पिया है।

उपरोक्त वाक्यों पर बारी-बारी से निम्नलिखित प्रश्न पूछे जावेंगे :—

प्रश्न—प्रथम वाक्य में कौनसा शब्द संज्ञा है ?
उत्तर—'टोपी' शब्द संज्ञा है।
प्रश्न—टोपी के विषय में क्या बात कही गई है ?
उत्तर—वह सफेद है।
प्रश्न—सफेद रंग टोपी के विषय में क्या जाहिर करता है ?
उत्तर—यह टोपी के रंग या विशेषता को जाहिर करता है।

(२)

प्रश्न—द्वितीय वाक्य में कौनसा शब्द संज्ञा है ?
उत्तर—'गाय' शब्द संज्ञा है।
प्रश्न—गाय किस रंग की है ?
उत्तर—वह काले रंग की है।
प्रश्न—काला रंग गाय के विषय में क्या जाहिर करता है ?
उत्तर—वह गाय के रंग या विशेषता को जाहिर करता है।

(३)

प्रश्न—तृतीय वाक्य में कौनसा शब्द संज्ञा है ?
उत्तर—'बेंचें' संज्ञा है।
प्रश्न—बेंचें कितनी हैं ?
उत्तर—वे दस हैं।
प्रश्न—दस की संख्या बेंचों के बारे में क्या जाहिर करती है ?
उत्तर—यह बेंचों की संख्या या विशेषता को जाहिर करती है।

(४)

प्रश्न—चतुर्थ वाक्य में कौनसा शब्द संज्ञा है ?
उत्तर—'छात्र' संज्ञा है।
प्रश्न—छात्र कितने हैं ?
उत्तर—वे चालीस हैं।
प्रश्न—चालीस की संख्या छात्रों के विषय में क्या जाहिर करती है ?
उत्तर—यह छात्रों की संख्या या विशेषता को जाहिर करती है।

(५)

प्रश्न—पंचम वाक्य में कौनसा शब्द संज्ञा है ?
उत्तर—'आम' संज्ञा है।
प्रश्न—आम कैसे हैं ?
उत्तर—वे खट्टे हैं।
प्रश्न—खट्टापन आम के विषय में क्या जाहिर करता है ?

उत्तर—ग्राम की बुराई या विशेषता को जाहिर करता है।

(६)

प्रश्न—षष्टम वाक्य में कौनसा शब्द संज्ञा है ?

उत्तर—'पपीता' संज्ञा है।

प्रश्न—पपीता कैसा है ?

उत्तर—वह मीठा है।

प्रश्न—मीठा होना पपीते के विषय में क्या जाहिर करता है ?

उत्तर—पपीते का गुण या विशेषता को जाहिर करता है।

(७)

प्रश्न—सप्तम वाक्य में कौनसा शब्द संज्ञा है ?

उत्तर—'खाना' संज्ञा है।

प्रश्न—खाना कितना है ?

उत्तर—वह बहुत है।

प्रश्न—बहुत होना 'खाना' संज्ञा के विषय में क्या जाहिर करता है ?

उत्तर—यह परिमाण या विशेषता को जाहिर करता है।

(८)

प्रश्न—अष्टम वाक्य में कौनसा शब्द संज्ञा है ?

उत्तर—'पानी' संज्ञा है।

प्रश्न—पानी कितना है ?

उत्तर—वह थोड़ा है।

प्रश्न—थोड़ा होना पानी के विषय में क्या जाहिर करता है ?

उत्तर—यह परिमाण या विशेषता को जाहिर करता है।

उपरोक्त वाक्यों (जिनकी संख्या आवश्यकतानुसार बढ़ाई या घटाई जा सकती है) पर प्रश्न पूछने और उनके उत्तर प्राप्त करने के क्रम में शिक्षक प्रत्येक वाक्य में विशेषण शब्द के नीचे रेखा खींचता जावेगा या प्रत्येक वाक्य में जिस विशेषण का प्रयोग हुआ है उसे उस वाक्य के दाईं ओर लिखता जावेगा। प्रश्नों के पूछने का काम पूरा होने पर निम्न प्रश्नों के आधार पर नियमीकरण कराया जावेगा।

प्रश्न—प्रत्येक वाक्य के रेखांकित (या सामने अंकित) शब्द संज्ञा के विषय में क्या बताते हैं ?

उत्तर—वे शब्द संज्ञा की विशेषता बताते हैं।

प्रश्न—ऐसे शब्दों को हम किस नाम से संबोधित कर सकते हैं ?

उत्तर—(यहाँ छात्र विचार करेंगे। शिक्षक उन्हें इस काम में मदद करेगा। अगर छात्र उत्तर नहीं दे सकेंगे तो शिक्षक यहाँ बतावेगा कि ऐसे शब्दों को व्याकरण में 'विशेषण' कहते हैं। विशेषण शब्द श्यामपट्ट पर लिख दिया जावेगा)

प्रश्न—उपरोक्त आधार पर विशेषण की क्या परिभाषा हुई ?

पत्र का प्रारूप	प्रश्न (संभावित उत्तर भी मार्गदर्शन के लिए दिए जा रहे हैं)
कलकत्ता	स्थान :— (१) हम पत्र में दाईं ओर ऊपरी किनारे पर सबसे पहले क्या लिखेंगे ? (उ०—हम जहाँ से पत्र लिखा जावेगा उस स्थान का नाम लिखेंगे।)
दिनांक.......	दिनांक :— (२) हम पत्र लिखने का दिनांक किस जगह पर लिखेंगे ? (उ०—अगर छात्र न बता सकें तो शिक्षक उसे प्राप्त किसी पोस्टकार्ड को दिखाकर उत्तर प्राप्त करेगा)।
पूज्य पिताजी,	सम्बोधन :— (३) हम पत्र में पिताजी को किस तरह संबोधित करेंगे ? (उ०—पूज्य पिताजी, आदरणीय पिताजी) (४) 'पूज्य पिताजी'—पत्र में किस ओर लिखेंगे ? (छात्र स्थान बतावेंगे अन्यथा शिक्षक सहायता करेगा)
प्रणाम।	अभिवादन :— (५) जब हम कहीं भी किसी से मिलते हैं तो एक दूसरे की तरफ देखते ही क्या करते हैं ? (उ०—एक दूसरे से नमस्ते, जयरामजी की, प्रणाम, नमस्कार या दण्डवत करते हैं) (६) हमें पिताजी का इस पत्र में किस शब्द द्वारा अभिवादन करना चाहिए ? (उ०—प्रणाम शब्द द्वारा)
मैं यहाँ पर स्वस्थ और प्रसन्न हूँ। *विश्वास है आप भी वहाँ पर स्वस्थ और* प्रसन्न होंगे। आपने जो रुपये मुझे भेजे थे वे खर्च हो चुके हैं। मुझे रुपये की आवश्यकता है। कृपा करके १००) (सौ रुपया) शीघ्र रवाना कीजिये। माताजी को प्रणाम। मुन्नी और कौशल को प्यार।	
आपका आज्ञाकारी पुत्र श्याम मनोहर	
पता :— श्री शिवकुमार शर्मा ३/७८८ अमल-कांटा, उदयपुर (राजस्थान)	

पत्र का प्रारूप	प्रश्न (संभावित उत्तर भी मार्गदर्शन के लिए दिए जा रहे हैं)
कलकत्ता दिनांक...... पूज्य पिताजी, प्रणाम । मैं यहाँ पर स्वस्थ और प्रसन्न हूं । विश्वास है आप भी वहाँ पर स्वस्थ और प्रसन्न होंगे । आपने जो रुपये मुझे भेजे थे वे खर्च हो चुके हैं । मुझे रुपये की आवश्यकता है । कृपा करके १००) (सौ रुपया) शीघ्र रवाना कीजिये । माताजी को प्रणाम । मुन्नी और कौशल को प्यार । आपका आज्ञाकारी पुत्र श्याम मनोहर पता :— श्री शिवकुमार शर्मा ३/२८८ अमन-कोटा, उदयपुर (राजस्थान)	स्थान :— (१) हम पत्र में दाईं ओर ऊपरी किनारे पर सबसे पहले क्या लिखेंगे? (उ०—हम जहाँ से पत्र लिखा जावेगा उस स्थान का नाम लिखेंगे ।) दिनांक :— (२) हम पत्र लिखने का दिनांक किस जगह पर लिखेंगे? (उ०—अगर छात्र न बता सकें तो शिक्षक उसे प्राप्त किसी पोस्टकार्ड को दिखाकर उत्तर प्राप्त करेगा) । सम्बोधन :— (३) हम पत्र में पिताजी को किस तरह सबोधित करेंगे? (उ०—पूज्य पिताजी, आदरणीय पिताजी) (४) 'पूज्य पिताजी'—पत्र में किस ओर लिखेंगे? (छात्र स्थान बतावेंगे अन्यथा शिक्षक सहायता करेगा) अभिवादन :— (५) जब हम कहीं भी किसी से मिलते हैं तो एक दूसरे की तरफ देखते ही क्या करते हैं? (उ०—एक दूसरे से नमस्ते, जयरामजी की, प्रणाम, नमस्कार या दण्डवत् करते हैं) (६) हमें पिताजी का इस पत्र में किस शब्द द्वारा अभिवादन करना चाहिए? (उ०—प्रणाम शब्द द्वारा)

पत्र का प्रारूप	प्रश्न (संभावित उत्तर भी मार्गदर्शन के लिए दिए जा रहे हैं)
	मूल जानकारी :—
	(७) अब हमें पिताजी को अपने स्वास्थ्य और प्रसन्नता के लिए क्या लिखना चाहिए ? (उ०—मैं यहाँ पर स्वस्थ और प्रसन्न हूँ)
	(८) हम पिताजी के स्वास्थ्य और प्रसन्नता के लिए क्या लिखेंगे ? (उ०—विश्वास है आप भी वहाँ पर प्रसन्न होंगे)
	(९) पिताजी ने पहले जो रुपये भेजे थे उसके लिए क्या लिखोगे ? (उ०—आपने जो रुपये भेजे थे वे खर्च हो चुके हैं)
	(१०) अब कितने रुपये मँगवाना चाहते हो ? (उ०—सौ रुपया मँगवाना चाहते हैं)
	(११) यह बात इस पत्र में किस तरह लिखेंगे ? (उ०—कृपा करके सौ रुपया शीघ्र रवाना कीजिए ?)
	(१२) तुमको इस पत्र में माता जी को किन शब्दों में आदर देना चाहिए ? (उ०—माताजी को प्रणाम)
	(१३) छोटे भाई-बहिन के लिए किस स्नेह सूचक वाक्य का यहाँ प्रयोग करोगे ? (उ०—मुन्नी और कौशल को प्यार)
	सम्बन्ध सूचन :—
	(१४) पिता कैसा व्यवहार करने वाले पुत्र से प्रसन्न रहते हैं ? (उ०—आज्ञाकारी पुत्र से प्रसन्न रहते हैं)
	(१५) पत्र के अन्त में तुम साथ क्या लिखोगे ? (उ०—आपका आज्ञाकारी पुत्र)
	हस्ताक्षर :—
	(१६) आप अपने हस्ताक्षर किस जगह करेंगे ? (उ०—पत्र के अन्त में करेंगे)

पत्र का प्रारूप	प्रश्न (संभावित उत्तर भी मार्गदर्शन के लिए दिए जा रहे हैं)
	पता
	नाम :— (१७) पत्र के पते में सबसे पहले क्या लिखना चाहिए ? (उ०—जिसे भेजना है उसका नाम लिखना चाहिए)
	मकान-संख्या :— (१८) नाम के पश्चात् क्या लिखना चाहिए । (उ०—मकान का नम्बर लिखना चाहिए)
	मुहल्ला :— (१९) मकान के नम्बर के पश्चात् क्या लिखना चाहिए ?(उ०—मुहल्ले का नाम लिखना चाहिए)
	नगर :— (२०) मुहल्ले के पश्चात् क्या लिखना चाहिए ? (उ०—नगर का नाम लिखना चाहिए)
	राज्य :— (२१) अन्त में क्या लिखना चाहिए ? (उ०—राज्य का नाम लिखना चाहिए)

श्यामपट्ट कार्य—बालकों को इस पत्र को अपनी अभ्यास पुस्तिकाओं में लिखने का अवसर दिया जायेगा। शिक्षक इस अवसर पर कक्षा का निरीक्षण करेगा और आवश्यकतानुसार बालकों की सहायता करेगा।

पुनरावृत्ति :—

(१) पत्र में अपना स्थान कहाँ लिखते हैं ?
(२) दिनांक कहाँ लिखते हैं ?
(३) सम्बोधन सूचक शब्द कहाँ लिखते हैं ?
(४) पिता के अभिवादन के लिए किस शब्द का प्रयोग किया जाता है ?
(५) अभिवादन के पश्चात् क्या-क्या लिखा करते हैं ?
(६) अन्त में हम अपने को किस प्रकार सम्बोधित करते ?
(७) अपने हस्ताक्षर कहाँ करेंगे ?
(८) पते में सबसे पहले किसका नाम लिखते हैं ?
(९) इसके पश्चात् क्या-क्या लिखते हैं ?

गृह-कार्य—अपने पिता को पत्र लिखकर उनसे निवेदन कीजिए कि वे अपनी कुशलता के समाचार शीघ्र भेजें।

(नोट—कक्षा के स्तर के अनुसार पत्र के समापन को घटा या बढ़ाकर पत्र लिखाया जाना चाहिए।)

निबन्ध पाठ : एक नमूना

शाला का नाम······ कक्षा······ खण्ड······

छात्र संख्या······ दिनांक······ समय······

सामान्य उद्देश्य :—

(१) बालकों में शुद्ध, सरल, मुहावरेदार भाषा लिखने की आदत डालना।

(२) उनके शब्द भण्डार की वृद्धि करना।

(३) उनकी कल्पना शक्ति को बढ़ाना।

विशिष्ट उद्देश्य—गाँव की हाट पर निबन्ध लिखवाना।

सहायक सामग्री—कक्षोपयोगी सामान्य उपकरण।

पूर्वज्ञान—बालक अपने विचार सरल भाषा में व्यक्त करने की क्षमता रखते हैं।

प्रस्तावना—(शिक्षक निम्नलिखित प्रश्न पूछकर पाठ को प्रस्तावित करेगा) :—

(१) हम अपनी दैनिक आवश्यकता का सामान कहाँ से खरीदते हैं ?

(२) इन दुकानों से हम कौन-कौन सी चीजें खरीदा करते हैं ?

(३) सस्ती और सब तरह की चीजें हमारे गाँव में प्रति सप्ताह किस दिन बिकने के लिए आती हैं ?

(४) इस दिन जो बाजार लगता है उसे क्या कहते हैं ?

उद्देश्य कथन—आज हम एक निबन्ध लिखेंगे जिसका शीर्षक होगा—"गाँव की हाट।"

शीर्षक—"गाँव की हाट" (यह शीर्षक श्यामपट्ट पर लिख दिया जावेगा)।

पाठ का विकास—शिक्षक छात्रों से प्रश्न पूछता जावेगा और छात्रों के उत्तरों के आधार पर श्यामपट्ट पर निबन्ध की रूप रेखा अंकित करता जावेगा। पाठ एक ही इकाई में पूरा किया जावेगा।

निबन्ध की रूप रेखा, जिसे शिक्षक श्यामपट्ट पर लिखता जावेगा	प्रश्न
गाँव की हाट	
(क) हाट की परिभाषा	(१) हाट से आप लोग क्या समझते हो ?
(ख) वर्णन :—	
(१) हाट का दिन	(२) हमारे गाँव में हाट किस दिन लगती है ?

निबन्ध पाठ : एक नमूना

शाला का नाम······ कक्षा······ खण्ड······

छात्र संख्या······ दिनांक······ समय······

सामान्य उद्देश्य :—

(१) बालकों में शुद्ध, सरल, मुहावरेदार भाषा लिखने की आदत डालना।

(२) उनके शब्द भण्डार की वृद्धि करना।

(३) उनकी कल्पना शक्ति को बढ़ाना।

विशिष्ट उद्देश्य—गाँव की हाट पर निबन्ध लिखवाना।

सहायक सामग्री—कक्षोपयोगी सामान्य उपकरण।

पूर्वज्ञान—बालक अपने विचार सरल भाषा में व्यक्त करने की क्षमता रखते हैं।

प्रस्तावना—(शिक्षक निम्नलिखित प्रश्न पूछकर पाठ को प्रस्तावित करेगा) :—

(१) हम अपनी दैनिक आवश्यकता का सामान कहाँ से खरीदते हैं?

(२) इन दुकानों से हम कौन-कौन सी चीजें खरीदा करते हैं?

(३) सस्ती और सब तरह की चीजें हमारे गाँव में प्रति सप्ताह किस दिन बिकने के लिए आती हैं?

(४) इस दिन जो बाजार लगता है उसे क्या कहते हैं?

उद्देश्य कथन—आज हम एक निबन्ध लिखेंगे जिसका शीर्षक होगा—"गाँव की हाट।"

शीर्षक—"गाँव की हाट" (यह शीर्षक श्यामपट्ट पर लिख दिया जावेगा)।

पाठ का विकास—शिक्षक छात्रों से प्रश्न पूछता जावेगा और छात्रों के उत्तरों के आधार पर श्यामपट्ट पर निबन्ध की रूप रेखा अंकित करता जावेगा। पाठ एक ही इकाई में पूरा किया जावेगा।

निबन्ध की रूप रेखा, जिसे शिक्षक श्यामपट्ट पर लिखता जावेगा	प्रश्न
गाँव की हाट (क) हाट की परिभाषा	(१) हाट से आप लोग क्या समझते हो?
(ख) वर्णन :— (१) हाट का दिन	(२) हमारे गाँव में हाट किस दिन लगती है?

निबन्ध पाठ : एक नमूना

शाला का नाम······ कक्षा······ खण्ड······
छात्र संख्या······ दिनांक······ समय······

सामान्य उद्देश्य :—

(१) बालकों में शुद्ध, सरल, मुहावरेदार भाषा लिखने की आदत डालना।

(२) उनके शब्द भण्डार की वृद्धि करना।

(३) उनकी कल्पना शक्ति को बढ़ाना।

विशिष्ट उद्देश्य—गाँव की हाट पर निबन्ध लिखवाना।

सहायक सामग्री—कक्षोपयोगी सामान्य उपकरण।

पूर्वज्ञान—बालक अपने विचार सरल भाषा में व्यक्त करने की क्षमता रखते हैं।

प्रस्तावना—(शिक्षक निम्नलिखित प्रश्न पूछकर पाठ को प्रस्तावित करेगा) :—

(१) हम अपनी दैनिक आवश्यकता का सामान कहाँ से खरीदते हैं ?

(२) इन दुकानों से हम कौन-कौन सी चीजें खरीदा करते हैं ?

(३) सस्ती और सब तरह की चीजें हमारे गाँव में प्रति सप्ताह किस दिन बिकने के लिए आती हैं ?

(४) इस दिन जो बाजार लगता है उसे क्या कहते हैं ?

उद्देश्य कथन—आज हम एक निबन्ध लिखेंगे जिसका शीर्षक होगा—"गाँव की हाट।"

शीर्षक—"गाँव की हाट" (यह शीर्षक श्यामपट्ट पर लिख दिया जावेगा)।

पाठ का विकास—शिक्षक छात्रों से प्रश्न पूछता जावेगा और छात्रों के उत्तरों के आधार पर श्यामपट्ट पर निबन्ध की रूप रेखा अंकित करता जावेगा। पाठ एक ही इकाई में पूरा किया जावेगा।

निबन्ध की रूप रेखा, जिसे शिक्षक श्यामपट्ट पर लिखता जावेगा	प्रश्न
गाँव की हाट (क) हाट की परिभाषा	(१) हाट से आप लोग क्या समझते हो ?
(ख) वर्णन :— (१) हाट का दिन	(२) हमारे गाँव में हाट किस दिन लगती है ?

विषय की रूप रेखा, जिसे शिक्षक श्यामपट पर लिखता जायगा	प्रश्न
(२) हाट की जगह	(३) यह हाट गाँव में किस जगह लगती है ?
(३) बालक किन के साथ हाट में जाते हैं।	(४) इस हाट में तुम किसके साथ जाया करते हो ?
(४) बालकों द्वारा हाट में खरीद।	(५) इस हाट में से तुम क्या-क्या खरीदते हो ?
(५) बालिकाओं द्वारा हाट में खरीद।	(६) इस हाट में से तुम्हारी बहनें क्या-क्या खरीदती हैं ?
(६) पिताजी द्वारा हाट में खरीद।	(७) इस हाट में तुम्हारे पिताजी क्या खरीदने जाते हैं ?
(७) माताजी द्वारा हाट में खरीद।	(८) हाट में से तुम्हारी माता जी क्या क्या चीजें खरीदती हैं ?
(८) दुकानदारों द्वारा हाट में खरीद।	(९) इस हाट में गाँव के दुकानदार क्या-क्या खरीदते हैं ?
(९) बच्चों के लिए हाट में आनन्द की सामग्री। (डोलर, चकरी आदि मनोरंजन के साधन)	(१०) हाट देखने जाने में तुमको क्यों आनन्द आता है ?
(१०) हाट में सामान लाने के साधन।	(११) हाट में आने वाले व्यापारी बेचने का सामान किस तरह लाते हैं ?
(११) हाट की दुकान और स्थाई दुकानमें अन्तर।	(१२) हाट में लगने वाली दुकान और गाँव के सेठ जी की दुकान में क्या अन्तर होता है ?
(१२) हाट में भीड़ के इकट्ठी होने का कारण।	(१३) हाट के दिन गाँव में भीड़ किन कारणों से इकट्ठी हो जाती है ?
(ग) हाट लगने के लाभ :—	
(१) अच्छा सामान मिलना।	(१४) हाट में सामान अच्छा क्यों मिलता है ?
(२) सस्ता सामान मिलना।	(१५) हाट में सामान सस्ता क्यों मिलता है ?
(घ) हाट न लगने पर हानियाँ :—	
(१) खरीददार को पहुँचने वाली हानियाँ।	(१६) अगर हमारे गाँव में हाट न लगा करे तो हमें क्या नुकसान पहुंचे ?
(२) बेचने वालों को पहुँचने वाली हानियाँ।	(१७) अगर हाट लगना बन्द हो जावे तो उसमें सामान बेचने वाले लोगों और गरीब व्यापारियों

श्यामपट्टकार्य—बालकों को श्यामपट्ट पर अंकित रूपरेखा को अपनी अभ्यास पुस्तिकाओं में लिखने का अवसर दिया जावेगा। शिक्षक इस अवसर पर कक्षा का निरीक्षण करेगा और बालकों की आवश्यकतानुसार सहायता करेगा।

पुनरावृत्ति :—

(१) इस निबन्ध की रूपरेखा में हमने सबसे पहले किस बिन्दु पर विचार किया था ?

(२) हाट के वर्णन के अन्तर्गत हमने किन-किन बातों पर विचार किया था ?

(३) हाट के वर्णन के पश्चात् हमने किन-किन बिन्दुओं पर विचार किया था ?

गृह कार्य—अपनी अभ्यास पुस्तिकाओं में अंकित रूपरेखा के अनुसार—"गाँव की हाट" पर निबन्ध लिख कर लाइये।

(नोट—कक्षा के स्तर के अनुसार निबन्ध के प्रश्नों को बढ़ाया या घटाया जा सकता है)।

⊙

अध्याय 35

सामाजिक ज्ञान शिक्षण पद्धति

सामाजिक ज्ञान का स्थान एवं क्षेत्र—शिक्षा में व्यक्तिवाद के स्थान समाजवाद ज्यों-ज्यों बल पकड़ता गया त्यों-त्यों यह महसूस होने लगा कि बालक शिक्षा के उद्देश्यों के अन्तर्गत एक प्रमुख उद्देश्य यह भी है कि उसे समाज का यो सदस्य बनाया जाय। इस उद्देश्य की पूर्ति किस प्रकार हो इस पर मनन किया गया एक नवीन विषय की जरूरत महसूस हुई। पुराने पाठ्यक्रम को टटोलने पर भूगोल इतिहास, राजनीति, अर्थशास्त्र और समाज शास्त्र (सोशियोलोजी) ऐसे विषय दिखा दिए जो बालक में सामाजिक दृष्टिकोण पैदा करते हैं। परन्तु परम्परित शाला में तो बालक इन सब विषयों को साथ-साथ नहीं पढ़ता। वह तो वैकल्पिक विषयों के अन्तर्गत इनमें से एक या दो का ही अध्ययन करता है। इस दृष्टि से बालक का ज्ञान अधूरा ही रहता है। इस अधूरे ज्ञान को पूरा करने के लिए उपरोक्त सब विषयों का समावेश कर सामाजिक ज्ञान नामक एक नए विषय को जन्म दिया गया। इस विषय से यह अपेक्षा की गई कि इस नवीन विषय द्वारा, जो भूगोल, इतिहास, राजनीति, अर्थशास्त्र एवं समाज शास्त्र का सामन्जस्यपूर्ण रूप है, निश्चित ही बालकों को योग्य नागरिक बनाने में योग मिलेगा।

बालक शाला-समाज में रहते हुए शिक्षा प्राप्त करता है। कहना यों चाहिये कि वह समाज में रहते-रहते समाज में जीने की कला सीखता है। उसमें अनेकों गुण हो सकते हैं। उसका ज्ञान अनंत हो सकता है। उसके पास धन भी पर्याप्त मात्रा में इकट्ठा हो सकता है। परन्तु ये सभी बेकार हो सकते हैं अगर उसमें यह ज्ञान न हो कि मनुष्य रुपये के लेन-देन में कैसे व्यवहार करते हैं। राजनीति हमारे जीवन को कैसे प्रभावित करती है। हमारा खान-पान, रहन-सहन और रीति-रिवाज किस प्रकार प्राकृतिक वातावरण द्वारा प्रभावित होते हैं। अगर उसे यह पता नहीं हो कि सड़क पर चलने के, डाक घर की या सिनेमा घर की खिड़की पर टिकट खरीदते हुए खड़े रहने के नियम क्या हैं। आपस में मिलने पर अभिवादन कैसे किया जाता है। सुसंस्कृत व्यवहार क्या है। इन जानकारियों के अभाव के ही कारण कुछ व्यक्ति समाज में हास्य के पात्र बनते दिखाई देते हैं। इस दृष्टि से यह ज्ञान बड़ा जरूरी है। यह ज्ञान सामाजिक ज्ञान के अध्ययन से ही प्राप्त होता है। सामाजिक ज्ञान को बुनियादी तालीम में अनिवार्य विषयों के अन्तर्गत स्थान उपरोक्त महत्व के ही कारण दिया गया है। इस दृष्टि से हम यह कह सकते हैं कि सामाजिक ज्ञान का शिक्षा में स्थान बड़ा महत्वपूर्ण है और क्षेत्र बड़ा विस्तृत एवं व्यापक है।

सामाजिक ज्ञान की शिक्षा के उद्देश्य—सामाजिक ज्ञान की शिक्षा के उद्देश्यों के विषय में जाकिर हुसैन समिति ने विचार कर कुछ महत्वपूर्ण निर्णय किये हैं।

इसी ओर अन्य शिक्षा शास्त्रियों ने भी स्थान-स्थान पर अपने मत व्यक्त किये हैं। सामाजिक ज्ञान के उद्देश्यों की सूची निम्न प्रकार है :—

(१) नागरिकता के हकों और जिम्मेदारियों का ज्ञान करके बालकों को सुयोग्य नागरिक बनने में योग देना।

(२) आम तौर से मानव जाति की प्रगति और खास तौर से हिन्दुस्तान की प्रगति की तरफ बालकों की रुचि पैदा करना।

(३) सामाजिक नियम, रीति-रिवाज, खान-पान, वेशभूषा और रहन-सहन का प्राकृतिक वातावरण के आधार पर मूल्यांकन करने की शक्ति पैदा करना।

(४) अपने धर्म का एवं विभिन्न धर्मों का उनकी पृष्ठभूमि के आधार पर अध्ययन कर विभिन्न धर्मों के प्रति आदर की भावना पैदा करना।

(५) बालकों के मन में देश प्रेम पैदा करना, जिससे वे पिछले जमाने की इज्जत करें और आने वाले जमाने के बारे में यह विश्वास रखें कि यह देश प्रेम, सच्चाई, न्याय और शान्ति के आदर्श पर जीने वाली जाति का घर होगा।

(६) बालकों में ऐसे व्यक्तिगत और सामाजिक गुण पैदा करना, जिससे वे अध्ययन काल में सच्चे सहयोगी और बाद में अच्छे पड़ौसी बन सकें।

सामाजिक ज्ञान को एक इकाई के रूप में समझने पर तो यह स्पष्ट है कि विभिन्न विषयों में से प्रत्येक, जिनका इनमें समावेश है, उपरोक्त उद्देश्यों की पूर्ति में योग देता है। इस दृष्टि से एक ऐसा सामञ्जस्यपूर्ण पाठ, जिसमें सामाजिक ज्ञान के सब अंगों का समावेश होता है, उपरोक्त सब उद्देश्यों की पूर्ति करता है। परन्तु कभी-कभी ऐसा अवसर आता है जब कि केवल एक अंग जैसे इतिहास, भूगोल या अन्य एक विषय एक पाठ के अन्तर्गत पढ़ाया जाता है। ऐसे अवसर पर उस पाठ के उद्देश्य कुछ विशेष बन जायेंगे और सामाजिक ज्ञान के साधारण उद्देश्यों से आंशिक भिन्नता लिए हुए होते हैं। शिक्षकों के ऐसे अवसर हेतु ज्ञान सम्पन्न करने की दृष्टि से सामाजिक ज्ञान के प्रत्येक अंग की शिक्षा के उद्देश्य अलग-अलग दिये जा रहे हैं।

(क) इतिहास की शिक्षा के उद्देश्य :—

(१) भूतकाल का ऐसा ज्ञान देना जो वर्तमान को समझाने में सहायक हो सके।

(२) ऐसी योग्यता पैदा करना जिससे बालक सामाजिक समस्याओं पर निष्पक्ष एवं रचनात्मक निर्णय दे सके।

(३) अपनी सभ्यता के तत्वों के मूल्यांकन द्वारा अपने और राष्ट्रवासियों के प्रति उच्च विचार और वफादारी पैदा करना।

(४) बालकों में ऐतिहासिक और वैज्ञानिक दृष्टिकोण पैदा करना।

(५) यह विचार पैदा करना कि मानव का जीवन और समाज एक लगातार बदलने वाले क्रम में से गुजर रहे हैं। मानव और समाज की अन्तरनिर्भरता दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही है जिससे नई-नई समस्याएँ पैदा हो रही हैं और उनके नए-नए समाधान सामने आ रहे हैं।

(६) बालकों का प्रकृति में झुकाव पैदा कर ऐतिहासिक वस्तुओं के अध्ययन एवं निरीक्षण में रुचि पैदा करना।

(ख) भूगोल की शिक्षा के उद्देश्य :—

(१) बालकों का उनके प्राकृतिक वातावरण से परिचय कराना।

(२) उन्हें यह ज्ञान कराना कि मानव का वातावरण उसके जीवन, विचार, रहन-सहन, रीति-रिवाज को किस प्रकार प्रभावित करता है।

(३) एक देश का जीवन, विचार, रहन-सहन, रीति-रिवाज किस प्रकार दूसरे देशों को प्रभावित करता है।

(४) विभिन्न व्यक्तियों, विभिन्न मानव समूहों और विभिन्न राष्ट्रों के दृष्टिकोण को समझने की शक्ति पैदा करना।

(५) भौगोलिक तथ्यों के चित्र व ग्राफ बनाने व समझने की योग्यता पैदा करना।

(६) बालकों को यह स्पष्ट कराना कि मानव के विकास की कहानी उसके प्रकृति से युद्ध की कहानी है।

इतिहास और भूगोल दोनों में बड़ा निकट सम्बन्ध है। वरन् यह कहना चाहिए कि दोनों एक ही बात को कहने के दो तरीके हैं। आचार्य विनोबा जी ने कहा है "इतिहास और भूगोल सिखाने का अर्थ है बच्चों को काल और देश का परिचय देना। काल और देश दोनों इनके एक रूप हैं कि किसी भी भाषा में काल-वाचक शब्द का स्थलवाचक के लिए भी प्रयोग किया जाता है। ...जब हम कहते हैं कि इतिहास—भूगोल पढ़ाया जाय, तो उसका यही अर्थ है कि प्राचीनकाल और दूर देश के लोगों की जानकारी कराई जाए, यह जानकारी अगर निकट के लोगों की हो, पर पुराने जमाने की हो, तो 'इतिहास' बन जाती है और आज के ही जमाने के पर दूर देश के लोगों के बारे में हो तो भूगोल बन जाती है।" इस प्रकार देश और काल का परिवर्तन ही इतिहास को भूगोल और भूगोल को इतिहास बना देता है।

(ग) नागरिक शास्त्र की शिक्षा के उद्देश्य—नागरिक शास्त्र आज की शिक्षा में शासन यन्त्र, उसके कार्य और उत्तरदायित्व का ही अध्ययन नहीं कराता वरन् यह ऐसे विषय जैसे कुटुम्ब, स्कूल, धर्म, समाज सेवा, उद्योग, देशान्तरवास एवं अन्य आर्थिक एवं सामाजिक समस्याओं का भी अपने मे समावेश करता है। इसकी शिक्षा के उद्देश्य इस प्रकार हैं :—

(१) बालकों को शासन यन्त्र एवं उसके कार्य की जानकारी देना।

(२) बालक को आगामी जीवन में शासन यन्त्र में प्रभाव के साथ हिस्सा बँटाने का प्रशिक्षण देना।

(३) शासन यन्त्र की बजाय समाज हित को अधिक महत्व देने की मनो-वृत्ति पैदा करना क्योंकि शासन यन्त्र का अस्तित्व ही समाज हित के लिए है।

(४) बालकों में नागरिक आदर्श, नागरिक दृष्टि एवं सुनागरिक की आदतें पैदा करना।

(५) पर्याप्त एवं स्वीकृत तथ्यों के आधार पर निष्पक्ष निर्णय देने की शक्ति पैदा करना।

(६) उपरोक्त सब गुणों को समावेश करके चरित्रवान् एवं ऊँचे दर्जे के नागरिक तैयार करना।

(घ) अर्थशास्त्र की शिक्षा के उद्देश्य—अर्थशास्त्र एक ऐसा विषय है जो समाज के आर्थिक यन्त्र का अपने में समावेश करता है। हमारी अनेक सामाजिक समस्याएँ वास्तव में आर्थिक समस्याएँ हैं। इस दृष्टि से इस विषय का महत्व स्वयं स्पष्ट है। इस विषय के अध्ययन के निम्न उद्देश्य हैं :—

(१) बालक को समाज की आर्थिक समस्याओं के निरीक्षण का अवसर देना।

(२) बालक को वर्तमान आर्थिक नियमों की जानकारी निरीक्षण के द्वारा उत्पन्न समस्याओं के समाधान के रूप में देना।

(३) अर्थशास्त्र के नियमों को दैनिक जीवन में उपयोग करने की योग्यता बालक में उत्पन्न करना।

(४) राष्ट्र की कर नीति, आयात एवं निर्यात नीति आदि से उत्पन्न होने वाली समस्याओं से प्रारम्भिक परिचय कराना।

(५) अपने राष्ट्र के व्यक्तियों के आर्थिक स्तर का अन्य राष्ट्रों के व्यक्तियों की तुलना में अध्ययन का अवसर देना।

(६) उपरोक्त उद्देश्यों की प्राप्ति के आधार पर बालक के आर्थिक व्यवहार को उन्नत, परिष्कृत एवं सुसंस्कृत बनाना।

(ङ) समाज शास्त्र (सोशियोलोजी) की शिक्षा के उद्देश्य—समाज की स्थितियाँ, घटनाएँ एवं यथार्थता बहुत अंश में प्राकृतिक हैं। इनका वैज्ञानिक अध्ययन होना चाहिए। इस दृष्टि से इस विषय की शिक्षा के उद्देश्य इस प्रकार हैं :—

(१) सामाजिक समस्याओं का वैज्ञानिक पद्धति से अध्ययन करने का तरीका समझाना।

(२) समाज के सब अंगों से एवं उनकी साधारण (असाधारण नहीं) गतिविधियों से बालक का परिचय कराना।

(३) समाज की स्थितियों के प्रति एक वैज्ञानिक दृष्टिकोण पैदा करना।

(४) बालक में अपने समूह, राज्य, राष्ट्र एवं संसार की सामाजिक समस्याओं में महत्वपूर्ण योग देने की योग्यता पैदा करना।

सब उद्देश्य एक उद्देश्य के पूरक हैं—हमने सामाजिक ज्ञान के उद्देश्य और सामाजिक ज्ञान के प्रत्येक अंग की शिक्षा के उद्देश्यों का अध्ययन किया। उद्देश्यों की तालिका बहुत लम्बी बन गई है। ऐसी दशा में विषय को सरल एवं बोधगम्य बनाने की दृष्टि से यह स्पष्ट किया जाना चाहिए कि उपरोक्त उद्देश्यों में से प्रत्येक शिक्षा के एक महत्वपूर्ण उद्देश्य की पूर्ति में योग देता है। महाशय विनिंग ने किसी स्थान से उद्धृत कर इस उद्देश्य को इस प्रकार स्पष्ट किया है—

"जनतन्त्र की शिक्षा को प्रत्येक व्यक्ति में ऐसा ज्ञान, ऐसी रुचि, ऐसे आदर्श, ऐसी आदतें और ऐसी शक्ति पैदा करनी चाहिए जिससे वह अपना स्थान समाज में पाकर उस स्थान का, स्वयं एवं समाज को उन्नत उद्देश्यों की तरफ बढ़ाने में प्रयोग कर सके।"

सामाजिक ज्ञान पढ़ाने के तरीके—शिक्षा में विभिन्न पद्धतियों के विकास और उनके प्रयोग ने बालक के विकास में जो योग दिया है, उसके कारण यह जरूरी हो गया है कि शिक्षक उस ज्ञान से सम्पन्न हो। इसी पुस्तक के प्रथम भाग में प्रत्येक शिक्षण पद्धति का विस्तार से वर्णन दिया जा चुका है। इस दृष्टि से यहाँ केवल यह संकेत मात्र ही पर्याप्त होगा कि किन-किन शिक्षण पद्धतियों का इस विषय के शिक्षण एवं इस विषय के अंग-प्रत्यंग के शिक्षण में प्रयोग अधिक फलदायक होगा। विभिन्न पद्धतियाँ जिनके प्रयोग के अवसर बुनियादी शालाओं में सामाजिक ज्ञान के शिक्षण के अवसर पर आते हैं वे इस प्रकार हैं :—

(१) भाषण पद्धति—इस पद्धति का प्रयोग उच्च शिक्षा में उपयुक्त रहता है। छोटे बच्चे इस पद्धति के शिकार नहीं बनाये जावें तो अच्छा है। इस पद्धति का प्रयोग छोटी कक्षा में शिक्षक की बजाय बच्चों से भाषण दिलाये जाकर किया जा सकता है। इस पद्धति द्वारा पूरा पाठ कभी नहीं पढ़ाया जाना चाहिए। बुनियादी शाला में पाठ पढ़ाते समय साधारणतः इस पद्धति का प्रयोग निम्नलिखित अवसरों पर किया जा सकता है :—

(१) पाठ की प्रस्तावना के अवसर पर।

(२) छात्रों द्वारा कही गई बात को स्पष्ट करने के उद्देश्य से।

(३) पेचीदा स्थितियों पर बालकों का समय बचाने की दृष्टि से।

(४) वर्तमान ज्ञान को अधिक स्पष्ट करने की दृष्टि से पूर्व ज्ञान के आधार पर पाठ की पृष्ठभूमि तैयार करने के अवसर पर।

(५) बालकों में रुचि पैदा करने की दृष्टि से।

(६) किसी निर्णय एवं परिभाषा को स्पष्ट करने के उद्देश्य से।

(७) पाठ का सारांश बनाने की भावना से।

(२) पाठ्य पुस्तक पद्धति—पाठ्य पुस्तक पद्धति की आलोचना की जाती है। यह आलोचना इस कारण होती है कि इसके प्रयोग द्वारा बालकों की स्मरण शक्ति पर बड़ा बोझ डाला जाता है। इस खतरे से सतर्क रह कर पाठ्य पुस्तकों का प्रयोग किया जाना चाहिए। बुनियादी शाला में पुस्तकों का प्रयोग बालक निम्न अवसरों पर किया करेंगे :—

(१) कक्षा में प्राप्त समन्वित ज्ञान का गम्भीर और विस्तृत अध्ययन हेतु अपनी खुद की इच्छा से।

(२) अपनी स्वतन्त्र योजनाएँ तैयार करने के अवसर पर।

(३) शिक्षक द्वारा निर्देशित विभिन्न पुस्तकों के विभिन्न पाठों का अध्ययन किसी विशेष विषय की जानकारी के बढ़ाने की दृष्टि से।

(४) · प्राप्त ज्ञान को दुहराने एवं पक्का करने की दृष्टि में बालक अपनी पाठ्य पुस्तकों का अध्ययन करेंगे।

बालक पुस्तकें पढ़ना शुरू करें इसके पूर्व शिक्षक बालक को यह समझावेगा कि पुस्तक का अध्ययन किस प्रकार किया जाता है।

(३) योजना पद्धति—योजना (प्रोजेक्ट) से अर्थ है बाल निर्णित, बाल आयोजित, उद्देश्यपूर्ण ऐसी कृति जो जीवन की परिस्थितियों में सम्पन्न हो। इस पद्धति ने शिक्षा के क्षेत्र को भारी अंशों में प्रभावित किया है। कुछ शिक्षा विशेषज्ञों ने तो बुनियादी तालीम को भी योजना पद्धति का निखरा हुआ स्वरूप कह कर सम्बोधित किया है। इतिहास का शिक्षण इस पद्धति में ठीक नहीं बैठता। इसके अतिरिक्त सामाजिक ज्ञान के शेष अंग जैसे भूगोल, नागरिक शास्त्र, अर्थशास्त्र आदि सबका अध्ययन इस पद्धति द्वारा बड़ी सुन्दरता से किया जा सकता है। शिक्षक का स्थान इस योजना में एक सहयोगी एवं पथ-प्रदर्शक के रूप में बड़ा उत्तरदायित्वपूर्ण है। उसी के द्वारा बालक उचित एवं समयानुकूल निर्णय की ओर अग्रसर होंगे।

(४) समस्या पद्धति—जीवन का जो भाग प्रतिदिन असंख्य समस्याएँ हमारे सामने प्रस्तुत करता है, सफलता से जीने के लिए बालक को समस्याओं के हल करने का तरीका समझाना चाहिये। इसकी पूर्ति समस्या पद्धति करती है। समस्या पद्धति का इतिहास के शिक्षण में प्रयोग में लाना उपयुक्त नहीं माना जाता क्योंकि समस्या के हल करने की जो सच्ची परिभाषा है उसमें यह विषय ठीक नहीं बैठता। सामाजिक ज्ञान के अन्य सभी अंग इस पद्धति के प्रयोग के लिए उपयुक्त रहते हैं। उनमें प्रत्येक पाठ या प्रत्येक पाठ के विभिन्न अंग किसी प्रमुख समस्या को पैदा करके पढ़ाये जा सकते हैं।

(५) अनुसंधान विधि—महाशय आर्म स्ट्राग ने इस विधि का निर्माण विज्ञान के शिक्षण के लिए किया था। इस विधि का प्रयोग गणित में भी शुरू हुआ और आज सभी विषयों के अध्यापन में इसका प्रयोग होता है। बालक को स्वयं अनुभव प्राप्त हो, प्राप्त अनुभव के आधार पर उसमें ज्ञान पैदा हो और फिर वह स्वयं सत्य-असत्य को ढूंढ निकाले, यही इस पद्धति का आशय है। परन्तु बालक अनुसन्धान की समस्या से घबरा कर निराश न हो जावे। इस दृष्टि से शिक्षक को पग-पग पर बालक की सहायता एवं पथ-प्रदर्शन करना चाहिए। सामाजिक ज्ञान के विभिन्न अंगों के अन्तर्गत नक्शे बनाना आदि कार्य इस पद्धति से सिखाये जा सकते हैं।

(६) डाल्टन योजना—डाल्टन योजना वास्तव में काम करने की एक योजना है, पद्धति नहीं। परन्तु यह योजना एक पद्धति की जरूरत को पूरा करती है इसी कारण इसे शिक्षण पद्धतियों में स्थान प्राप्त हुआ और इसे पद्धति कहकर सम्बोधित करने की परिपाटी चल पड़ी है। इसमें बालक निश्चित काम को निश्चित समय में करने का ठेका लेता है और साधारण प्रयोगशाला में बैठ कर उसे पूरा करता है। जूनियर बेसिक शालाओं में यह पद्धति स्थान नहीं रखती। सीनियर

वैज्ञानिक शिक्षा में इसका प्रयोग हो सकता है। यह पद्धति सर्वत्र ज्यादा सामाजिक ज्ञान के अध्ययन में हुई है। इस पद्धति के लिए साधन सम्पन्न प्रयोगशाला एवं पुस्तकालय का बड़ा महत्व है। ऐसे स्कूल में जहाँ यह सुविधा नहीं हो यह पद्धति नहीं अपनाई जा सकती।

सामाजिक ज्ञान के पाठ्यक्रम में पाठ्य-सामग्री का समावेश—सामाजिक ज्ञान के पाठ्यक्रम में पाठ्य सामग्री का चयन बालक और वातावरण की आवश्यकता और समवाय के केन्द्र को दृष्टि में रखकर किया जाने की बड़ी जरूरत है। उपरोक्त बिन्दुओं पर पर्याप्त दृष्टि के अभाव में हम पाठ्यक्रम में ऐसे आदर्श ज्ञान का समावेश कर लेते हैं जो व्यावहारिकता में नहीं आ पाता। एक अच्छे पाठ्यक्रम के निर्माण में उपरोक्त बिन्दुओं पर दृष्टि रखना जरूरी है।

शिक्षण पद्धति में सहायक उपकरण—शिक्षा में सहायक उपकरण का प्रयोग बढ़ता जा रहा है। विभिन्न उपकरण विभिन्न विषयों के शिक्षण में लाभकारी रहते हैं। उनके विषय में विस्तृत जानकारी निम्न प्रकार है :—

(१) मानचित्र—मानचित्र का प्रयोग इतिहास में बालकों को दूरी एवं दिशा की जानकारी देने में लाभकारी रहता है। इनका प्रयोग भूगोल में भी आवश्यक है। सामाजिक ज्ञान के अन्य अंगों में इनके प्रयोग की सम्भावना कम है।

(२) ग्लोब—ग्लोब का प्रयोग भूगोल में विशेष प्रकार से लाभकारी रहता है। इतिहास में भी कभी-कभी इसका प्रयोग होता है।

(३) चार्ट्स, डायग्राम एवं ग्राफ—इनका प्रयोग इतिहास में नहीं होता। सामाजिक ज्ञान के शेष अंगों में इनका प्रयोग होने के अच्छे अवसर आते हैं।

(४) चित्र—चित्र प्रमुख समस्याओं की पूर्ति में सहायक होते हैं और बालक की उत्सुकता को सन्तुष्ट करने में योग देते हैं। इनका सामाजिक ज्ञान में अर्थशास्त्र के अलावा शेष सब अंगों में प्रयोग होता है।

(५) छाया चित्र—छाया चित्र एक ऐसा उपकरण है जिसमें श्रवण और निरीक्षण दोनों क्रियाओं का समावेश होता है। इस दृष्टि से यह सर्वश्रेष्ठ उपकरण है। इसका उपयोग इतिहास, भूगोल, नागरिक शास्त्र के शिक्षण में विशेष प्रकार से हो सकता है। इस यन्त्र का उपयोग दिन-दिन बढ़ता जा रहा है।

(६) टेलीविजन—यद्यपि टेलीविजन का भारत में उस प्रकार प्रयोग नहीं हुआ जैसा विदेशों में। परन्तु इसके अनुसंधान ने शिक्षा में अनेकों विकास होने की सम्भावना पैदा करदी है। इसके विकसित रूप के अन्तर्गत हमारी यह कल्पना है कि एक ऐसा दिन आवेगा जब एक राष्ट्र का एक आदर्श शिक्षक एक बार में ही सम्पूर्ण राष्ट्र के बालकों को पढ़ा सकेगा।

विभिन्न स्तर के बालकों की शिक्षा—प्रत्येक कक्षा में बालकों के तीन स्तर अधिकांशतः साधारण स्तर के छात्र होते हैं। शिक्षक अपना पाठ भी ऐसे बालकों को ही दृष्टि में रख कर तैयार किया करता है। इस प्रकार है कि कुछ थोड़े से ऐसे बच्चों को जो निम्न स्तर के हैं वे ज्ञान को ठीक

प्रकार से समझ नहीं पाते और वे बालक जो साधारण स्तर से उच्च स्तर के होते हैं उसके लिए कक्षा का दिया जाने वाला ज्ञान निम्न स्तर का होने के कारण वे उसमे रुचि नही ले पाते। ऐसे छात्रों पर शिक्षक को विशेष ध्यान देना चाहिये। निम्न स्तर के छात्रों को उसे अतिरिक्त समय में पथ-प्रदर्शन देना चाहिये और उन्हें कक्षा के साथ चलने में मदद करनी चाहिए। इसी प्रकार उच्च स्तर के छात्रों से सम्पर्क कायम रख कर उन्हें उच्च स्तर की पुस्तकों की जानकारी देकर उनकी बुद्धि को कुण्ठित होने से रोकना चाहिए और रचनात्मक कार्य में व्यस्त रखना चाहिए। शालाओं में निरीक्षित स्वाध्याय भी इसी आवश्यकता की पूर्ति के रूप में आयोजित किया जाता है।

उपसंहार—सामाजिक ज्ञान आज की शिक्षा मे महत्त्वपूर्ण स्थान लेता जा रहा है। इसके द्वारा समाज की, राज्य की, राष्ट्र की एव अन्तर्राष्ट्रीय अनेको समस्याओं के समाधान मे योग मिलेगा ऐसा विश्वास किया जाता है।

सारांश

सामाजिक ज्ञान का स्थान एवं क्षेत्र—सामाजिक ज्ञान की शिक्षा का स्थान शिक्षा में बड़ा महत्त्वपूर्ण है और इसका क्षेत्र बड़ा व्यापक है।

सामाजिक ज्ञान की शिक्षा के उद्देश्य—सुयोग्य नागरिक बनाना, देश और मानव की प्रगति में रुचि पैदा करना, रीति-रिवाजों का प्राकृतिक वातावरण के आधार पर मूल्यांकन करना, देश प्रेम पैदा करना एवं सामाजिक गुणों का विकास करना, सामाजिक ज्ञान की शिक्षा के उद्देश्य हैं।

इस विषय में मुख्यतः इतिहास, भूगोल, अर्थशास्त्र, नागरिक शास्त्र आदि विषयों का समावेश होता है। इनमें से प्रत्येक विषय बालक को सुयोग्य नागरिक बनाने में योग देता है।

सामाजिक ज्ञान पढ़ाने के तरीके—इस विषय के शिक्षण में आंशिक रूप में भाषण पद्धति और पाठ्य पुस्तक पद्धति का उपयोग होता है। योजना पद्धति और समस्या पद्धति का विशेष प्रकार से प्रयोग होता है एवं अनुसन्धान विधि का साधारण रूप में प्रयोग संभव है।

शिक्षण पद्धति में सहायक उपकरण—सहायक उपकरणों का प्रयोग अन्य विषयों की तुलना में सामाजिक ज्ञान में अधिक हो सकता है। इस दृष्टि से मानचित्र, ग्लोब, चार्ट्स, डायाग्राम, ग्राफ, चित्र, छायाचित्र और टेलीविजन का इस विषय के शिक्षण में अच्छा प्रयोग हो सकता है।

विभिन्न स्तर के बालकों की शिक्षा—निम्न स्तर के बालकों पर विशेष

ध्यान दिया जाकर शाला के अतिरिक्त समय में शिक्षक के निरीक्षण में उन्हें अध्ययन का अवसर दिया जाना चाहिए। उच्च स्तर के छात्रों को अधिक कार्य देकर एवं उनके लिए उच्च स्तर की पुस्तकें उपलब्ध की जाकर उनकी रुचि बनाए रखना चाहिए।

अभ्यासार्थ प्रश्न

(१) सामाजिक ज्ञान के स्वरूप एवं इसके शिक्षा के उद्देश्यों पर एक लेख लिखिये जो ४ पृष्ठ से कम न हो।

(२) सामाजिक ज्ञान के शिक्षण की पद्धति पर विवेचन करते हुए यह बताइये कि कमजोर लड़कों की शिक्षा का शिक्षक कैसे ध्यान रखेगा?

सामाजिक ज्ञान पाठ : एक नमूना

शाला का नाम……… कक्षा……… खण्ड………
छात्र संख्या……… दिनांक……… समय………

सामान्य उद्देश्य—

(१) बालकों के जीवन को उनकी योग्यता और वातावरण की शक्ति के अनुसार अधिक से अधिक उन्नत करना।

(२) बालकों को उन प्रभावों का ज्ञान कराना जो उनके एवं उनके सम्पर्क में आने वाले अन्य लोगों के जीवन को नियन्त्रित करते हैं।

(३) उनमें सहयोग की भावना का विकास करना।

(४) उनमें सहिष्णुता की भावना पैदा करना और दूसरों को समझने की आदत डालना।

विशिष्ट उद्देश्य—

बालकों को केरल राज्य की भौगोलिक, ऐतिहासिक, सामाजिक और सांस्कृतिक जानकारी देना।

सहायक सामग्री—

(१) भारत का राजनैतिक मानचित्र।

(२) भारत का प्राकृतिक मानचित्र।

(३) तिथि रेखा।

(४) कथकली नृत्य।

(५) दक्षिणी भारत के मन्दिर का चित्र।

पूर्व ज्ञान—बालक भारत के कुछेक अन्य राज्यों का अध्ययन कर चुके है।

प्रस्तावना—(पाठ को प्रस्तावित करने हेतु शिक्षक निम्नलिखित प्रश्न पूछेगा) :—

(१) हम किस राज्य मे रहते है ?

(२) भारत का सबसे बड़ा राज्य कौनसा है ?

(३) दक्षिणी भारत का सबसे छोटा राज्य कौनसा है ?

उद्देश्य कथन—आज हम केरल राज्य का अध्ययन करेंगे।

पाठ का विकास—पाठ को दो अन्वितियों में पढ़ाया जावेगा :—

(१) केरल राज्य का भौगोलिक तथा औद्योगिक अध्ययन।

(२) केरल राज्य का ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक अध्ययन।

(शिक्षक अन्विति का सारांश पाठ के विकास के साथ-साथ ही श्यामपट्ट पर लिखता जावेगा)

ध्यान दिया जाकर शाला के अतिरिक्त समय में शिक्षक के निरीक्षण में उन्हें अध्ययन का अवसर दिया जाना चाहिए। उच्च स्तर के छात्रों को अधिक कार्य देकर एवं उनके लिए उच्च स्तर की पुस्तकें उपलब्ध की जाकर उनकी रुचि बनाए रखना चाहिए।

अभ्यासार्थ प्रश्न

(१) सामाजिक ज्ञान के स्वरूप एवं इसके शिक्षा के उद्देश्यों पर एक लेख लिखिये जो ४ पृष्ठ से कम न हो।

(२) सामाजिक ज्ञान के शिक्षण की पद्धति पर विवेचन करते हुए यह बताइये कि कमजोर लड़कों की शिक्षा का शिक्षक कैसे ध्यान रखेगा ?

⊙

सामाजिक ज्ञान पाठ : एक नमूना

शाला का नाम········· कक्षा········· खण्ड·········
छात्र संख्या········· दिनांक ········· समय·········

सामान्य उद्देश्य—

(१) बालकों के जीवन को उनकी योग्यता और वातावरण की शक्ति के अनुसार अधिक से अधिक उन्नत करना।

(२) बालकों को उन प्रभावों का ज्ञान कराना जो उनके एवं उनके सम्पर्क में आने वाले अन्य लोगों के जीवन को नियन्त्रित करते हैं।

(३) उनमें सहयोग की भावना का विकास करना।

(४) उनमें सहिष्णुता की भावना पैदा करना और दूसरों को समझने की आदत डालना।

विशिष्ट उद्देश्य—

बालकों को केरल राज्य की भौगोलिक, ऐतिहासिक, सामाजिक और सांस्कृतिक जानकारी देना।

सहायक सामग्री—

(१) भारत का राजनैतिक मानचित्र।
(२) भारत का प्राकृतिक मानचित्र।
(३) तिथि रेखा।
(४) कथकली नृत्य।
(५) दक्षिणी भारत के मन्दिर का चित्र।

पूर्व ज्ञान—बालक भारत के कुछेक अन्य राज्यों का अध्ययन कर चुके हैं।

प्रस्तावना—(पाठ को प्रस्तावित करने हेतु शिक्षक निम्नलिखित प्रश्न पूछेगा) :—

(१) हम किस राज्य में रहते हैं ?
(२) भारत का सबसे बड़ा राज्य कौनसा है ?
(३) दक्षिणी भारत का सबसे छोटा राज्य कौनसा है ?

उद्देश्य कथन—आज हम केरल राज्य का अध्ययन करेंगे।

पाठ का विकास—पाठ को दो अन्वितियों में पढ़ाया जावेगा :—

(१) केरल राज्य का भौगोलिक तथा औद्योगिक अध्ययन।
(२) केरल राज्य का ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक अध्ययन।
(शिक्षक अन्विति का साराम पाठ के विकास के साथ-साथ ही श्यामपट्ट पर लिखता जावेगा)

प्रथम प्रन्विति—

अध्ययन बिन्दु	अध्ययन स्थितियाँ
केरल राज्य की स्थिति :— केरल राज्य के उत्तर में मैसूर, दक्षिण में मद्रास का कुछ भाग व समुद्र, पूर्व में मद्रास राज्य व पश्चिम में अरब सागर है। इस राज्य की लम्बाई करीब २०० मील और चौड़ाई ४० से ५० मील तक है।	(भारत का राजनैतिक मानचित्र दिखाकर निम्न प्रश्न पूछे जावेंगे) (१) भारत के मानचित्र में केरल राज्य दिखाइये। (२) इस राज्य के उत्तर में कौनसा राज्य है? (३) इस राज्य के दक्षिण में कौन सा राज्य है? (४) इस राज्य के पूर्व में कौनसा राज्य है? (५) इस राज्य के पश्चिम में कौन सा राज्य है?
केरल राज्य की प्राकृतिक बनावट :— केरल राज्य समुद्र तल से ऊँचाई की दृष्टि से निम्नलिखित भागों में बाँटा जा सकता है:— (१) ०' से ६००' (२) ६००' से १२००' (३) १२००' से ३०००' (४) ३०००' से ४५००' (५) ४५००' से ६०००' (६) ६०००' से ९०००' यहाँ पर उत्तर में नीलगिरी पर्वत और दक्षिण में इलायची की पहाड़ियाँ हैं।	(भारत का प्राकृतिक मानचित्र दिखाकर निम्न प्रश्न पूछे जावेंगे) (१) इस मानचित्र में हरा रंग किस ऊँचाई को बताता है? (२) इस मानचित्र में पीला रंग किस ऊँचाई को बताता है? (३) हल्का हरा रंग किस ऊँचाई को बताता है? (४) गहरा हरा रंग किस ऊँचाई को बताता है? (५) बहुत गहरा हरा रंग किस ऊँचाई को बताता है? (६) इस राज्य के उत्तरी भाग में कौनसा पर्वत है? (७) इस राज्य के दक्षिणी भाग में कौनसा पर्वत स्थित है?
यहाँ पर मैदान पश्चिमी भाग में स्थित हैं।	(८) इस राज्य में मैदान किस दिशा में है?
जलवायु :— केरल राज्य में औसत तापक्रम ८०° फ० और वर्षा १००" से २००" तक होती है। यहाँ पर दक्षिणी-पश्चिमी	*(भारत के मानचित्र के आधार पर निम्न प्रश्न पूछे जावेंगे)* (१) राजस्थान और केरल की तुलना में समुद्र के निकट कौनसा राज्य है?

अध्ययन बिन्दु	अध्ययन स्थितियाँ
मानसून से वर्षा होती है।	(२) इस आधार पर वर्षा किस राज्य में अधिक होनी चाहिए ?
पैदावार :— वर्षा अधिक होने से यहाँ चावल अधिक होता है। पहाड़ी ढालों पर कॉफी की पैदावार होती है। (कॉफी वहाँ पैदा होती है जहाँ पर गर्मी और सर्दी के तापक्रम का अन्तर कम होता है। समुद्री किनारे इसी कारण इसके लिए उत्तम रहते हैं) रेतीले समुद्री किनारों पर नारियल पैदा होता है। इलायची की पहाड़ियों पर जैसा कि इनके नाम से ही विदित है इलायची और गर्म मसाले पैदा होते हैं। जगलों में चन्दन भी होता है।	**पैदावार :—** (१) ऐसे खेतों में जहाँ पानी भरा रहता है, वहाँ पर कौनसी पैदावार होती है ? (२) ऐसे पहाड़ी ढालों पर जहाँ खूब वर्षा होती है—क्या पैदा होता है ? (३) रेतीले समुद्री किनारों पर क्या पैदा होता है ? (४) इलायची की पहाड़ियों पर क्या पैदा होता होगा ?
उद्योग-धन्धे :— यहाँ पर नारियल से तेल, कचली से चूड़ियाँ और जटा से डोरियाँ बनती हैं। अगरबत्ती व धूप बनाने के बड़े-बड़े कारखाने हैं। यहाँ पर कागज और प्लाईवुड के कारखाने हैं। सूती कपड़े के कारखाने हैं। यहाँ पर आवागमन के प्रमुख साधन रेलें और नावें हैं।	**उद्योग-धन्धे :—** (१) नारियल की गिरि किस काम आती है ? (२) नारियल की कचली किस काम आती है ? (३) नारियल की जटा किस काम आती है ? (४) चन्दन की लकड़ी से क्या-क्या बनता है ?

श्यामपट्ट सार—अन्विति के विकास के साथ-साथ ही शिक्षक द्वारा श्यामपट्ट पर अंकित बिन्दुओं को छात्रों को लिखने का अब अवसर दिया जावेगा। शिक्षक इस समय छात्रों के कार्य का निरीक्षण करता रहेगा।

द्वितीय अन्विति—

अध्ययन बिन्दु	अध्ययन स्थितियाँ
ऐतिहासिक पृष्ठभूमि :— लोक कथा के अनुसार विष्णु के अवतार भगवान् परशुराम ने इस प्रदेश को समुद्र के नीचे से निकाला और अपने	(१) राजस्थान के उदयपुर नगर को किस राजा ने बसाया था ? (२) उदयपुर के राजा किस देवता को मानते हैं ?

अध्ययन बिन्दु	अध्ययन स्थितियाँ
लोगों को दिया। चेरमान पेरुमल ने इस राज्य को अपने सरदारों और कुटुम्बियों में बाँट दिया और सन्यास ले लिया। यहाँ के राजा मार्तण्ड वर्मा ने सन् १७२९ में इस राज्य को संगठित किया। सन् १९५६ में मलयालम भाषी वर्तमान राज्य का निर्माण हुआ।	(अब शिक्षक श्याम फलक पर अंकित कर तिथि रेखा (Date Line) कक्षा के सामने प्रस्तुत करेगा और निम्न प्रश्न पूछेगा) (१) लोक कथा के अनुसार इस प्रदेश की भूमि के निर्माण के विषय में क्या बात कही जाती है? (२) चेरमान परुमल ने यहाँ क्या किया? (३) सन् १७२९ में राजा मार्तण्ड वर्मा ने कौनसा बड़ा काम किया? (४) सन् १९५६ में क्या घटना घटी?
सामाजिक एवं सांस्कृतिक स्थितियाँ :— त्योहार :— ओनम (Onam) यहाँ का प्रमुख त्योहार है। ऐसा माना जाता है कि महा बली राजा इस भाग में राज करता था। उससे विष्णु भगवान् बावन रूप धारण करके तीन पद भूमि दान लेने आये थे। उन्होंने उसकी सारी भूमि इतने में ही नापकर राजा बली को पाताल में भेज दिया था। लोगों की ऐसी धारणा है कि इस त्योहार के अवसर पर राजा बली यहाँ आता है और देखता है कि मेरे लोग कितने प्रसन्न हैं। इस त्योहार पर लोग अपने घरों को सजाते हैं और बड़ी धूम-धाम से मनाते हैं।	(१) हमारे राज्य में कौन-कौन से त्योहार मनाए जाते हैं?
कथकली नृत्य :—	(२) अपने यहाँ के प्रमुख नृत्य कौन-कौन से हैं?

अध्ययन बिन्दु	अध्ययन स्थितियाँ
यहाँ का कथकली नृत्य सारे भारत में प्रसिद्ध है। रामायण, महाभारत की कथायें इसमें दर्शाई जाती हैं। कथकली का पूरा कार्यक्रम ८ से १० घंटे तक चलता है। संध्या को शुरू होता है और सवेरे तक चलता रहता है।	(३) केरल का प्रमुख नृत्य कौनसा है ?
संगीत :—	
यहाँ का कर्नाटक संगीत सारे भारत में प्रसिद्ध है।	(४) अपने यहाँ के संगीत की क्या विशेषता है ?
शिक्षा :—	
केरल राज्य में ३१.४८ प्रतिशत लोग शिक्षित हैं।	(५) अपने यहाँ पर कितने प्रतिशत लोग शिक्षित हैं ?
राजधानी :—	
केरल राज्य की राजधानी त्रिवेन्द्रम नगर है। यहाँ का पद्मनाभ स्वामी का मन्दिर विशेष प्रकार से प्रसिद्ध है।	(६) अपने राज्य की राजधानी कौन सा शहर है ?
वास्तुकला :— उत्तरी भारत की वास्तुकला और दक्षिणी भारत की वास्तुकला दोनों भिन्न-भिन्न प्रकार की हैं।	(पद्मनाभ स्वामी के मन्दिर का चित्र दिखाकर निम्न प्रश्न पूछे जावेंगे) (१) अपने यहाँ के मन्दिरों के ऊपरी हिस्से को क्या कहते हैं ? (२) अपने यहाँ के मन्दिर के ऊपरी हिस्से में और इस मन्दिर के ऊपरी हिस्से में क्या अन्तर है ?

पुनरावृत्ति—रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :—

(१) केरल राज्य भारत के··········में स्थित है।

(२) यहाँ १००" से··········इंच तक वर्षा होती है।

(३) यहाँ का प्रमुख त्योहार··········है।

(४) यहाँ का··········नृत्य सारे भारत में प्रसिद्ध है।

(५) यहाँ की राजधानी··········नगर है।

(६) यहाँ का··········संगीत सारे भारत में प्रसिद्ध है।

गृह-कार्य—केरल राज्य भारत में किन-किन कारणों से प्रसिद्ध है?

⊙

सामान्य विज्ञान : शिक्षण पद्धति

विज्ञान की महत्ता एवं क्षेत्र—जीवन मे विज्ञान की महत्ता से कौन परिचित नहीं ? मानव समाज की प्रगति मे विज्ञान के सहयोग को भुलाया नही जा सकता। विज्ञान की निरन्तर प्रगति को देखते हुए दाँतों तले उँगली दबा लेनी पड़ती है। यद्यपि यह अवश्य है कि विज्ञान के विरोधी इस प्रगति को विनाश की ओर अग्रसर होना मानते हैं तथापि यह तो उन्हें मानना ही पड़ेगा कि वे स्वय इसके प्रयोग एव प्रभाव से कदापि वचित नहीं रह सकते। विज्ञान के अभाव मे हमारा जीवन कितना कष्टकर हो सकता था इसका किंचित् आभास हमारे उन पुरखाओं के जीवन से मिलता है जिनको विज्ञान प्रदत्त सुविधाएँ प्राप्त नही थी। तात्पर्य यह है कि हमारे सामाजिक जीवन को विज्ञान ने इतना प्रभावित किया है कि असभव बातें भी सम्भव होती जा रही हैं।

इस वैज्ञानिक युग मे मानव शिशु को यदि विज्ञान की सुविधाओं से परिचित नहीं कराया जाए तो यह उसके प्रति अन्याय होगा। विज्ञान की पढ़ाई से न केवल बालक का भावी जीवन ही सरलता एव सुख से व्यतीत होगा वरन् वह विज्ञान के उत्तरोत्तर अनुसधानों मे प्रवृत्त होकर समाज की सेवा भी कर सकेगा। अत विज्ञान की शिक्षा अवश्य दी जानी चाहिए।

अध्ययन की दृष्टि से इस विज्ञान के क्षेत्र को देखा जाय तो इसमें निम्न-लिखित ज्ञान सम्मिलित किए जा सकते है :—

(१) प्रकृति ज्ञान, (२) भौतिक शास्त्र, (३) शारीरिक ज्ञान एव स्वास्थ्य, (४) रसायन शास्त्र, (५) सौर मडल, (६) पशु विज्ञान आदि का अध्ययन।

सामान्य विज्ञान मे इन सभी का अध्ययन सम्मिलित किया जाता है। सामान्य विज्ञान के अध्ययन द्वारा कृषि, बागवानी, कताई, बुनाई आदि प्रत्येक उद्योग तथा घरेलू जीवन, सामाजिक जीवन आदि को अधिकाधिक प्रगतियुक्त बनाया जा सकता है।

बुनियादी शाला में सामान्य विज्ञान शिक्षण के उद्देश्य—आज के वैज्ञानिक युग मे विज्ञान की महत्ता को देखते हुए उसके शिक्षण के उद्देश्यो की एक लम्बी सूची बनाई जा सकती है। उनमे से प्रमुख निम्नलिखित है :—

(१) बालकों की निरीक्षण शक्ति का विकास करना।

(२) प्रकृति के उपकरणों का अधिकाधिक उपभोग कर उन पर विजय पाना सिखाना।

(३) प्रकृति के उपकरणों के उपयोग से आनन्द, सुख एव संतोष प्राप्त करना सिखाना।

(४) पशु एवं प्रकृति के अन्योन्याश्रित सम्बन्ध का ज्ञान कराना।

(५) भौतिक वस्तुओं के प्रयोग का ज्ञान कराना।

(६) जीवन को अधिक स्वस्थ, सुगम, सुखी व उपयोगी बनाना सिखाना।

(७) बालकों में अनुसन्धान, निरीक्षण, अनुभव एवं सिद्धान्त प्राप्ति की आदत डालना। उनकी खोज प्रवृत्ति का विकास कराना।

(८) अन्धविश्वासों, मिथ्या कथनों के प्रभावों से बालकों को बचाना।

(९) वस्तुओं की उत्पत्ति एवं प्रयोग तथा उनके फल की प्राप्ति की जिज्ञासा उत्पन्न करना।

(१०) आस-पास के प्राकृतिक परिवर्तनों से परिचित कराना तथा उनके कारणों को ढूंढने के लिए प्रेरित करना।

(११) वैज्ञानिकों के जीवन तथा उनकी कठिनाइयों से परिचित कर उनके प्रति श्रद्धा उत्पन्न करना।

(१२) विज्ञान के ज्ञान से बालकों के जीवन को व्यावहारिक बना कर उनके व्यक्तित्व का विकास करना।

(१३) सत्य को ढूंढ निकालना सिखाना।

(१४) बालक का नैतिक विकास कर उसे साहसी, आत्मनिर्भर एवं स्वाश्रयी बनना सिखाना।

(१५) बालकों का शारीरिक विकास कर उन्हें रोगों से बचना सिखाना।

(१६) बालकों में वैज्ञानिक प्रणाली द्वारा कार्य करने की आदत डालना।

बुनियादी शाला में सामान्य विज्ञान की पढ़ाई के अवसर—बुनियादी शिक्षा का माध्यम प्रकृति, उद्योग एवं समाज है। बालक को शिक्षा इन तीनों के द्वारा दी जाती है। प्रकृति में ही मानव की क्रियाओं का प्रारम्भ, संचालन और अंत है। मानव प्रकृति में ही उत्पन्न होकर प्रकृति की गोद में ही जीवन-यापन कर अंत में प्रकृति में ही विलीन हो जाता है। मानव मस्तिष्क प्रकृति के विभिन्न प्रकार के प्रयोगों से अपने जीवन को सुखमय बनाता है। प्रकृति से ही तरह-तरह के उद्योगों के सम्पा में सहायता लेता है। अतः बुनियादी शिक्षा प्रकृति का अधिकाधिक प्रयोग कर सिखाती है। इस शिक्षा पद्धति द्वारा अध्यापन काल में ऐसे अनेक अवसर आते जब विज्ञान के सिद्धान्तों को खोज निकालने, अनुभव करने की आवश्यकता हो है। बुनियादी शिक्षा प्रकृति और समाज के बीच संतुलन उपस्थित करने के अने अवसर उपस्थित करती है।

अतः अध्यापक को अवसर की खोज एवं प्रयोग में सतर्क रहना चाहिए इसके लिए सपूर्ण सत्र की योजना बनाकर उसे मास और दिनों के पाठों के रूप विभाजित कर लेना चाहिए। बुनियादी शिक्षा को समवायी पद्धति से उत्तम ढंग सामान्य विज्ञान की शिक्षा दी जा सकती है, पर पहले से तैयार योजना के अभाव में यह कार्य आसानी से सपादित होना कठिन है। प्रत्येक कक्षा में सामान्य विज्ञान सम्बन्धी ज्ञान कराने के अनुमानित अवसरों की योजना पहले से ही बना ली जानी

चाहिए। कक्षा तीन के लिए उपयुक्त अवसर और विज्ञान के ज्ञान की योजना इस प्रकार तैयार की जा सकती है :—

अवसर	सामान्य विज्ञान के विषय
(१) प्रातःकाल सफाई करते समय कूड़ा-कर्कट, कागज, गोबर, घासपात, मलमूत्र को उठाकर फेंकने के अवसरों से—	(१) सफाई के विभिन्न ढंग। (२) रोगों से बचाव के तरीके। (३) विभिन्न प्रकार के खाद, उनका बनाना, उनका महत्व एवं प्रयोग।
(२) प्रतिदिन की दिनचर्या, जैसे सुबह उठना, नित्य कर्म से निवृत्ति-जलपान, शारीरिक श्रम, भोजन करना, विश्राम, सोना आदि अवसरों द्वारा—	(१) व्यायाम के प्रकार व उनसे लाभ। (२) शरीर व्यवस्था तथा उसे स्वस्थ रखने के उपाय। (३) स्वास्थ्यप्रद संतुलित भोजन खाने का वैज्ञानिक ढंग, अधिक भोजन से हानियाँ एवं रोग उत्पत्ति। (४) ऋतुओं के अनुकूल रहन-सहन।
(३) शाला में पानी के प्रयोग के समय, यात्रा, प्रकृति पर्यटन आदि के समय नदी, नाला, सोता, तालाब, कुओं से पानी के प्रयोग के समय—	(१) साफ तथा गन्दे पानी की पहचान। (२) पानी को साफ करने की विभिन्न पद्धतियाँ। (३) गन्दे पानी के प्रयोग से विभिन्न रोग।
(४) कृषि कार्य तथा बागवानी के समय में लगे हुए कीड़ों को देखकर—	(१) विभिन्न प्रकार के कीड़ों का जीवन। (२) लाभदायक कीड़े तथा हानिकारक कीड़े। (३) कीड़ों से फसल की हानि। (४) कीड़ों से मानव में रोगों की उत्पत्ति। (५) रोगों से बचने के उपाय।
(५) अनेक वस्तुओं के उपयोग करते समय जैसे—पीतल, शीशे, ताँबे, लोहे, के बर्तन, कपड़े, रबड़, काँच का सामान, मिट्टी का सामान, पत्तियाँ, फूल, फल आदि के प्रयोगों के अवसर पर—	(१) साधारण वस्तुओं का गुण एवं धर्म। (२) उनका हल्कापन, भारीपन, चिकनापन, खुरदरापन। (३) उनके प्रयोग से स्वास्थ्य पर

अवसर	सामान्य विज्ञान के विषय
	प्रभाव ।
	(४) शीघ्र गर्म होने वाली वस्तुओं का ज्ञान ।
	(५) डूबने वाली वस्तुओं का ज्ञान ।
	(६) विभिन्न धातुओं को शुद्ध करने की प्रणालियाँ ।
(६) सर्दी, गर्मी आदि ऋतुओं के अवसर पर—	(१) दिन रात का होना ।
	(२) ऋतुओं के परिवर्तन के कारण ।
	(३) ऋतुओं का मानव जीवन पर प्रभाव ।
	(४) ऋतुओं का पशु जीवन पर प्रभाव ।
	(५) ऋतुओं के प्रकोप से बचाव के साधन आदि ।
(७) विभिन्न ऋतुओं मे रात्रि के समय—	(१) विभिन्न तारों का ज्ञान ।
	(२) रात्रि में दिशा का ज्ञान ।
	(३) आकाश गंगा का परिचय ।
	(४) तारों के उदय के साथ रात्रि में समय का ज्ञान आदि ।
(८) अमावस्या, पूर्णिमा आदि पर्वों के अवसर पर—	(१) चन्द्रमा की कलाओं का ज्ञान ।
	(२) शुक्लपक्ष, कृष्णपक्ष का ज्ञान ।
	(३) चन्द्रग्रहण का ज्ञान ।
	(४) मानव जीवन पर प्रभाव ।
(९) ओटाई तथा कताई के अवसर पर—	(१) कपास की पैदावार के लिए मिट्टी, ऋतु व जलवायु का ज्ञान ।
(१०) कृषि कार्य के अवसर पर—	(१) बीज बोना, अंकुरित होना आदि का ज्ञान ।
	(२) पौधों के भिन्न-भिन्न भागों का ज्ञान ।
(११) प्रकृति निरीक्षण के अवसरों पर—	(१) पहाड़, नदी, तालाब, झील, एवं सागर का जलवायु पर प्रभाव ।
	(२) चाँदनी रात में प्रकृति निरीक्षण ।
	(३) अन्धेरी रात में प्रकृति निरीक्षण ।
	(४) पहाड़, नदी व पौधों का मानव जीवन में उपयोग आदि ।
	(५) सूर्योदय एवं सूर्यास्त के समय प्रकृति के दृश्य का अध्ययन ।

इसी प्रकार अन्य कक्षाओं के अवसरों पर सामान्य विज्ञान के शिक्षण की योजनायें बनाई जा सकती हैं। कक्षा एक और दो में इससे पूर्व का ज्ञान आवश्यक होगा तथा तीसरी कक्षा से आगे इससे आगे का ज्ञान आवश्यक होगा।

बुनियादी शाला में सामान्य विज्ञान की शिक्षण पद्धतियाँ—बुनियादी शाला में सामान्य विज्ञान के पढ़ाने के अवसरों की योजना के पश्चात् महत्वपूर्ण विषय यह रह जाता है कि बालकों को सामान्य विज्ञान का ज्ञान कराने की कौनसी सरल प्रणालियाँ हैं ? सामान्य विज्ञान पढ़ाने के लिए निम्नलिखित प्रणालियाँ प्रचलित हैं :—

(क) समस्या पद्धति—सामान्य विज्ञान के शिक्षण की एक पद्धति समस्या पद्धति है। समस्या पद्धति में पढ़ाये जाने वाले विषय सम्बन्धी समस्या बालकों के सामने उपस्थित की जाती है। समस्या उत्पन्न कर बालकों को उसके हल की ओर प्रवृत्त किया जाता है। इस विधि द्वारा शिक्षण में निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए—

(१) समस्या बालक की आयु एवं मानसिक स्तर के अनुकूल होनी चाहिए।

(२) समस्या उत्पन्न करने में बाल मनोविज्ञान के सिद्धान्तों का ध्यान रखना चाहिए।

(३) समस्या उत्पन्न कर बालकों को विचारने का अवसर दिया जाना चाहिए।

(४) अध्यापक को समस्या का हल अपनी ओर से प्रस्तुत नहीं करना चाहिए।

(५) यदि समस्या को सुलझाने में बालक की गति नहीं होती हो तो अध्यापक को सरल प्रश्नों द्वारा उसे मार्ग सुझाना चाहिए।

(ख) अनुसंधान पद्धति (ह्यू रिस्टिक मेथड)—इस पद्धति के विषय में विस्तार से इस पुस्तक के प्रथम खण्ड में विवेचन कर दिया गया है। यह पद्धति अन्य विषयों के पढ़ाने में भी प्रयोग में आती है पर विज्ञान शिक्षण में यह पद्धति अत्यधिक सफल हुई है। इसके निर्माता आर्मस्ट्रांग ने इस पद्धति की रचना विज्ञान के शिक्षण के लिए ही की थी। यह पद्धति बालक की स्वाभाविक खोज प्रवृत्ति का उपयोग करती है। बालक को अन्वेषक बनाकर यह पद्धति उसे स्वयं ज्ञान प्राप्त करने का अवसर प्रदान करती है। इस पद्धति के अनुसार बालक को स्वयं प्रयोग करने पड़ते हैं। प्रयोग की आवश्यक वस्तुएँ उसके लिए जुटा दी जाती हैं। वह प्रयोग करता जाता है और प्राप्त परिणामों को लिखता जाता है। अध्यापक आवश्यकता पड़ने पर केवल गुत्थी सुलझाता है अन्यथा बालक ही अधिकाधिक कार्य करता है।

(ग) निरीक्षण तथा परीक्षण पद्धति—यह पद्धति छोटे बालकों के लिए अधिक उपयुक्त है। इस प्रणाली में बालक को वास्तविक वस्तुओं के प्रयोग, प्रकृति पर्यवेक्षण तथा दैनिक कार्यों द्वारा प्रत्यक्ष अनुभव कराया जाता है। पशु, पक्षियों का अध्ययन, पौधों का अध्ययन, स्वास्थ्य सम्बन्धी बातों से परिचय, खेल आदि से सामान्य विज्ञान का अध्ययन इस क्षेत्र में आता है। बालक से प्रत्येक वस्तु एवं उसके

कार्य और गति का निरीक्षण कराया जाता है तथा प्राप्त अनुभव के परीक्षण का अवसर दिया जाता है।

(घ) आदर्श पद्धति—कई शिक्षा शास्त्रियों का विचार है कि सामान्य विज्ञान की शिक्षा केवल एक ही पद्धति द्वारा नहीं दी जा सकती। केवल समस्या पद्धति से सामान्य विज्ञान के अनेक अंगों का शिक्षण सम्भव नहीं। इसी प्रकार अनुसन्धान पद्धति द्वारा भी सभी अंगों का शिक्षण सम्भव नहीं। अतः सभी पद्धतियों की सम्मिलित प्रणाली द्वारा सामान्य विज्ञान की शिक्षा दी जानी चाहिए। अर्थात् पढ़ाते समय जहाँ जिस प्रणाली का उपयोग उचित हो उसी का प्रयोग करना चाहिए। सभी पद्धतियों की इस सम्मिलित प्रणाली को 'आदर्श पद्धति' कहा गया है। इसमें निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए :—

(१) पाठ में बालक की रुचि उत्पन्न करना आवश्यक है। इसके लिए समस्या उत्पन्न करना अधिक उपयुक्त होगा।

(२) बालकों को स्वयं को कार्य में अधिक लगाया जाना चाहिए।

(३) प्रायोगिक कार्य में बालकों को प्रवृत्त करना चाहिए।

(४) सामग्री का अधिकाधिक प्रयोग करना चाहिए।

(५) बालकों को शिक्षा दैनिक जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति के दृष्टिकोण से दी जानी चाहिए।

(६) बालकों को अपने ही जीवन से ज्ञान प्राप्त करने के लिए सतर्क रखना चाहिए। सामान्य विज्ञान के अध्ययन में सजगता से आँखें खुली रहनी चाहियें ताकि बालक निरीक्षण द्वारा ज्ञान प्राप्त कर सके।

सामान्य विज्ञान शिक्षण में सहायक सामग्री का प्रयोग—अन्य विषयों की अपेक्षा सामान्य विज्ञान के शिक्षण में अधिक सामग्री का प्रयोग होता है। जब तक बालक को प्रत्यक्ष वस्तु से ज्ञान नहीं कराया जाता तब तक वह स्थायी नहीं होता। वैसे बुनियादी शिक्षा प्रकृति, उद्योग और समाज में सम्बन्ध स्थापित करती है अतः वह प्रत्यक्ष पदार्थों द्वारा ज्ञान कराने वाली पद्धति है तथापि सामान्य विज्ञान के शिक्षण में इस दृष्टि से अधिक सतर्क रहने की आवश्यकता है। साधारणतया आजकल की शाला में विज्ञान के शिक्षण को अव्यावहारिक बना दिया गया है। इसके निमित्त ऐसी मूल्यवान वस्तुओं, यन्त्रों को शाला में मँगाया जाता है कि जिनका प्रयोग साधारणतया पढ़ाने के समय किया ही नहीं जा सकता और वे पड़ी-पड़ी बिगड़ जाती हैं और यदि किया भी गया तो बालक के भावी जीवन में उनका प्रयोग न हो सकने के कारण उनके द्वारा अध्यापन निरर्थक होता है।

बुनियादी शालायें व्यावहारिक ज्ञान प्रदान करती हैं। जीवन-क्रम सिखाती हैं। अतः इनके पाठ्यक्रम में ऐसे विषय नहीं होते जिनका बालक के जीवन में कदापि उपयोग सम्भव न हो। बुनियादी शाला बालकों की आयु, रुचि, स्तर एवं क्षमता का ध्यान रखती है अतः उसमें प्रयोगशाला ऐसी होनी चाहिए जहाँ बालक स्वयं सभी आवश्यक उपकरण तैयार करें। बाहर से कम से कम उपकरण

मँगाये जावे। बुनियादी शाला में सामान्य विज्ञान-शिक्षण के समय सामग्री के प्रयोग में निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए :—

(१) जहाँ तक हो सके साधारण वस्तुओं के प्रयोग द्वारा ही सामान्य विज्ञान का शिक्षण दिया जावे।

(२) सहायक सामग्री की पाठ योजना तथा कक्षा के अनुसार सहायक सामग्री की सूचि तैयार कर उसे पहले से ही जुटा रखी जावे अथवा आवश्यकतानुसार बालकों से तैयार कराई जावे।

(३) सामग्री इतनी हो कि प्रत्येक बालक उसका प्रयोग-कार्य में उपयोग कर सके।

(४) यदि चार्ट्स, डायग्राम आदि हो तो वे आकार में इतने बड़े होने चाहियें कि बालकों को कक्षा में स्पष्ट दिखाई दे।

(५) सहायक सामग्री का नियमित एवं क्रमबद्ध उपयोग किया जावे।

(६) उपकरणों को कार्य समाप्त हो जाने पर सम्भाल कर रखा जावे।

(७) उपकरणों की सफाई, व्यवस्था आदि बालकों से ही कराई जावे।

सामान्य विज्ञान शिक्षण में मौखिक एवं लिखित कार्य—सामान्य विज्ञान के शिक्षण में लिखित एवं मौखिक दोनों कार्यों की महत्ता है। छोटी कक्षाओं में प्रायः मौखिक कार्य की ही प्रधानता रहती है। इन कक्षाओं में प्रत्यक्ष वस्तुओं के प्रयोग, प्रत्यक्ष निरीक्षण एवं घरेलू जीवन सम्बन्धी सामान्य विज्ञान का आवश्यक ज्ञान प्रश्नों तथा उत्तरों द्वारा कराया जाना अधिक उपयुक्त होगा।

बालकों द्वारा जब प्रयोग कराये जावें तो उन प्रयोगों को लिखाया जाना चाहिए। उनके परिणामों को लिखाकर उनसे सिद्धान्त निकलवाने चाहियें। तत्पश्चात् उन सिद्धान्तों का सामान्यीकरण कराया जाना चाहिए।

गृह-विज्ञान शिक्षण पद्धति—सामान्य विज्ञान शिक्षण की उपरोक्त पद्धतियों को ही गृह-विज्ञान के विभिन्न विषय जैसे गृहिणी का कार्य, धुलाई कार्य, पाक शास्त्र और स्वास्थ्य-विज्ञान आदि विषयों के पढ़ाने में भी अपनाया जाना चाहिए।

सारांश

विज्ञान की महत्ता एवं क्षेत्र—**बालक को व्यावहारिक जीवन की सम्पूर्णता प्राप्त करने के लिए विज्ञान की शिक्षा दी जानी चाहिए।**

बुनियादी शाला में सामान्य विज्ञान शिक्षण के उद्देश्य—**बालक की खोज वृत्ति को विकसित करना, उसकी निरीक्षण शक्ति का विकास करना, वैज्ञानिक प्रणाली द्वारा कार्य करना सिखाना आदि विज्ञान की शिक्षा के उद्देश्य हैं।**

बुनियादी शाला में सामान्य विज्ञान की पढ़ाई के अवसर—**बुनियादी शिक्षा का माध्यम प्रकृति, उद्योग एवं समाज है। इस माध्यम के आधार पर**

पाठ का विकास—
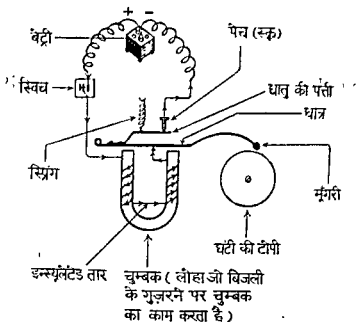
अध्ययन बिन्दु	अध्ययन स्थितियाँ
विद्युत् घंटी के अंगों के बड़े चित्र को कक्षा के सामने प्रस्तुत किया जायेगा :— (प्रत्येक प्रश्न के उत्तर में छात्र बारी-बारी से विभिन्न अंगों को चित्र में बताते जावेंगे)।	उपरोक्त चित्र के आधार पर निम्न प्रश्नों के उत्तर देने का छात्रों को अवसर दिया जावेगा :— विश्लेषण— (१) चित्र में घंटी की टोपी किस जगह है ? (२) चित्र में मूंगरी किस जगह है ? (३) चित्र में धात्र किस जगह है ? (४) चित्र में धातु की पत्ती किस जगह है ? (५) चित्र में पेच (स्क्रू) किस जगह है ? (६) चित्र में बैट्री किस जगह है ? (७) चित्र में स्विच किस जगह है ?

अध्ययन बिन्दु	अध्ययन स्थितियाँ
	(८) चित्र में स्प्रिंग किस जगह है ?
	(९) चित्र में इन्स्युलेटेड तार किस जगह है ?
	(१०) चित्र में चुम्बक कौन सा है ?
हल :—	संश्लेषण :—
(१) विद्युत्धारा लोहे की ओर प्रवाहित होने लगती है।	(१) जब स्विच (कुंजी) दबाते हैं तो बेट्री से निकलने वाली विद्युत्धारा किस ओर प्रवाहित होने लगती है ?
(२) वह चुम्बक का काम करने लगती है।	(२) विद्युत्धारा के तार में होकर प्रवाहित होने से लोहा क्या काम करने लगता है ?
(३) धात्र को अपनी ओर आकर्षित करेगा।	(३) यह चुम्बक धात्र पर क्या प्रभाव डालेगा ?
(४) तब मुँगरी घटी की टोपी में जाकर टकरावेगी।	(४) जब धात्र चुम्बक की ओर खिंचेगा तो मुँगरी किसमें जाकर टकरावेगी ?
(५) टन की आवाज आवेगी।	(५) जब मुँगरी घटी की टोपी में जाकर टकरावेगी तब क्या होगा ?
(६) इनका सम्बन्ध टूट जायेगा।	(६) मुँगरी, धात्र और धातु की पत्ती तीनों आपस में जुड़े हुए हैं और धातु की पत्ती पेच से अड़ी हुई है। परन्तु जब मुँगरी नीचे घटी की टोपी की ओर हटेगी तो धातु की पत्ती और पेच के सम्बन्ध पर क्या असर पड़ेगा ?
(७) विद्युत् का बहना बन्द हो जायेगा (अर्थात् विद्युत् परिपथ टूट जायेगा)।	(७) सम्बन्ध टूटने पर विद्युत् के बहने पर क्या असर पड़ेगा ?
(८) चुम्बकत्व समाप्त हो जायेगा।	(८) विद्युत् का बहना बन्द होने से चुम्बक के चुम्बकत्व पर क्या असर पड़ेगा ?
(९) स्प्रिंग धात्र को अपनी ओर खींच लेगा।	(९) चुम्बकत्व के समाप्त होते ही धात्र पर स्प्रिंग क्या प्रभाव डालेगा ?
(१०) मुँगरी ऊपर की ओर हट जायेगी।	(१०) मुँगरी किस ओर हट जायेगी ?
(११) सम्बन्ध जुड़ जायेगा (अर्थात् विद्युत् परिपथ जुड़ जायेगा)।	(११) जब स्प्रिंग धात्र को अपनी ओर ले जावेगी तो धातु की पत्ती और पेच

अध्ययन बिन्दु	अध्ययन स्थितियाँ
	जिनका सम्बन्ध पहले टूट चुका था उन पर क्या प्रभाव डालेगा ?
(१२) चुम्बक का बनना और मुंगरी का वापस घंटी की टोपी के निकट आकर घंटी को बजाना।	(१२) इस सम्बन्ध के जुड़ते ही वापस कौनसी क्रिया शुरू होगी ?
(१३) चुम्बकत्व समाप्त होकर मुंगरी ऊपर की ओर हट गई थी।	(१३) पहले मुंगरी के घंटी के निकट आने और धातु की पत्ती और पेंच के सम्बन्ध टूट जाने पर क्या हुआ था ?
(१४) जब तक स्विच दबा रहेगा, बेट्री चालू रहेगी और विद्युत् परिपथ (Circut) बार-बार बनता और टूटता रहेगा।	(१४) मुंगरी के घंटी की टोपी से टकराने और पीछे हटने की क्रिया कब तक चलती रहेगी ?
(१५) जब स्विच उठा दिया (बन्द कर दिया) जायेगा।	(१५) घंटी का बजना कब बन्द होगा ?

अब शिक्षक विद्युत् घंटी के ढक्कन को हटाकर उसे भागों को प्रदर्शित करेगा। स्विच दबाकर उसे बजायेगा। उसके स्विच को बन्द करके घंटी का बजना बन्द करेगा। बच्चों को भी उसे बजाने व बन्द करने के अवसर देगा। (ऐसे अवसर पर बेट्री वाली घंटी का ही उपयोग किया जाना सुरक्षित रहता है)

पुनरावृत्ति—

(१) विद्युत् घंटी की मुंगरी घंटी की टोपी की ओर क्यों आकर्षित होती है ?

(२) मुंगरी घंटी की टोपी की ओर आकर्षित होकर उसे बजाते ही, वापस क्यों हट जाया करती है ?

(३) अगर विद्युत् घंटी में स्प्रिंग लगा हुआ न हो तो क्या हो ?

गृह-कार्य—विद्युत् घंटी का चित्र खींचो और यह बताओ कि वह किस प्रकार काम करती है ?

गणित : शिक्षण पद्धति

जीवन में गणित की महत्ता—साधारण से साधारण अपढ़ व्यक्ति भी वस्तुओं के परिमाण को जानता है। उसके जाने बिना उसका काम नहीं चलता। अधिक और कम का अन्दाजा लगाना, १० या २० तक गिनती गिनना तथा १० तक के अंकों को जोड़ना अपढ़ ग्रामीण महिला तक जानती है। इसके जाने बिना उसका काम भी चलना सम्भव नहीं। बालक शैशवावस्था में ही खिलौनों की गिनती करना सीख जाता है। प्रारम्भ में उसकी गिनती एक और दो तक सीमित रहती है। शनैः शनैः विकास के साथ उसकी गिनती का मान बढ़ता जाता है और पढ़ाये जाने पर कक्षाओं में गणित के प्रश्न करता है। तात्पर्य यह है कि जीवन के हर क्षेत्र में गणित की नितान्त आवश्यकता होती है। पर जितना यह विषय जीवन के लिए महत्वशाली है उतना ही बालक इससे दूर भागते देखे गए हैं। इसके लिए अध्यापक बालकों को दोषी ठहराते हैं तथा मनोवैज्ञानिक शिक्षा शास्त्री अध्यापकों को दोषी ठहराते हैं। वैसे यह विवादास्पद विषय ही है क्योंकि वंशानुक्रम बालक के विकास को नियन्त्रित अवश्य करता है तथापि अध्यापक का प्रयत्न उसके विकास को अधिक सफल बनाने वाला हो सकता है। पर यह अवश्य है कि गणित का शिक्षण न केवल जीवन में संख्या की आवश्यकता तथा हिसाब की परिस्थितियों को ही सुलझाता है वरन् बालकों में चिन्तन, स्फूर्ति, शीघ्र निर्णयिकता तथा शीघ्र क्रियाशीलन आदि गुण उत्पन्न करता है। इस प्रकार गणित की शिक्षा विषयगत महत्ता के साथ-साथ बालक में अन्य गुणों का विकास भी करती है।

गणित शिक्षण के उद्देश्य—इस दृष्टि से देखा जाये तो गणित पढ़ाने के निम्नलिखित उद्देश्य हो सकते हैं :—

(१) व्यावहारिक जीवन में पूर्णता लाना।

(२) जीवन में अंकों का मूल्य समझाना।

(३) उद्योग, सामाजिक जीवन तथा घरेलू जीवन में प्रतिदिन के लेनदेन से उत्पन्न हिसाब सम्बन्धी समस्याओं को सुलझाना सिखाना।

(४) एकाग्रता, चिन्तन, क्रियाशीलन के गुण उत्पन्न करना।

(५) गणित के चिन्हों का मूल्य समझाकर उनका अभ्यास कराना।

(६) मानसिक शक्तियों का विकास करना।

(७) बौद्धिक शक्तियों का विकास करना।

(८) समझी हुई बातों का प्रश्नों द्वारा अभ्यास कराना।

(९) इस विषय द्वारा समाज में प्रतिष्ठा प्राप्त करने योग्य बनाना।

बुनियादी शाला में गणित की पढ़ाई के अवसर—बुनियादी शाला में गणित

के सवालो को अध्यापक पुस्तकों में ढूंढने नहीं जाता वरन् ऐसे अनेक अवसर उपस्थित होते हैं जब वह गणित की शिक्षा दिये बिना नहीं रह सकता। उद्योग कार्य के समय गणित पढ़ाने के अवसर मिलते हैं तथा सामाजिक पर्वों, त्योहारों, जयन्तियों के आयोजन के समय भी ऐसे अनेक अवसर मिलते हैं। कक्षा दो के लिए गणित पढ़ाने के अवसर इस प्रकार प्राप्त होंगे :—

अवसर	विषय
(१) कताई के समय पूनियाँ बाँटने व सूत लपेटने के द्वारा, कृषि व बागवानी में फलों, फूलों, पौधों को गिनाकर, सामाजिक कार्य में त्योहारों, पर्वों के दिनों का हिसाब लगाकर—	(१) २०० तक की गिनती गिनाना। (२) साधारण जोड़। (३) साधारण घटा। (४) साधारण गुणा।
(२) ओटाई के समय कपास को तौल कर, कृषि और बागवानी में फलों तथा शाक सब्जी को तौल कर, सामाजिक पर्वों पर किये गए व्यय का हिसाब लगाकर—	(१) सेर, छटांक, तोला या किलो का ज्ञान। (२) ग्राम, धाम आदि रुपये तथा पैसे का ज्ञान तथा उनका क्रय-विक्रय के रूप में मूल्य।
(३) कृषि व बागवानी में क्यारी तैयार करने के रूप में, गत्ते के काम में गत्ते को आवश्यकतानुसार काटने, मोड़ने आदि के समय—	(१) गज, फुट, इंच, सेन्टीमीटर, मीटर आदि का ज्ञान। (२) रेखागणित की साधारण आकृतियों का ज्ञान।
(४) नित्य की डायरी लिखते समय—	(१) हिसाब किताब, लेनदेन का ज्ञान कराना, इसे उचित ढंग से लिखना सिखाना।
(५) खेल के समय—	(१) गिनती, जोड़, बाकी, गुणा आदि सिखाना।

इसी प्रकार आगे की कक्षाओं में उत्तरोत्तर गणित का शिक्षण विस्तार, सूक्ष्मता एवं दृढ़ता प्राप्त करता जायेगा। तात्पर्य यह है कि गणित पढ़ाने के अवसर बुनियादी शाला में विभिन्न कार्य करते समय स्वतः प्राप्त होते हैं। अध्यापक को इन अवसरों की खोज में रहना चाहिए तथा उपयुक्त अवसर आते ही आवश्यक ज्ञान कराना चाहिए। ऐसा करने पर बालक गणित की शिक्षा में रुचि लेने लगेगा और यह विषय उसे रूखा न लगेगा जैसा कि आजकल रूढ़िवादी शालाओं के विद्यार्थियों को लगता है।

गणित शिक्षण की विभिन्न प्रणालियाँ—गणित की शिक्षा में एक पाठ में कई प्रणालियों का समावेश किया जाता है। केवल एक ही प्रणाली पर आधारित नहीं रहा जाता। अध्यापक को इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि उसे कौनसी

प्रणाली का उपयोग किस प्रकार तथा किस सीमा तक करना होगा ? वैसे गणित की शिक्षा में कई प्रणालियाँ प्रचलित हैं पर उनमें से प्रमुख ये हैं :—

(क) **आगमनात्मक तथा निगमनात्मक प्रणालियाँ**—इस प्रणाली का गणित शिक्षा में प्रयोग बालकों को वस्तु स्थिति का अनुभव कराने में सहायक होता है। बालक को विशेष पदार्थों तथा क्रियाओं की सहायता से किसी सामान्य नियम को निकालने को प्रेरित किया जाता है तथा उस नियम के आधार पर वह अन्य अभ्यास व प्रयोग करके उस नियम की सत्यता जानता है। निगमनात्मक प्रणाली में अध्यापक बालक को पहले से ही एक नियम बता देता है। बालक अभ्यास द्वारा उस नियम की सत्यता जानने का प्रयत्न करता है। पर निगमनात्मक प्रणाली बालक के लिए अधिक उपयुक्त नहीं क्योंकि इसमें स्वयं अध्ययन का कार्य नहीं होता। यह निगमनात्मक प्रणाली पूर्व कक्षा में पढ़े हुए नियम के अभ्यास के लिए ही उपयुक्त होगी।

(ख) **संश्लेषणात्मक एवं विश्लेषणात्मक प्रणालियाँ**—इस प्रणाली द्वारा समस्या को कई छोटे-छोटे भागों में टुकड़े करना तथा टुकड़ों को एक रूप में मिलाकर आसानी से समझाया जा सकता है। जिस प्रकार किसी मशीन की संचालन शक्ति को समझाने के लिए उसके अलग-अलग पुर्जे खोलकर समझाया जाता है तथा पुनः उस मशीन को पूरी जोड़कर उसको संचालित किया जा सकता है। उसी प्रकार एक सवाल को टुकड़ों में विभाजित कर उसे समझाया जाकर उसे पुनः एक सम्पूर्ण समस्या के रूप में जोड़ा जा सकता है। अध्यापक को इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि वह विश्लेषण भी बालकों से करावे तथा संश्लेषण भी बालकों की ही सहायता से करे। ऐसा करने में बालक रुचि लेंगे तथा हल प्राप्त करने में दत्तचित्त हो जावेंगे।

(ग) **प्रयोगशालात्मक प्रणाली**—इस प्रणाली में बालक के जीवन से गणित के पढ़ाये जाने वाले प्रत्येक अंग का सम्बन्ध जोड़ा जाता है। उसे गणित जीवन की नितान्त आवश्यकता के रूप में पढ़ाया जाता है। जब जीवन में समस्या उत्पन्न हो जाती है तो उसे हल कराने के लिए क्रमानुसार प्रायोगिक कार्य कराये जाते हैं। अर्थात् बालक से स्वयं से वास्तविक रूप में नपाना, विभाजित कराना, आकृतियाँ बनवाना आदि कार्य कराये जाते हैं।

(घ) **पुस्तकात्मक प्रणाली**—यह प्रणाली पाठ्य पुस्तक प्रणाली को बढ़ावा देती है। अर्थात् पाठ्यपुस्तकों में सवाल हल किए हुए होने चाहिए ताकि बालक उनको समझकर रीति सीख लें तथा अभ्यास हेतु उसी के नीचे दी हुई उदाहरण-माला से सवाल हल करने का प्रयत्न करें। यह पद्धति अध्यापक के कार्य को तो हल्का करती है पर मनोविज्ञान के सिद्धान्तों के अनुकूल नहीं है।

(ङ) **अनुसन्धानात्मक प्रणाली**—यह प्रणाली बालकों को स्वयं ज्ञान प्राप्त करने की ओर प्रेरित करती है अतः अधिक मनोवैज्ञानिक है। बालक स्वयं खोज करके नियम को निकालते हैं। नए नियम को ढूंढने के लिए उन्हें अपना पूर्व ज्ञान

का प्रयोग करना पड़ता है। तथा इसी अनुभव पर वे नया नियम खोज निकालते हैं जो उनके मस्तिष्क में चिरस्थाई होता है। अध्यापक को चाहिए कि खोज के समय बालकों के मार्ग को सरल बनाने में सहयोग देवे। उन्हें उत्साहित करता रहे।

गणित की शिक्षा में मौखिक एवं लिखित कार्य—गणित के जो छोटे-छोटे प्रश्न, जिनको हल करने का अभ्यास होता है, मन ही मन हल किये जा सकते हैं, उसे मौखिक गणित कहते हैं तथा जिन सवालों को लिखे बिना हल नहीं किया जा सकता उसे लिखित गणित कहते हैं।

(क) मौखिक गणित—दैनिक जीवन में व्यवहार में प्रायः यही गणित काम में आता है। बाजार में सामान खरीदते समय तत्काल मन ही मन हिसाब लगाकर पैसे चुकाये जाते हैं। इस कार्य में दुकानदार अधिक दक्ष होते हैं। गणित की मौखिक शिक्षा निम्नलिखित उद्देश्यों की पूर्ति करती है :—

(१) बालक को दैनिक जीवन के व्यावहारिक गणित को शीघ्र हल करने के योग्य बनाती है।

(२) बालक की स्मरण शक्ति, चिन्तन एवं एकाग्रता का विकास होता है।

(३) समय की बचत होती है।

(४) नये नियम सीखने में सहायक होती है।

(५) लिखित कार्य में सहायक होती है।

मौखिक गणित का अभ्यास बालकों के लिए लाभप्रद होगा। अध्यापक को दैनिक जीवन सम्बन्धी ऐसे प्रश्न पूछने चाहियें जिनका हल बालक मन ही मन में करके कुछ समय बाद उत्तर दे सकें। छोटे बालकों की कक्षा में प्रत्येक पाठ के प्रारम्भ का कुछ समय मौखिक शिक्षा में खर्च किया जाना चाहिए। उद्योग कार्य करते समय तथा विशेषतया ऐसा उद्योग जिसमें नापने, जोड़ने, घटाने का कार्य अधिक हो अर्थात् गत्ते का काम, चमड़े के काम आदि में मौखिक शिक्षा सुगमता से दी जा सकती है। इसी प्रकार घर के कार्यों में भी मौखिक गणित का अभ्यास सरलता से कराया जा सकता है।

(ख) लिखित गणित—प्रायः शालाओं में लिखित गणित का इतना अभ्यास कराया जाता है कि दैनिक जीवन में व्यवहार में आने वाले मौखिक गणित में बालक असफल रहते हैं। आज के छात्र को दुकानदारों के सामने मौखिक गणित की निर्बलता के कारण नीचा देखना पड़ता है। यद्यपि यह अवश्य है कि लिखित गणित की भी अपनी एक महत्ता है जिसकी अवहेलना नहीं की जा सकती। तथापि बालकों को मौखिक गणित का दिया गया अभ्यास उन्हें जीवन की गणित सम्बन्धी कठिनाइयों को सुलझाने में सहायक होगा। लिखित गणित में त्रुटियों की सम्भावना कम होती है। लिखित गणित का अभ्यास भी बालकों से अधिक कराया जाना चाहिए। समस्याओं के विवेचन की ओर उनका ध्यान आकृष्ट किया जाना चाहिए।

गणित की शिक्षा में सहायक सामग्री—गणित की शिक्षा में प्रत्यक्ष वस्तुओं तथा सहायक सामग्रियों का बहुत बड़ा महत्व है। पर हमारी परम्परित शालायें

इनका न्यूनतम उपयोग करती रही हैं। छोटे बालकों के लिए प्रत्यक्ष वस्तुओं द्वारा गणित का ज्ञान उनकी रुचि के अनुकूल होता है। बड़े छात्रों को भी प्रत्यक्ष वस्तु द्वारा गणित का ज्ञान कराया जाना अधिक मनोवैज्ञानिक होता है। शिक्षा की किंडर गार्टन, माटेसरी आदि नवीन पद्धतियाँ प्रत्यक्ष वस्तुओं तथा सहायक उपकरणों द्वारा ही गणित का ज्ञान कराने के लिए प्रसिद्ध हैं। बुनियादी शिक्षा में भी उद्योग के उपकरणों द्वारा, घरेलू वस्तुओं द्वारा, शाला की अन्य प्रयोग में आने वाली वस्तुओं द्वारा गणित का ज्ञान अधिक मनोवैज्ञानिक ढंग से कराया जाता है। दैनिक जीवन की कोई भी वस्तु जैसे दुकानदारी, उद्योग कार्य यहाँ तक कि कक्षा की मेज, कुर्सी, खिड़कियाँ, दरवाजे तक गणित की शिक्षा के साधन बन सकते हैं। बालक को ३ और ३ का योग ६ होना बताने की अपेक्षा एक हाथ में ३ आम तथा दूसरे हाथ में ३ आम देकर कुल गिनाकर छः निकलवाना अधिक सार्थक होगा। गणित की शिक्षा में प्रत्यक्ष वस्तुओं तथा उपकरणों के प्रयोग के लिए निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए :—

(१) प्रत्येक क्रिया के लिए ऐसी वस्तुयें ली जानी चाहिये जिनका प्रयोग अधिक फलदायक सिद्ध हो चुका हो जैसे भिन्न का ज्ञान कराने के लिए गोल वस्तुओं का प्रयोग किया जा सकता है। छिलके रहित नारंगी की फाँकों को गिना कर तथा उन्हें अलग-अलग कर भिन्न का ज्ञान कराया जा सकता है।

(२) अधिकाधिक रोचक उपकरणों का संग्रह एवं प्रयोग करना चाहिए।

(३) उपकरण बालक की आयु एवं मानसिक स्तर के अनुकूल होना चाहिए।

(४) जहाँ तक हो सके उपकरण बालकों द्वारा बनवाए जाने चाहियें तथा बालकों द्वारा बनी हुई वस्तुओं का प्रयोग गणित की शिक्षा में करना चाहिए।

(५) उपकरणों के प्रयोग में अध्यापक को उचित सहायता देते रहना चाहिए।

(६) साधारणतया गणित की शिक्षा में श्यामपट्ट, चाक, झाडन तथा ज्यो-मेट्रिकल सेट ही सहायक सामग्री के रूप में प्रयुक्त होते रहे हैं। अतः अध्यापक को पहले से पाठ की योजना बनाकर प्रत्यक्ष वस्तुओं को सहायक सामग्री के रूप में अवश्य प्रयोग में लाना चाहिए।

(७) श्रवणनेत्रोपकरणों का यथावश्यक प्रयोग (जिनके लिए प्रथम खण्ड के एक अध्याय में विवेचन किया गया है) उपयुक्त होगा।

गणित की शिक्षा में संशोधन कार्य—संशोधन कार्य मौखिक तथा लिखित दोनों प्रकार की गणित की शिक्षा में आवश्यक है। मौखिक शिक्षा में संशोधन कार्य तत्काल कराया जाता है ताकि बालक त्रुटि समझ लें और शुद्ध कर लें। पर लिखित कार्य में त्रुटि सुधार अध्यापक को समय मिलने पर निर्भर रहता है। यदि अध्यापक छात्रों के लिखित कार्य को न देखें और त्रुटि सुधार न करें तो बालक अपने कार्य में उदासीन हो जाते हैं। संशोधन कार्य में बालक को अपनी वास्तविक स्थिति का भी ज्ञान

हो जाता है और अध्यापक को भी पता लग जाता है कि बालक कहाँ तक ठीक ढंग से समझ पाये हैं। यदि कक्षा के सभी बालको ने त्रुटि की है तो सम्पूर्ण क्रिया को दुबारा समझाना आवश्यक होगा। अतः वास्तविक परिस्थितियों की जानकारी के लिए संशोधित कार्य किया जाना अत्यन्त आवश्यक है अन्यथा बालकों में गलत आदत, गलत ज्ञान तथा उदासीनता आदि दोष उत्पन्न हो सकते हैं।

बुनियादी शाला में मन्द बुद्धि बालकों की गणित शिक्षा—वैसे ही छात्र एवं अध्यापक गणित विषय से घबराते हैं तथा मन्द बुद्धि बालक तो गणित की शिक्षा से जी चुराते हैं। इसका कारण केवल मात्र यही है कि बालकों को अब तक गणित की शिक्षा दूषित प्रणालियों से दी जाती थी जो बालकों की रुचि, क्षमता एवं व्यावहारिक ज्ञान से परे थी। परन्तु विभिन्न मनोवैज्ञानिक पद्धतियों की रचनाओं के कारण गणित की शिक्षा इतनी कठिन नहीं रही है। मन्द बुद्धि बालकों को भी रुचिपूर्ण तरीके से गणित की शिक्षा दी जा सकती है। बुनियादी शिक्षा बालक की रुचि का पूर्ण ध्यान रखती है। बुनियादी शाला के अध्यापक को मन्द बुद्धि बालक की रुचि का अध्ययन करना चाहिए। बालक जिस काम में अधिक सफलता प्राप्त करता है, रुचि लेता है तथा आनन्द प्राप्त करता है उसी कार्य के सहारे मन्द बुद्धि बालक को गणित की शिक्षा दी जानी चाहिए। मन्द बुद्धि बालकों को प्रत्यक्ष वस्तु द्वारा तथा सहायक उपकरणों द्वारा गणित का प्रत्यक्ष ज्ञान कराने में अधिक सफलतायें मिली हैं।

बुनियादी शाला में गणित शिक्षण के समय ध्यान देने योग्य बातें—बुनियादी शाला में अध्यापन के समय ऐसे अनेक अवसर आते हैं जब सरल से सरल तथा कठिन से कठिन गणित का ज्ञान सुगमता से कराया जा सकता है। इन अवसरों पर जोड़ बाकी, गुणा, भाग, नाप तोल, समय, दूरी, क्षेत्रफल, घनफल, एकिक नियम, औसत, प्रतिशत, ब्याज आदि का ज्ञान समवायी ढंग से कराया जा सकता है। इस ढंग से जब बालकों को गणित का ज्ञान कराया जायेगा तब उन्हें रस मिलेगा, आनन्द प्राप्त होगा और सन्तोष मिलेगा। अतः बुनियादी शाला में अध्यापक को गणित की शिक्षा के लिए उपयुक्त अवसर के प्रयोग के लिए सतर्क रहना चाहिए। साथ ही निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए :—

(१) जीवन सम्बन्धी वास्तविक प्रसंगों के सहारे गणित का शिक्षण किया जाना चाहिए।

(२) समस्यायें एवं प्रश्न घरेलू जीवन से सम्बन्धित होने चाहिएं।

(३) शाला में कार्यों की व्यवस्था ऐसी होनी चाहिए कि बालकों के सम्मुख *गणित शिक्षण के स्वाभाविक अवसर प्राप्त हों।*

(४) शिक्षण में आवश्यक वस्तुओं तथा उपकरणों को प्रयोग के लिए तैयार रखना चाहिए।

(५) बालकों के अशुद्ध उत्तर लाने पर उन्हें हतोत्साहित नहीं करना चाहिए।

(६) सवाल की अशुद्ध क्रिया को विश्लेषण प्रणाली से शुद्ध कराया जाना चाहिए।

(७) बालकों को गणित की शिक्षा तभी तक देनी चाहिए जब तक उसमें उनकी रुचि बनी रहे।

(८) गणित के सूक्ष्म सिद्धान्तों को स्थूल वस्तुओं से निकलवाना चाहिए।

(९) गणित की शिक्षा क्रमबद्ध होनी चाहिए।

(१०) गणित के जिन सिद्धान्तों को कण्ठस्थ कराना हो उनका अधिकाधिक अभ्यास कराया जाना चाहिए।

(११) बालकों को इस बात के लिए उत्साहित करते रहना चाहिए कि वे अपनी समस्यायें प्रत्यक्ष रूप से कक्षा में शिक्षक के सामने उपस्थित करें।

सारांश

जीवन में गणित की महत्ता—जीवन में पग-पग पर गणित की आवश्यकता होती है। यहाँ तक कि अपढ़ ग्रामीण किसान को भी बीस तक गिनना सीख ही लेना पड़ता है ताकि उसकी आवश्यकता की येन केन प्रकारेण पूर्ति हो।

गणित शिक्षण का उद्देश्य—गणित पढ़ाने के उद्देश्यों में बालक के जीवन को व्यावहारिकता की दृष्टि से पूर्ण बनाना, अंकों का मूल्य समझाना, घरेलू जीवन की समस्याओं को हल करना सिखाना आदि आते हैं।

बुनियादी शाला में गणित की पढ़ाई के अवसर—प्रत्येक कक्षा के शिक्षण काल में ऐसे अनेक स्वाभाविक अवसर आते हैं जब कि सुगमतापूर्वक गणित की शिक्षा प्रदान की जा सकती है।

गणित शिक्षण की विभिन्न प्रणालियाँ—गणित की शिक्षा देने की मुख्य प्रणालियाँ ये हैं :—(१) आगमनात्मक तथा निगमनात्मक प्रणालियाँ, (२) संश्लेषणात्मक एवं विश्लेषणात्मक प्रणालियाँ, (३) प्रयोगशालात्मक प्रणाली, (४) पुस्तकात्मक प्रणाली, (५) अनुसंधानात्मक प्रणाली।

गणित की शिक्षा में मौखिक एवं लिखित कार्य—(१) मौखिक गणित—दैनिक जीवन में मौखिक गणित के प्रश्न करने के अधिक अवसर आते हैं अतः मौखिक गणित का अभ्यास कराया जाना चाहिए। (२) लिखित गणित—बड़े सवाल लिखित रूप में कराये जाने चाहिएं।

गणित की शिक्षा में सहायक सामग्री—प्रत्यक्ष वस्तुओं एवं सहायक सामग्री द्वारा गणित शिक्षण मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों के अनुकूल सरस, रुचिपूर्ण एवं आनन्ददायक होगा।

गणित की शिक्षा में संशोधन कार्य—मौखिक गणित की शिक्षा में तत्काल तथा लिखित गणित की शिक्षा में लिखित शुद्धियाँ होना आवश्यक है अन्यथा बालक को गणित शिक्षा में दोष उत्पन्न हो जावेगा।

बुनियादी शाला में मन्द बुद्धि बालकों की गणित शिक्षा—मन्द बुद्धि बालकों की शिक्षा में प्रत्यक्ष वस्तुओं द्वारा तथा सहायक उपकरणों द्वारा सफलता प्राप्त की जा सकती है।

बुनियादी शाला में गणित शिक्षण के समय ध्यान देने योग्य बातें—उपयुक्त अवसर पर उपयुक्त प्रणाली द्वारा गणित शिक्षण में अध्यापकों को अनेक बातों का ध्यान रखना चाहिए जैसे गणित शिक्षण को स्वाभाविक बनाना आदि।

अभ्यासार्थ प्रश्न

(१) बुनियादी शाला में गणित शिक्षण के क्या उद्देश्य होने चाहिएँ ? गणित की पढ़ाई के कौन-कौन से संभावित अवसरों पर गणित के किन-किन अंगों की शिक्षा आप देना चाहेंगे ?

(२) गणित शिक्षण की कौन-कौन सी प्रणालियाँ प्रचलित हैं ? बुनियादी शिक्षा सिद्धान्तों के अनुकूल कौन-कौन सी प्रणालियाँ उचित ठहरती हैं ? स्पष्ट विवेचन कीजिए।

(३ बुनियादी शाला में गणित पढ़ाते समय अध्यापक को किन-किन बातों का ध्यान रखना चाहिए ? विस्तार से लिखिये।

गणित पाठ : एक नमूना

शाला का नाम.................. कक्षा.......... खण्ड..........
छात्र संख्या.................. दिनांक.......... समय..........

सामान्य उद्देश्य :—

(१) छात्रों को अंकों का मूल्य समझाना।
(२) उन्हें गणित के चिन्हों का मूल्य समझाकर उनका अभ्यास कराना।
(३) उन्हें उद्योग, सामाजिक जीवन तथा घरेलू जीवन में प्रतिदिन के लेन-देन में उत्पन्न हिसाब सम्बन्धी समस्याओं को सुलझाना सिखाना।

विशिष्ट उद्देश्य :—छात्रों को एक समकोण चतुर्भुज के भीतर के मार्ग का क्षेत्रफल निकालने की पद्धति सिखाना।

सहायक सामग्री :—

(१) कक्षोपयोगी सामान्य उपकरण।
(२) श्याम फलक पर एक समकोण चतुर्भुज का चित्र जिसमें भीतर की ओर चारों तरफ मार्ग अंकित किया हुआ है।

पूर्व ज्ञान—छात्र समकोण चतुर्भुज का क्षेत्रफल निकालना जानते हैं।

प्रस्तावना—(शिक्षक निम्नलिखित प्रश्न पूछकर पाठ को प्रस्तावित करेगा) :—

(१) वर्ग किसे कहते हैं ?
(२) चतुर्भुज किसे कहते हैं ?
(३) इनका क्षेत्रफल किस प्रकार निकाला जाता है ?

(शिक्षक श्यामपट्ट पर समकोण चतुर्भुज का निम्नांकित चित्र कक्षा के सामने तैयार करेगा और फिर पाठ का उद्देश्य व्यक्त करेगा।)

उद्देश्य कथन :—आज हम समकोण चतुर्भुज के भीतर समान चौड़ाई के मार्ग का क्षेत्रफल निकालना सीखेंगे।
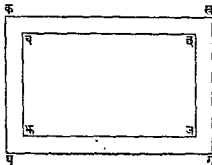
पाठ का विकास :—

अध्ययन बिन्दु	अध्ययन स्थितियाँ
श्याम फलक पर लिखित निम्न समस्या कक्षा के सामने प्रस्तुत की जायेगी :— एक २४ गज लम्बे और १६ गज चौड़े आँगन के भीतर चारों ओर दो गज चौड़ा मार्ग है। इस मार्ग पर एक रुपया प्रतिवर्ग गज की दर से पत्थर का फर्श लगाने में कितना रुपया खर्च होगा ?	श्याम फलक पर लिखित समस्या को शिक्षक खुद पढ़ेगा और फिर कुछ छात्रों से इसे पढ़ने को कहेगा।
विश्लेषण बिन्दु	**विश्लेषण :—**
जो बातें दी हुई हैं :— (१) आँगन की लम्बाई=२४ गज। (२) आँगन की चौड़ाई=१६ गज। (३) आँगन के भीतर मार्ग की चौड़ाई=२ गज। (४) मार्ग पर पत्थर का फर्श लगाने की दर=१ रुपया प्रति वर्ग गज।	शिक्षक छात्रों से निम्नलिखित प्रश्न पूछेगा :— (१) समस्या में क्या-क्या बातें दी हुई हैं।
जो मालूम करना है :— मार्ग पर फर्श जुड़ाने पर खर्च होने वाला रुपया।	(२) क्या मालूम करना है ?
जो बातें मालूम करनी चाहिएं :— (१) मार्ग की फर्श पर खर्च होने वाले धन को मालूम करने के लिए, हमें मार्ग का क्षेत्रफल जानना चाहिए।	(३) जो कुछ मालूम करना है उसके लिए हमें क्या-क्या बातें जाननी चाहिएं? (अब शिक्षक चित्र का उपयोग करेगा)।
(२) मार्ग का क्षेत्रफल जानने के लिए हमें आँगन क ख ग घ और च छ ज झ का क्षेत्रफल जानना चाहिए।	
(३) इसका क्षेत्रफल भुजा क ख और भुजा ख ग को गुणा करने से जाना जा सकता है।	(४) आँगन क ख ग घ का क्षेत्रफल किस प्रकार जाना जा सकता है ?
(४) इसका क्षेत्रफल भुजा च छ और भुजा छ ज को गुणा करने से जाना जा सकता है।	(५) भीतरी आँगन च छ ज झ का क्षेत्रफल किस प्रकार जाना जा सकता है?

अध्ययन बिन्दु	अध्ययन स्थितियाँ
(५) भुजा च छ की लम्बाई, भुजा क ख की लम्बाई में से (२+२), ४ गज घटा कर मालूम करेंगे ।	(६) भुजा च छ की लम्बाई को किस प्रकार मालूम करोगे ?
(६) भुजा छ ज की लम्बाई, भुजा ख ग की लम्बाई में से (२+२), ४ गज घटा कर मालूम करेंगे ।	(७) भुजा छ ज की लम्बाई को किस प्रकार मालूम करोगे ?
(७) मार्ग का क्षेत्रफल होगा :— (क्षेत्रफल क ख ग घ)—(क्षेत्रफल च छ ज झ)	(८) मार्ग का क्षेत्रफल क्या होगा ?
(८) मार्ग पर फर्श लगाने का खर्च मार्ग के क्षेत्रफल और फर्श लगाने की दर से मालूम कर सकेंगे ।	(९) मार्ग पर फर्श लगाने के खर्च को कैसे मालूम करोगे ?
हल :—	संश्लेषण :—
∵ आँगन की लम्बाई=२४ गज ।	(१) आँगन क ख ग घ की लम्बाई क्या है ?
∵ आँगन की चौड़ाई=१६ गज ।	(२) आँगन क ख ग घ की चौड़ाई क्या है ?
∴ आँगन का क्षेत्रफल=२४×१६ वर्ग गज=३८४ वर्ग गज ।	(३) आँगन का क्षेत्रफल क्या है ?
च छ=क ख—(२+२) गज ।	(४) भुजा च छ को मालूम करने के लिए भुजा क ख में से किन लम्बाइयों को घटाना पड़ेगा ?
छ ज=ख ग—(२+२) गज ।	(५) भुजा छ ज को मालूम करने के लिए भुजा ख ग में से किन लम्बाइयों को घटाना पड़ेगा ?
∴ च छ ज झ भीतरी आँगन की लम्बाई =२० गज ।	(६) भीतरी आँगन च छ ज झ की लम्बाई क्या है ?
∴ च छ ज झ भीतरी आँगन की चौड़ाई =१२ गज ।	(७) भीतरी आँगन चछजझ की चौड़ाई क्या है ?
∴ इस आँगन का क्षेत्रफल=२०×१२ वर्ग गज=२४० वर्ग गज ।	(८) इस आँगन का क्षेत्रफल क्या है ?
∴ मार्ग का क्षेत्रफल= (क्षेत्रफल क ख ग घ)—(क्षेत्रफल च छ ज झ)=३८४—२४० वर्ग गज । =१४४ वर्ग गज ।	(९) मार्ग का क्षेत्रफल क्या हुआ ?

उद्योग शिक्षण पद्धति

उद्योग शिक्षण की महत्ता एवं क्षेत्र—शिक्षा में अन्य विषयों के ज्ञान के साथ-साथ उद्योग, हस्तकला, व्यवसाय आदि के समावेश की विचारधारा बड़ी पुरानी है। अन्य देशों में भी साधारण शिक्षा के साथ-साथ किसी न किसी व्यवसाय के शिक्षण पर बल दिया जा रहा है। इस विचारधारा में सुधार करके उद्योग के माध्यम द्वारा शिक्षा प्रदान करने की सम्मति देने की दृष्टि से महात्मा गाँधी प्रथम व्यक्ति थे। उन्होंने कहा है—"मैं शिक्षा का आरम्भ साक्षरता से नहीं करना चाहता वरन् 'कार्य' से करना चाहता हूँ। बालक की शिक्षा उसी समय आरम्भ होती है जबकि वह कुछ 'करना' सीखता है, कुछ चीजें बनाने लगता है।" महात्मा गाँधी इस कथन में किसी न किसी व्यवसाय को सिखाने के साथ-साथ उसी के माध्यम द्वारा साधारण ज्ञान कराना चाहते थे। अतः इस विचारधारा के अनुसार बालक की शिक्षा के दो पहलू हुए—उद्योग शिक्षण तथा उसके माध्यम द्वारा सामान्य विषयों का शिक्षण।

उद्योग शिक्षण की महत्ता को भुलाया नहीं जा सकता क्योंकि उद्योग के शिक्षण में जितनी सूक्ष्मता, अभ्यास, अच्छाई और प्रावीण्यता का ध्यान रखा जावेगा उतना ही बालक को उद्योग कार्य में दक्षता प्राप्त कराने के साथ-साथ सामान्य विषयों का उपयुक्त ज्ञान कराया जा सकेगा। उद्योग शिक्षण बालक के ज्ञान का, उसके विकास का, उसकी विचारधारा का आधार बनता है। अतः उद्योग का शिक्षण क्रमबद्ध एवं वैज्ञानिक प्रणाली द्वारा किया जाना चाहिए। उसमें बालक की रुचि, क्षमता, आयु एवं शारीरिक शक्ति का ध्यान रखना चाहिए तथा उसके शिक्षण में शीघ्रता नहीं करनी चाहिए। परन्तु यह सब कुछ तभी सम्भव है, जबकि उद्योग के शिक्षक अपने कार्य में दक्ष हों। वे खेती और कताई-बुनाई का कार्य स्कूल में केवल इसीलिए नहीं करते हों कि उन्हें वेतन मिलता है। वरन् वह उद्योग उनके जीवन में समाया हुआ होना चाहिए। उनमें क्षमता होनी चाहिए कि अपनी जरूरत का कपड़ा खुद तैयार करके पहनें या खाने की वस्तुओं का एक अंश घर पर कृषि एवं बागवानी करके पैदा करें। "उद्योग की लाभकारी व्यवस्था की एक प्रमुख प्रारम्भिक आवश्यकता है शिक्षक की उसमें दक्षता। दूसरा बिन्दु, जो अपेक्षित असर पैदा करेगा, वह है उद्योग की कक्षा में शिक्षक की सारे समय उपस्थिति और उसके द्वारा वह छात्रों के सामने *अच्छा उदाहरण उपस्थित करे—सिद्धान्तों द्वारा नहीं वरन् व्यवहार* द्वारा।"* ऐसे सूझबूझ वाले शिक्षक ही उद्योग को यान्त्रिक(मेकेनिकल) पद्धति से वैज्ञानिक(साइंटिफिक) पद्धति की ओर मोड़ देकर उसे रुचिपूर्ण बनाते हुए,

*एडमिनिस्ट्रेशन ऑफ बेसिक एजूकेशन (प्रकाशक—नेशनल इन्स्टीट्यूट ऑफ बेसिक एजूकेशन, नई दिल्ली, वर्ष प्रकाशन सन् १९६०) पृष्ठ ३१।

शैक्षणिक सम्भावनाओं से भरपूर बनाये रख सकते हैं। ऐसे शिक्षकों के मार्ग दर्शन में बुनियादी तालीम में उद्योग की शिक्षा से अपेक्षित सभी उद्देश्यों की पूर्ति की सम्भावना अपेक्षित है।

उद्योग शिक्षा के उद्देश्य—बालकों के लिए उद्योग के चुनाव करते समय किन बातों का ध्यान रखना चाहिए इसका विवेचन इस पुस्तक के प्रथम खण्ड के 'उद्योग का चुनाव' शीर्षक अध्याय में कर दिया गया है। अतः यह स्पष्ट है कि बालक की रुचि, क्षमता, शारीरिक शक्ति, घरेलू परिस्थिति, वातावरण आदि दृष्टियों से बालकों के लिए अलग-अलग उद्योग उपयुक्त होंगे। इस दृष्टि से प्रत्येक उद्योग के पढ़ाने के उद्देश्य भी भिन्न होंगे। तथापि यह निश्चित है कि सभी प्रकार के उद्योगों को मनुष्य की तीन नितान्त आवश्यकतायें भोजन, वस्त्र और गृह के अन्तर्गत समाविष्ट किया जा सकता है। इस दृष्टि से एक उद्योग के विशिष्ट उद्देश्य दूसरे उद्योग के विशिष्ट उद्देश्यों से भिन्न होंगे। तथापि सभी उद्योगों के साधारण उद्देश्य समान होंगे। ये साधारण उद्देश्य निम्नलिखित हो सकते हैं :—

(१) बालकों के श्रम के प्रति आदर उत्पन्न करना तथा उन्हें परिश्रमी बनाना।

(२) हाथ से कार्य करने में रुचि बढ़ाना।

(३) बालक में हृदय, हाथ और मस्तिष्क का समन्वय कराना।

(४) बालक का मानसिक विकास करना।

(५) उसके चरित्र का विकास कर उसमें नैतिकता की भावनायें उत्पन्न करना।

(६) उसे व्यवसाय सिखाकर उसके जीवन को पूर्ण बनाने का प्रयत्न करना।

(७) उसको उद्योग की शिक्षा देकर उसके आधार पर अन्य विषयों का समवायी ज्ञान कराना।

(८) कार्यों की उच्चता तथा नीचता की भेद भावना को भंग कराना।

(९) परस्पर सहयोग एवं सामूहिक भावना का विकास कराना।

(१०) अच्छी आदतों का निर्माण कराना।

(११) विभिन्न वस्तुओं के उचित प्रयोग का ज्ञान कराना।

(१२) बालक की कर्मेन्द्रियों को उचित रूप से साधने का प्रयत्न कराना।

(१३) अपनी आवश्यकता की पूर्ति स्वयं अपने आप करना सिखाना।

(१४) स्वाश्रयी, स्वावलम्बी एवं आत्मनिर्भर बनना सिखाना।

विभिन्न उद्योगों के विशिष्ट उद्देश्य—विशिष्ट उद्देश्य विभिन्न कक्षाओं के लिए अलग-अलग होते हैं तथापि साधारणतया निम्नलिखित उद्देश्य होते हैं :—

(अ) कृषि तथा बागवानी—

(१) बालकों को आस-पड़ोस की उपज, विभिन्न पौधों तथा कृषि के

औजारों से परिचित कराना।

(२) विभिन्न ऋतुओं की उपज का ज्ञान कराना।

(३) कृषि के विभिन्न प्रयोगों की जानकारी कराना।

(४) सिंचाई, निराई, कटाई आदि कार्यों के सही तरीके बताना।

(५) पौधे के भागों का ज्ञान कराना।

(६) प्रकृति के सौन्दर्य से परिचित कराना।

(७) प्रकृति का मनुष्य के जीवन में मूल्य आँकना सिखाना।

(८) आवश्यकता की खाद्य वस्तुयें उत्पन्न करना सिखाना।

(आ) कताई तथा बुनाई—

(१) मनुष्य की वस्त्र सम्बन्धी आवश्यकता को पूरी करना सिखाना।

(२) वस्त्र स्वावलम्बी बनाना सिखाना।

(३) कताई तथा बुनाई के विभिन्न प्रकारों से परिचित कराना।

(४) कताई तथा बुनाई में दक्षता लाने के लिए अभ्यास कराना।

इसी प्रकार गत्ते का कार्य, सुथारी कार्य, लौहारी कार्य, धातु कार्य, लुब्धी कार्य आदि उद्योगों के विशिष्ट उद्देश्य होते हैं।

उद्योग की शिक्षा का समय—बालकों से कब-कब कितने समय तक उद्योग कार्य कराना चाहिए यह बालक की आयु, रुचि, क्षमता, शारीरिक शक्ति, परिस्थिति, वातावरण एवं सामग्री पर आधारित है। जिस कार्य में बालकों को आनन्द आता है उस कार्य को वे अधिक करना पसन्द करेंगे पर थकान आ जाने पर वे शिथिल हो जावेंगे। तथापि साधारणतया शिक्षा शास्त्रियों ने कक्षा १ से ३ तक के लिए दो घण्टा प्रतिदिन, कक्षा ४ से ५ तक ढाई घण्टा प्रतिदिन तथा कक्षा ६ से ८ तक तीन घण्टा प्रतिदिन उद्योग कार्य कराना उचित समझा है। इसका यह अर्थ नहीं कि यह उद्योग कार्य निरन्तर कराया जाकर २ या ३ घण्टे में समाप्त कर देना चाहिए वरन् इसे थोड़े-थोड़े समय कराकर उन्हें सम्बन्धित ज्ञान दिया जा सकता है जिससे बालकों को शीघ्र थकान महसूस न हो। एक बार में उद्योग कम से कम ३० मिनट तक भी चलाया जा सकेगा। उद्योग के इस समय को आवश्यकता व रुचि के अनुसार शिक्षक को घटाने-बढ़ाने की पूर्ण स्वतन्त्रता होती है। वर्ष में कुछ दिन ऐसे भी आयेंगे जब बालक एव शिक्षक सारे दिन खेत मे काम करेंगे और कुछ अवसर ऐसे भी आयेंगे जब उद्योग को बहुत कम समय दिया जा सकेगा।

उद्योग शिक्षण पद्धतियाँ—उद्योग की शिक्षण पद्धतियाँ वैसे तो उद्योग एवं कक्षा की दृष्टि से भिन्न-भिन्न होंगी। जिसका विस्तृत विवेचन करना यहाँ अपेक्षित नहीं। यहाँ सभी उद्योगों के पढ़ाने मे जिसमे बालिकाओं के लिए सिलाई और कसीदा भी शामिल हैं साधारणतया प्रयोग में आने वाली पद्धतियों के विषय में विवेचन किया जायेगा। किसी भी उद्योग के शिक्षण मे निम्नलिखित ५ पद्धतियाँ प्रयोग में लाई जाती हैं :—

(१) **प्रदर्शन पद्धति**—अध्यापक को आवश्यकतानुसार कार्य का प्रदर्शन नमूने

के तौर पर करना चाहिए जैसे कताई के पाठ में अध्यापक को बैठने का सही तरीका, तकली व पूनी पकड़ने का सही तरीका, कताई का सही तरीका आदि के नमूने का प्रदर्शन करना चाहिए। तत्पश्चात् बालकों को कार्य करने के लिए प्रेरित करना चाहिए।

(२) मौखिक विवरण पद्धति—कभी-कभी अध्यापक को उद्योग कार्य का मौखिक विवरण देना आवश्यक हो जाता है। अतः उद्योग कार्य की विधि के परिचय हेतु मौखिक विवरण देकर बालकों को कार्य में प्रवृत्त किया जा सकता है।

(३) लिखित विवरण पद्धति—उद्योग कार्य की सही विधि का परिचय कराने के लिए पुस्तकों, निर्देश पत्रों आदि का सहारा लिया जा सकता है। अथवा शिक्षक सही तरीके को बालकों को लिखा देता है। तत्पश्चात् उसी के अनुकूल बालकों को कार्य करने को कहा जाता है।

(४) वाद-विवाद पद्धति—इस पद्धति द्वारा बालक को उद्योग सम्बन्धी प्रश्नों, समस्याओं, तर्कों, शंकाओं को पूछने का अवसर दिया जाता है तथा अध्यापक उनको सुलझाता है। इस प्रकार अध्यापक एवं बालक परस्पर विचार विमर्श कर परिस्थितियों को सुलझा लेते है।

(५) अनुसंधानात्मक पद्धति—अध्यापक बालकों को उद्योग के कार्य में प्रवृत्त कर उन्हें स्वयं मार्ग ढूंढने को छोड़ देता है। बालक स्वयं कार्य करने की प्रणाली सोच निकालते हैं। अध्यापक आवश्यकता पड़ने पर सहायता अवश्य देता है।

इस प्रकार ५ पद्धतियाँ प्रचलित हैं पर प्रत्येक उद्योग कार्य में ये पाँचों पद्धतियाँ प्रयोग में आवें यह आवश्यक नहीं। इनमें से कुछ प्रणालियाँ तो उद्योग कार्य की तैयारी मात्र प्रतीत होती हैं। अध्यापक आवश्यकतानुसार इन प्रणालियों का प्रयोग करने के लिये स्वतन्त्र है।

उद्योग पाठ की योजना—उद्योग शिक्षण में चाहे किसी भी पद्धति का उपयोग किया जाये पर इसकी पाठ योजना इस प्रकार होगी :—

कक्षा ...... दिनांक ..... समय ......

विषय...... प्रस्तुत विषय ......

(१) साधारण उद्देश्य
(२) विशिष्ट उद्देश्य
(३) साहयक सामग्री
(४) पूर्व ज्ञान
(५) प्रस्तावना
(६) उद्देश्य कथन
(७) अध्यापक द्वारा आदर्श प्रदर्शन अथवा कार्य विधि परिचय (यदि आवश्यक हो तो)
(८) उद्योग कार्य (बालकों द्वारा)
(९) उद्योग समाप्ति पर कचरा बटोरना, सफाई आदि कार्य

(१०) पुनरावृत्ति—(समवाय शिक्षण की प्रस्तावना)

उद्योग शिक्षण में अन्य ध्यान देने योग्य बातें—बालकों के उद्योग कार्य की योजना पहले से तैयार कर लेनी चाहिए। प्रचुर सहायक सामग्री जुटा लेनी चाहिए। बालकों द्वारा उद्योग कार्य किए जाते समय अध्यापक को घूम-फिरकर बालकों की त्रुटियाँ सुधारते रहना चाहिए। बालकों द्वारा उद्योग कार्य क्रमबद्ध कराया जाना चाहिए। *बालकों को दिये गए आवश्यक निर्देश स्पष्ट होने चाहिएँ अस्पष्ट* नहीं। बालकों में कार्य का विभाजन कक्षा में टोलियाँ बनाकर टोली नायकों से कराना चाहिए। बालकों के कार्य का मूल्यांकन भी उन्हीं से कराया जाना चाहिए। उद्योग कार्य के लिए कच्चा माल, औजार आदि आवश्यकतानुसार जुटा लेना चाहिए। कक्षा के सभी बालकों को उद्योग कार्य में प्रवृत्त करने का प्रयत्न करना चाहिए जिससे कोई इधर-उधर घूमता न फिरे। उद्योग कार्य के समय सभी सामान व्यवस्थित रहे, इधर-उधर बिखरा न पड़ा रहे। उद्योग कार्य के समाप्त होते ही सारी सामग्री यथास्थान रख देनी चाहिए।

उद्योग शिक्षण में सहायक सामग्री—शालाओं में विभिन्न उद्योगों की व्यवस्था होती है। अतः प्रत्येक उद्योग के लिए सम्बन्धित आवश्यक सामग्री की आवश्यकता होती है। शिक्षक को पहले से ही उद्योग में आवश्यक सामान की योजना बना लेनी चाहिए। *अध्यापक को यह पता होना चाहिये कि कौन सी आवश्यक सामग्री बालकों* से तैयार कराई जा सकती है? कौन सी बाहर से मगानी पड़ेगी? कहाँ सस्ती मिल सकती है? उस वस्तु के लिए कितना खर्च किया जाना उपयुक्त होगा? कक्षा में छात्रों की संख्या की दृष्टि से कितनी वस्तुएं मगाना उपयुक्त होगा? यदि आवश्यक सहायक सामग्री का अभाव है तो बालकों को इस प्रकार टोलियों में बांट देना चाहिए कि एक टोली उस सहायक सामग्री का उपयोग करे तब तक दूसरे बालक अन्य कार्य में व्यस्त रहें।

उद्योग कार्य को करने की प्रणाली के सही तरीके के प्रदर्शन के समय अध्यापक को चित्र, चार्ट्स आदि का प्रयोग करना होता है। अत: ये चित्र, चार्ट्स आदि स्पष्ट होने चाहिएँ। इनके विषय में इस पुस्तक के प्रथम खण्ड के सहायक उपकरण सम्बन्धी अध्याय में स्पष्ट रूप से विवेचन किया जा चुका है।

मन्द बुद्धि बालकों की उद्योग शिक्षा—बुनियादी शिक्षा छात्र की रुचि, क्षमता, शारीरिक शक्ति एवं बाल मनोविज्ञान के सिद्धान्तों के अनुकूल शिक्षा प्रदान करती है। अत: मन्द बुद्धि बालक भी अपनी अवस्थानुकूल क्रमानुसार ज्ञान अवश्य प्राप्त करेगा। तथापि अध्यापक को ऐसे बालकों के प्रति विशेष ध्यान देना चाहिए। ऐसे छात्रों को अलग से छांटकर उन्हें रुचि के अनुसार उद्योग कार्य का अधिक अभ्यास कराना चाहिए। उनकी रुचि उद्योग कार्य में उत्पन्न करने के लिए उद्योग में ऐसी सामग्री का अधिक प्रयोग कराया जाना चाहिये जिससे उन्हें आनन्द आता हो। ऐसे बालकों को प्रोत्साहित करते रहना चाहिये।

सारांश

उद्योग शिक्षण की महत्ता एवं क्षेत्र—बुनियादी शिक्षा उद्योग द्वारा सामान्य विषयों का ज्ञान कराती है। अतः उद्योग का शिक्षण क्रमबद्ध एवं वैज्ञानिक प्रणाली के अनुसार होना चाहिए।

उद्योग शिक्षण के उद्देश्य—शालाओं में कई प्रकार के उद्योगों की व्यवस्था होती है अतः प्रत्येक उद्योग के शिक्षण के विशिष्ट उद्देश्य हुआ करते हैं। तथापि विभिन्न उद्योगों के शिक्षण के सामान्य उद्देश्य एक से हैं।

उद्योग की शिक्षा का समय—उद्योग कितने समय तक कराया जाना चाहिए यह बालक की रुचि, क्षमता, शारीरिक शक्ति, वातावरण, ऋतु आदि बातों पर निर्भर है। समय के निश्चित करने के लिए अध्यापक स्वतन्त्र है। तथापि शिक्षा-शास्त्रियों ने छोटी कक्षाओं के लिए दो घण्टे तथा बड़ी कक्षाओं के लिए तीन घण्टे प्रतिदिन की व्यवस्था उचित मानी है। एक बार में उद्योग कम से कम ३० मिनट तक भी चलाया जा सकता है।

उद्योग शिक्षण पद्धतियाँ—(१) प्रदर्शन पद्धति—अध्यापक कार्य करने के सही तरीके का प्रदर्शन करे। (२) मौखिक विवरण पद्धति—कार्य करने के ढंग को मौखिक रूप से बतादे। (३) लिखित विवरण पद्धति—कार्य करने के ढंग को पुस्तकों चार्ट्स, पत्र-पत्रिकाओं आदि से पढ़ कर जानने को प्रेरित करे। (४) वाद-विवाद पद्धति—उद्योग कार्य करने के ढंग पर प्रश्नोत्तर द्वारा बालकों को कार्यविधि पूर्णतया समझा दे। (५) अनुसंधानात्मक पद्धति—उद्योग कार्य में बालकों को प्रवृत्त कर आगे से आगे उन्हें मार्ग ढूंढने के लिए प्रेरित करे।

उद्योग पाठ की योजना—किसी भी पद्धति को अपनाया जाय पर अध्यापक को पहले से बताये गए संकेतों के आधार पर उद्योग पाठ योजना बना लेनी चाहिए।

उद्योग शिक्षण में अन्य ध्यान देने योग्य बातें—बालकों द्वारा उद्योग कार्य कराते समय अध्यापक को कई बातों का ध्यान रखना चाहिए जैसे उस समय इधर-उधर घूमकर व्यक्तिगत शिक्षण देना, त्रुटि सुधार करना, सामान को व्यवस्थित रखने के लिए निर्देश देते रहना आदि।

उद्योग शिक्षण में सहायक सामग्री—आवश्यक सामग्री की योजना पहले से ही बनाई जानी चाहिए तथा उसे जुटा लेना चाहिए।

मंद बुद्धि बालकों की उद्योग शिक्षा—मंद बुद्धि बालकों को उद्योग का अतिरिक्त अभ्यास कराया जाना चाहिए तथा उन्हें समय-समय पर प्रोत्साहित करते रहना चाहिए।

अभ्यासार्थ प्रश्न

(१) उद्योग शिक्षण के कौन-कौन से सामान्य उद्देश्य होते हैं तथा कृषि व गत्ते के काम के कौन-कौन से विशिष्ट उद्देश्य होते हैं ?

(२) उद्योग शिक्षण की कौन-कौन सी पद्धतियाँ प्रचलित हैं ? आप अपनी कक्षा में कताई की शिक्षा किस प्रकार देंगे ?

(३) कक्षा ५ के क्यारी में खाद देने के उद्योग की पाठ योजना तैयार कीजिए तथा यह बताइये कि अध्यापक को उद्योग शिक्षण में किन किन बातों का ध्यान रखना चाहिए ?

आदि का वैज्ञानिक महत्व एवं उनके द्वारा दिए जाने वाले संकेतों की जानकारी देना।

चित्रकला के दो प्रकार—आचार्य विनोबा जी की दृष्टि से चित्रकला दो प्रकार की है। वे कहते हैं एक है सौन्दर्य की ओर दूसरी है उद्योग की। उसे ही अधिक परिष्कृत शब्दों में यों कहा है कि एक है भक्ति की और दूसरी है कर्मयोग की। बुनियादी-शाला के पाठ्यक्रम में दोनों का ही समावेश होता है। विनोबा जी कहते हैं "जीवन में और शिक्षा में कर्मयोग प्रधान है, यह भुलाया नहीं जा सकता। भक्ति उस कर्मयोग की शोभा है और ज्ञान उसकी प्रभा। साधारणतः मूलोद्योग की यही विचार-सारिणी है और रेखन (चित्रकला) के बारे में भी वह उसी तरह लागू होती है।" कताई, बुनाई, बढ़ईगीरी आदि उद्योगों में जहाँ चित्रकला की जरूरत पड़ती है वह कर्मयोगी चित्रकला है। इसी का विस्तृत रूप आज हमें बड़े-बड़े औद्योगिक नगरों में कार्मशियल आर्ट के रूप में दिखाई देता है। सौन्दर्य की एवं भक्ति की चित्रकला के हमें उत्सवों, पर्वों एवं सजावट के अवसरों पर विशेष प्रकार में दर्शन होते हैं। यह हमारे जीवन को कलात्मक एवं व्यवस्थित बनाती है। दोनों ही प्रकार एक दूसरे के पूरक हैं। कर्मयोगी रेखन भक्ति रेखन की सामग्री उपलब्ध करता है, तो भक्ति रेखन अधिक व्यवस्था एवं कलात्मकता पैदा कर कर्मयोगी रेखन के लिए उपयुक्त अवसर पैदा करता है। अतः दोनों ही अंग एक दूसरे के पूरक हैं।

चित्रकला के साधन—बच्चों को चित्रकला में साधनों के जंजाल में नहीं पड़ना पड़े तो अच्छा है। उनके साधन सस्ते-से-सस्ते हों और कम-से-कम हों इसी में भलाई है। कर्मयोगी रेखन में तो पटिया व पेंसिल ही पर्याप्त हैं। बालक कागज कम से कम काम में ले तो अच्छा है। रबड़ तो बालक में गलत काम करने की आदत डालना है। रेखा को लिखकर मिटाने की भावना का जीवन से कोई समन्वय नहीं। जीवन में तो गलत किए गए काम मिटाए नहीं जा सकते। इस दृष्टि से रबड़ का प्रयोग पूर्णतः वर्जित होना चाहिए। उपरोक्त साधनों द्वारा बालक को कर्मयोगी रेखन का शिक्षण दिया जाना चाहिए।

सौन्दर्य रेखन तो बिना कागज, ब्रुश और रंग के नहीं हो सकता। ब्रुश भी सस्ते-से सस्ता बनाया जा सकता है। पुराने अखबार के दो कागजों को एक दूसरे के ऊपर चिपका कर मोटा कागज बनाया जा सकता है। काले डिस्टेम्पर रंग में पानी में घुला गोंद इतनी मात्रा में मिलाइए कि जब उस रंग को कागज पर लगाएँ तो सूखने पर न तो रंग हाथ के ही लगे और न कागज में ही सल पड़ें। रंग सूखने पर अगर कागज में सल पड़ते हैं तो इसका अर्थ यह होता है कि गोंद अधिक मात्रा में मिल गया है। अगर हाथ के रंग लगता है तो इसका अर्थ यह लगाया जाना चाहिए कि गोंद की मात्रा रंग में कम है। गोंद मिलाने के पश्चात् रंग को एक टुकड़े पर लगाकर जाँच कर लेनी चाहिए और इसके पश्चात् ड्राइंग बनाने के कागज पर लगाना ठीक रहता है। प्रारम्भ में बच्चों को केवल लाल, नीला, पीला और हरा ही रंग दिया जाना चाहिए। इन रंगों को भी प्रयोग में लाने के लिये ये उपरोक्त पद्धति से

चीनी के प्यालों में गोंद मिलाकर तैयार करेंगे। एक या दो ब्रुश ही बच्चों को प्रारम्भ में प्रयोग के लिये दिये जाने चाहियें। ब्रुश अगर बनाना बच्चे सीख लें तो अधिक अच्छा है।

पूज्य विनोबा जी की सीख कला के विषय में मानने योग्य है। वे कहते हैं "छात्रों के आसपास की जो प्रकृति उनके इस सौन्दर्य-चित्रण के लिये विषयों की पूर्ति करेगी, वह अगर उनके साधनों की पूर्ति में समर्थ न हुई तो ईश्वर की कला ही क्या रही ?'''आसपास के पेड़ हमारे लिए अच्छे ब्रुश और उत्तम रंगों की पूर्ति कर सकते हैं। साथ ही चित्रण का विषय भी उनमें भरा हुआ है।" उनका कहना है कि वृक्ष की टहनी से ब्रुश और फूलों से रंग तैयार किये जा सकते हैं।

चित्रकला शिक्षण पद्धति—चित्रकला का शिक्षण एक विस्तृत विषय है और इस दृष्टि से पद्धतियाँ भी अनेकों हो सकती हैं परन्तु जहाँ बुनियादी शाला में चित्रकला पढ़ाने का विषय है व्यावहारिक दृष्टिकोण से प्रत्येक शिक्षक को निम्न बिन्दु दृष्टि में रखने चाहियें :—

(१) कर्मयोगी रेखन—समवायी शिक्षा में कर्मयोगी रेखन सीखने के प्रत्येक पाठ्य विषय में अनेकों अवसर आते हैं। सामाजिक ज्ञान की पुस्तक में दिए गए नक्शों के आधार पर बड़ा नक्शा बनाना, तिथि रेखा तैयार करना, सामान्य विज्ञान में किये गये प्रयोग का चित्र बनाना व उद्योग में नवीन प्रकार की किसी भी वस्तु का चित्र बनाना कर्मयोगी रेखन के अंग हैं। छात्र जब अपना काम कर रहे होंगे शिक्षक उनका मार्ग दर्शन करेगा। कार्य की पूर्णता पर वह छात्र द्वारा बनाई गई आकृति के मुकाबले में, स्वयं द्वारा तैयार की हुई अथवा किसी श्रेष्ठ चित्रकार की कृति को प्रस्तुत कर छात्र को उसकी अशुद्धियों को शुद्ध करने का अवसर देगा। इस पर भी छात्र सुधार करने में असफल हों तो फिर वह स्वयं सुधार करेगा।

(२) सौन्दर्य रेखन—छात्र को उसके वातावरण और प्रकृति से चित्र बनाने की प्रेरणा मिलती है। यह प्रेरणा उसे चित्र बनाने का अवसर देती है। काम करते-करते वह उसका अधिकारी बन जाता है। सौन्दर्य रेखन के लिए छात्र को प्राकृतिक वातावरण में जाने की जरूरत है। शिक्षक वहाँ उसके साथ रहेगा। बालक अपनी रुचि की वस्तुओं की आकृति बनायेंगे। बालक आकृति की ओर अधिक ध्यान देंगे। बालिकायें रंगों की ओर अधिक ध्यान देंगी। सभी बालक उन वस्तुओं को बनाना पसन्द करते हैं जो उन्हें पसन्द हैं। जिनसे उन्हें घृणा व नाराजी है उन्हें वे छोड़ दिया करते हैं। बालक एक लेखक के समान है। वह अपनी भावना को स्वतन्त्रता से व्यक्त करने का मार्ग सौन्दर्य रेखन में पाता है। कभी-कभी वह चित्र का भाग विशेष को ऐसा लीन होकर बनाता है कि अपने को भी भूल जाता है। वह अपनी सूझ-बूझ के अनुसार चित्र में सुधार भी करता है। बालक के काम करने का क्रम करीब-करीब कक्षा ५ तक यही रहता है। इस अवसर पर शिक्षक का कर्त्तव्य यह है कि वह बालकों को काम करने को प्रोत्साहित करता जावे। इस स्तर पर नियमीकरण की जरूरत नहीं है। शिक्षक के पास बालक सहज व्यवहार की दृष्टि से

चित्र दिखाने आवेंगे और उसका प्रोत्साहन पाकर फिर दूसरा चित्र बनाने दौड़ेंगे। कभी-कभी कोई ऐसा छात्र भी आवेगा जो शिक्षक के पास आकर अपनी अभ्यास पुस्तिका में किसी विशेष आकृति को बनाने को कहेगा। शिक्षक को इस आवश्यकता की पूर्ति में किसी प्रकार घबराना नहीं चाहिए। उसे फौरन ही बालक की आवश्यकता को अपनी शक्ति के अनुसार पूर्ण करना चाहिए। बालक की आवश्यकता की पूर्ति होनी चाहिए। उसे इस बात की चिन्ता नहीं होती कि किस प्रकार पूर्ति की गई है। उसका गलती की ओर ध्यान कम जाता है। वह तो काम करना चाहता है। उसे काम करने दिया जावे यही तरीका इस समय श्रेष्ठ है।

शिक्षक का छात्रों को इस उम्र में नियम बताना वर्जित माना गया है। फिर भी बालकों को अप्रत्यक्ष रूप में सुझाव दिये जा सकते हैं। इसका तरीका यही है कि शिक्षक भी बालकों के साथ प्रवृत्ति में काम करने बैठ जावे। उसके चित्र बालक देखेंगे। वे प्रभावित होंगे और सीखेंगे।

चित्रकला शिक्षण में कुछ नवीन प्रयोग—चित्रकला शिक्षण पद्धति में आजकल कुछ प्रयोग हो रहे हैं। इन प्रयोगों के अन्तर्गत यह प्रयास किया जा रहा है कि कक्षा में करने का चित्रकला का काम किस प्रकार बाल रुचिपूर्ण बनाया जावे। आज छात्रों को चित्रकला के पीरियड में कुछ वस्तुओं को केवल बनाने को ही कहा जाता है। यह अलग बात है कि उन्हें स्मृति के आधार पर बनाने को कहा जाता है अथवा वे सांकेतिक चित्रकला बनाते हैं या वस्तु चित्रण करते हैं या स्वतन्त्र हाथ चित्रण (फ्री हैण्ड ड्राइंग) करते हैं या डिजाइन बनाते हैं या कोई अन्य कार्य करते हैं। परन्तु ये सभी केवल बनाने के लिए बनाना बाल-रुचि के अनुकूल नहीं है। बालक तो अपनी जरूरतों की पूर्ति चाहता है और उसमें भी प्रमुख आवश्यकता की पूर्ति पहले चाहता है। वह महत्त्व की दृष्टि से या दूरदर्शिता की दृष्टि से काम नहीं करता। ऐसे बालक की रुचि जागृत करना आज के चित्रकला-शिक्षक की बड़ी जिम्मेदारी है। प्रगतिशील चित्रकला शिक्षक को अपने रोजाना के पाठ पर पर्याप्त समय तक मनन करना होगा। कुछ ऐसे पाठ आवेंगे जहाँ वह अपनी योजना हरबार्ट की पञ्चपदी के अनुसार तैयार कर सकता। ऐसे पाठ चित्रकला की कहानी विधि में, जिसके विषय में आगे वर्णन किया जावेगा, तैयार किये जा सकते हैं। सम्पूर्ण पाठ को शिक्षक इस प्रकार बाँटेगा (१) भूमिका (शिक्षक कहानी की भूमिका देगा), (२) उद्देश्य कथन (शिक्षक लिखित पाठ का उद्देश्य स्पष्ट करेगा), (३) प्रस्तुतीकरण (शिक्षक यहाँ पर कहानी सुनाता जावेगा और स्वयं श्यामपट्ट पर काम भी करता जावेगा। छात्र भी उसी के अनुसार काम करते जावेंगे), (४) पुनरावलोकन (शिक्षक छात्रों की सहायता से पुनरावलोकन करेगा), (५) प्रयोग (किए गये कार्य के ज्ञान के आधार पर शिक्षक अन्य कार्य करने को छात्रों से कहेगा)। हरबार्ट की पञ्चपदी के विषय में विस्तार से पुस्तक के प्रथम भाग में दिया जा चुका है।

(१) चित्रकला में कहानी विधि—चित्रकला सिखाने में कहानी विधि का प्राचीन काल से ही भारत में प्रयोग होता है। भारतीय कला-शिक्षा में इसकी

ऐसी कहानियाँ प्रचलित हैं। बालक कहानियाँ कहते हैं और चित्र बनाते जाते हैं। एक ओर उनकी रुचि एवं उत्सुकता कहानी के कारण बनी रहती है और दूसरी ओर चित्र बनता रहता है। जब कहानी समाप्त होती है और वे सम्पूर्ण चित्र को देखते हैं तो उसमें कोई आकृति दिखाई देती है। इसी आधार को कुछ व्यवस्थित करते ही सुन्दर रेखा चित्र बन जाता है।

हमारे यहाँ ऐसी ही एक प्रचलित कहानी इस प्रकार है (देखिए चित्र क) :—

इस चोर चोरी करने की योजना बना रहे हैं। वे एक गाँव पर इस उद्देश्य से हमला करना चाहते हैं। परन्तु रास्ते में दो कुत्ते भी बैठे हुए हैं। उनकी स्थिति गाँव में घुसने में बाधा पैदा करती है। गाँव के उत्तरी भाग पर कुछ विद्यार्थी काम में व्यस्त हैं। उनके निकट ही झोंपड़ी में गुरुजी बैठे हुए हैं। गुरुजी की झोंपड़ी के बाहर उनकी लकड़ी रखी हुई है। चित्र (क) में संख्या १, २, ३, ४, ५, व ६ से अंकित आकार क्रमशः चोर, गाँव, कुत्ते, विद्यार्थी, गुरुजी की झोंपड़ी व लकड़ी का बोध कराते हैं। शिक्षक कहानी कहता हुआ सब अंगों को चित्र में अंकित व्यवस्था और आकार के अनुसार श्यामपट्ट पर बनाता जावेगा।
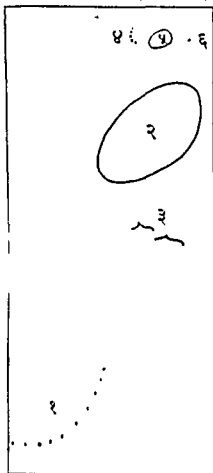
चित्र—क

सबकी स्थिति बता कर शिक्षक घटना-क्रम का वर्णन शुरू करेगा। इस सम्पूर्ण घटना-क्रम में अलग-अलग व्यक्तियों के मार्ग वह दर्ज करता जावेगा। इस दृष्टि से देखिये चित्र (ख)। शिक्षक घटना का वर्णन करता हुआ कहेगा चोरों ने योजना बनाकर गांव पर हमला कर दिया। उनको देखकर दोनों कुत्ते पहले चोरों की ओर भागे पर उनके न रुकने पर वे भी गांव के अन्दर दौड़े। गांव में शोर-गुल हुआ। विद्यार्थियों ने भी सुना। गुरुजी को सूचना देने वे सब झोंपड़ी में दौड़े। गुरुजी तैयार होकर कुटिया के बाहर लकड़ी लेने दौड़े। लकड़ी लेकर कुटिया में आये। सब विद्यार्थियों को साथ लेकर गांव की रक्षा के लिए दौड़े। चोरों को पकड़ लिया और कैद कर दिया। इस सारे वर्णन में कुल ५ घटनायें हैं। चोरों का गांव की ओर बढ़ना, कुत्तों का भागना, छात्रों का गुरुजी के पास जाना, गुरुजी का लकड़ी लाना, सब का गांव की रक्षा के लिए दौड़ना। ये सब मार्ग चित्र में क्रमशः संख्या १, २, ३, ४, व ५ द्वारा स्पष्ट किए गए हैं।
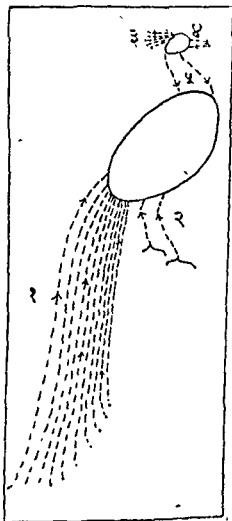
चित्र—ख

ज्यों ही कहानी पूर्ण होगी शिक्षक बालकों का पूरा ध्यान चित्र (ख) की ओर

आकृष्ट करेगा। उनसे प्रश्न किया जायेगा कि यह आकृति किसे जाहिर करती है। छात्रों का सही उत्तर आने पर शिक्षक इस आकृति की कुछ बारीकियाँ पूरी करता जावेगा। छात्र भी ऐसा करेंगे। बड़े आनन्द के साथ पाठ पूरा होगा। आज चित्रकला की कक्षा में जो सुस्तु शान्ति दिखाई देती है उसे दूर करने के लिये इस तरीके को यदि श्रेष्ठतम नहीं कहा जावे तो श्रेष्ठ तो कहना ही पड़ेगा।

चित्र—ग

चित्रकला की कहानी विधि का विदेशों में प्रयोग—विदेशों में भी कक्षा में चित्रकला के कार्य को रुचिपूर्ण बनाने के लिए प्रयोग हो रहे हैं। इस क्षेत्र में रूस में सराहनीय प्रगति हुई है। व सुतेयव द्वारा लिखित "दो कहानियाँ—पेंसिल और रंगों के बारे में" एक छोटा-सा ग्रन्थ है। इसमें भी ठीक भारतीय कहानी तरह ही कहानी बड़े सुन्दर ढंग में ए किया गया है। उसे सुनकर बालक प्रसन्नता से उछल पड़ते हैं। चित्र-के शिक्षकों के लिए इस ओर काफी काम करने का क्षेत्र खुला पड़ा है।
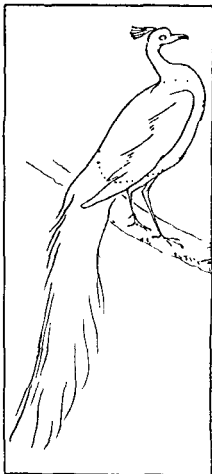
(२) **व्यवर्तक चित्रकला**—परमात्मा की रचना की यह विशेषता है कि उसने एक किस्म के जीवधारी से दूसरे किस्म के जीवधारी को भिन्न बनाया है। तुलनात्मक

दृष्टि से इस भिन्नता को पहचान लेना ही व्यवर्तक चित्रकला के क्षेत्र में आता है। चित्रकला के क्षेत्र में मनोविज्ञान की दृष्टि से गेस्टाल्ट मनोविज्ञान का प्रयोग होता है। प्रारम्भ में सम्पूर्ण को बना कर, फिर भेद की ओर बढ़ते हैं। भेद एवं अंग तो बाद की चीज है। बालक अगली कक्षाओं में बारीकियों की ओर बढ़ते हैं। प्राथमिक शिक्षा में तो उसे सम्पूर्ण की ओर ही ध्यान देना है। इस सम्पूर्णता की दृष्टि से तो सम्भव है बालक सभी चौपायों को एक समान बनाने लगे और इसी प्रकार सब पक्षियों को एक समान और इसी प्रकार अन्य वस्तुओं को भी। इस गलती से बचाने हेतु शिक्षक बालकों को पशुओं के अंग निर्माण के आधार पर एक का दूसरे से अलग होने की जानकारी देगा। जैसे हाथी में सूंड और बैल में उसकी कूबड़ और सींग का भेद व्यवर्तक अंग है। बालकों की इस जानकारी को बढ़ाने में योग देना आज के शिक्षक का महत्वपूर्ण कर्त्तव्य है।

परम्परित चित्रकला शिक्षा और बुनियादी तालीम—परम्परित शिक्षा में चित्रकला को कुछ भागों में बांटकर पढ़ाया जाता है। वे भाग इस प्रकार हैं—वस्तु चित्रण, मुक्तहस्त चित्रण (फ्री हैण्ड ड्राइंग), प्रकृति चित्रण, स्मृति चित्रण, सांकेतिक चित्रण, डिजाइन व ज्यामिति आदि। बुनियादी तालीम ने संपूर्ण विषय को उपरोक्त प्रकार से अलग-अलग विभाजित नहीं किया है और न यहाँ इनको अलग-अलग पढ़ाने के लिए कोई स्थान ही है। यहां तो इसके व्यावहारिकता और उपयोगिता के दृष्टिकोण को ही महत्व दिया गया है। इसके अन्तर्गत जो दो भाग किये गये हैं उनमें से एक है कर्मयोगी चित्रण और दूसरा है सौन्दर्य चित्रण।

चित्रकला का पाठ्यक्रम—चित्रकला शिक्षा का सम्पूर्ण पाठ्यक्रम शिक्षा के अवसर के अनुसार निम्न भागों में विभाजित किया जा सकता है :—

(क) कक्षा १ से ५ तक—इस समय बालक का सम्पूर्ण कार्य अभिव्यक्ति में स्वतन्त्रता के सिद्धान्त पर आश्रित होता है। वे लगातार स्वतन्त्रता से काम करते हैं और उनकी क्रियात्मक प्रवृत्ति को सन्तोष देते हैं। अथवा कभी वे अन्य विषय की जरूरत को पूरा करने को चित्र बनाते हैं। शिक्षक यहाँ बालकों को केवल प्रोत्साहन देगा या घुमाव पद्धति से उसका पथ-प्रदर्शन करेगा।

(ख) कक्षा ६ से ११ तक—इस स्तर पर नियमीकरण शुरू होता है। यहाँ पर चित्रकला के नियमों की पूर्णतः जानकारी दी जाती है अर्थात् कला की व्याकरण का बालक को ज्ञान कराया जाता है। बालक द्वारा तैयार की गई प्रत्येक कृति नियमों की कसौटी पर कसी जाती है।

(ग) उच्चतर शिक्षा—इस अवसर पर छात्र सौन्दर्यानुभूति एवं गुण-अवगुण ज्ञान की प्राप्ति करते हैं।

बुनियादी शिक्षा का पाठ्यक्रम—बुनियादी शाला के पाठ्यक्रम में चित्रकला के अन्तर्गत निम्न बिन्दुओं का समावेश होता है :—

(१) घर की वस्तुओं का चित्रण।

(२) घर के बाहर गाँव की वस्तुओं का चित्रण।

(३) प्रकृति का चित्रण।

(४) अन्य विषय के पाठों से सम्बन्धित चित्रों व मानचित्रों का चित्रण।

(५) रंग के विषय में प्रारम्भिक जानकारी।

कक्षा ५ तक के चित्रकला के पाठ्यक्रम में निम्न बातों का भी समावेश कर लेने की पद्धति है :—

(१) कहानियों को तस्वीरों के रूप में बनाना।

(२) रंग के भिन्न-भिन्न प्रकारों का ज्ञान।

(३) हिलते-डुलते बच्चों और पशुओं को देखकर चित्र खींचना, आदि।

कक्षा ५ तक के बालकों से उपरोक्त आशा रखना किसी भी दशा में उपयुक्त नहीं माना जा सकता है। इसमें भी कोई संदेह नहीं कि पाठ्यक्रम के निर्माण करने वाली शक्तियाँ भी यह जानती हैं कि उपरोक्त कार्य बालकों की शक्ति के बाहर है। परन्तु यह जानते हुए भी वे इन बिन्दुओं का पाठ्यक्रम में समावेश कर लेते हैं। शायद इस कारण कि उनका इन बिन्दुओं के समावेश से कक्षा १ से ५ तक का पाठ्यक्रम सीढ़ीवार बन जाता है और नीचे की कक्षा से ऊपर की कक्षा में कार्य का स्तर बढ़ता हुआ दिखाई देने लगता है। सिद्धान्त का व्यवहार में एवं योजना का उसके क्रियात्मक पक्ष में मेल बिठाने की ओर कदम उठाया जाना आज की जरूरत है। इस ओर ध्यान देने पर ही बालक की शक्ति और उसकी रुचि के अनुकूल पाठ्यक्रम तैयार हो सकेगा।

उपसंहार—चित्रकला के व्यावहारिक एवं जीवनोपयोगी अवसर हमारे दैनिक जीवन में अनेकों बार आते हैं। इन अवसरों का उपयोग करके व्यक्ति अपने व्यक्तिगत जीवन, पारिवारिक जीवन, ग्रामीण जीवन एवं नगर जीवन, प्रान्तीय जीवन, राष्ट्रीय जीवन एवं अन्तर्राष्ट्रीय जीवन को सुन्दरतम बना सकता है।

सारांश

चित्रकला का स्थान एवं क्षेत्र—**लेखन शिक्षा का प्रारम्भ चित्रकला से होता है और प्रत्येक विषय के अध्ययन में इसकी सहायता की आवश्यकता पड़ती है।**

चित्रकला की शिक्षा के उद्देश्य—

(१) प्रशिक्षण विद्यालय में—

(क) श्यामपट्ट कार्य में सुधार करना।

(ख) पाठ सहायक सामग्री का निर्माण करने की योग्यता पैदा करना।

(ग) कक्षा ५ तक के छात्रों को चित्रकला पढ़ाने की योग्यता पैदा करना।

(घ) शाला आयोजनों को सजाने की योग्यता पैदा करना।

(२) बुनियादी-शाला में चित्रकला पढ़ाने के उद्देश्य—**सारांश में हमें यह कहना चाहिए कि हमारा प्रत्येक काम सुन्दर, सुव्यवस्थित और सुयोजित**

होने और जीवन को कलात्मक बनाने के लिए चित्रकला का शिक्षण जरूरी है।

चित्रकला के प्रकार—(१) कर्मयोगी रेखन, (२) सौन्दर्य रेखन।

चित्रकला के साधन—चित्रकला में रबर का प्रयोग पूर्णतः वर्जित है। शेष सामग्री का प्रयोग कम से कम खर्चा करते हुए करना चाहिए।

चित्रकला शिक्षण पद्धति—इस पद्धति के अन्तर्गत दो भाग आते हैं—(१) कर्मयोगी रेखन पद्धति, (२) सौन्दर्य रेखन पद्धति।

चित्रकला रेखन में कुछ नवीन प्रयोग—

(१) चित्रकला शिक्षण में कहानी विधि, (२) व्यवर्तक चित्रकला।

परम्परित शिक्षा और बुनियादी तालीम—परम्परित शिक्षा में चित्रकला के मुख्यतः सात भाग किये गये हैं परन्तु बुनियादी तालीम में केवल दो ही भाग किए गए हैं।

चित्रकला का पाठ्यक्रम—इसके अन्तर्गत कक्षा १ से ५ तक बालकों को स्वतन्त्रता से अभिव्यक्ति का अवसर दिया जाना ही पर्याप्त है। उनसे आदर्श के आधार पर कहानियों की तस्वीरें बनाना आदि कार्य की उपेक्षा करना गलत होगा।

उपसंहार—चित्रकला द्वारा कलात्मक जीवन का विकास किया जाकर व्यक्तिगत ही क्या अन्तर्राष्ट्रीय जीवन को भी सुन्दर बनाया जा सकता है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

(१) चित्रकला की शिक्षा के उद्देश्यों पर प्रकाश डालते हुए, यह स्पष्ट कीजिए कि जीवन में इसका क्या महत्त्व है?

(२) चित्रकला की शिक्षण पद्धतियों पर प्रकाश डालिए और स्पष्ट कीजिए कि आज की स्थिति में कौनसी पद्धति श्रेष्ठ रहती है?

⊙

शारीरिक शिक्षा : शिक्षण पद्धति

शारीरिक शिक्षा का स्थान और क्षेत्र—अंग्रेजी में एक कहावत प्रचलित है—"ए साउण्ड माइण्ड इन ए साउण्ड बॉडी"—जिसका अर्थ है स्वस्थ मस्तिष्क स्वस्थ शरीर में निवास करता है। बालक की शिक्षा की सुन्दरतम् तरीके से व्यवस्था की जाये। उसके ज्ञान का पर्याप्त विकास हो जावे। परन्तु स्वास्थ्य अगर साथ नहीं देता है तो इस बौद्धिक विकास का लाभ नहीं उठाया जा सकता। इस प्रकार शारीरिक शिक्षा का शिक्षा में बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान है। परम्परित शाला में शारीरिक शिक्षा में अधिक समय दिये जाने की व्यवस्था थी। कारण भी स्पष्ट है। उसमें शारीरिक शिक्षा के समय के अतिरिक्त शाला का शेष समय बौद्धिक कार्य में ही बिताया जाता था। बुनियादी तालीम शारीरिक शिक्षा के लिए उतना समय दे सकने की स्थिति में नहीं है। ऐसा होना भी चाहिए क्योंकि यहाँ पर शारीरिक परिश्रम उद्योग के अन्तर्गत पर्याप्त मात्रा में हो जाता है। फिर भी उद्योग के द्वारा होने वाला शारीरिक-श्रम शरीर के सब अंगों के व्यायाम का अवसर प्रदान नहीं करता। इस दृष्टि से बुनियादी शाला के समय-विभाग-चक्र में व्यायाम और खेल के लिए केवल ३० मिनट दिए गए हैं। शारीरिक शिक्षा समाज के प्रत्येक व्यक्ति के लिए जरूरी है। जो दुर्बल हैं उन्हें स्वास्थ्य सुधार के लिए इसकी जरूरत है और जो अत्यधिक मोटे हैं, उन्हें अपना शरीर सुडौल बनाने के लिए और जो साधारण स्वास्थ्य वाले हैं उन्हें उसे कायम रखने के लिए इसकी जरूरत है।

शारीरिक शिक्षा के उद्देश्य—पाठ्यक्रम में शारीरिक शिक्षा का समावेश निम्न उद्देश्यों की पूर्ति में योग देता है :—

(१) बालक के शरीर का प्रत्येक अंग सुडौल हो सके।

(२) बालक में फुर्ती से काम करने की क्षमता पैदा हो।

(३) बालक को स्वास्थ्य विज्ञान का बोध हो जाए और वह शरीर के अंग-प्रत्यंग के कार्यों से परिचित हो सके।

(४) बालक व्यवस्थित रूप से खड़े रहना, बैठना, दौड़ना एवं चलना आदि क्रियाएँ सीख सके।

(५) बालक आज्ञा पालन की भावना का विकास कर सके।

(६) अधिक योग्यता से कार्य करने की शक्ति पैदा करना (एस व्यक्ति जो खेल-कूद में अधिक भाग लेते हैं वे साधारण जीवन में अधिक सफल होते हैं।

(७) बालक कुटुम्ब का अधिक उपयोगी [illegible] अधिक [illegible] सामाजिक और चरित्रवान व्यक्ति बन सके (ऐसे व्यक्ति [illegible] । देखा है वे साधारणतः चरित्रवान होते हैं।)

के कार्यों का बोध कराती है। यह भावी जीवन की तैयारी है। बालक-बालिकायें सिपाही, शिक्षक, डाक्टर, माता, बहन, पत्नी आदि बनकर खेलते हैं। यह भावी जीवन का पूर्व अभिनय है।

(४) पुनरावर्तन का सिद्धान्त—महाशय स्टेनलेहाल का कथन है कि—"खेल की समस्त क्रियाओं की कुंजियाँ भूतकाल में रक्षित है। खेल का पूरा विकास जाति-गत इतिहास का पुनरावर्तन है। हम तुरन्त विश्वास कर सकते हैं कि बालक अपने खेल में आदिम मनुष्य की कुछ क्रियाओं की पुनरावृत्ति करता है।" तात्पर्य यह है कि बाल्यकाल असभ्य मानवता का काल है। आदिकाल के मनुष्य के जंगली जीवन, शिकार करना, गुफाओं में रहना आदि की बालक आँख मिचौनी, पीछा करना, शिकार करना, पत्थर फेंकना, घरौंदे बनाना, कृत्रिम लड़ना आदि के रूप में खेलकर पुनरावृत्ति करता है। इस प्रकार पूर्वजों के कार्य की पुनरावृत्ति होती है। इसी कारण प्रकृति ने मानव के बालक को ही सम्पूर्ण इतिहास को दोहराते हुए विकास की आधुनिक सभ्यता तक पहुँचने के लिए सबसे लम्बा बाल्यकाल दिया है।

(५) परिष्कृति का सिद्धान्त—कतिपय विद्वानों का मत है कि पूर्वजों की उन जंगली प्रवृत्तियों को खेल द्वारा बालक परिष्कृत करता है। पूर्वजों की युद्ध प्रिय प्रवृत्ति को सभ्यता में स्थान नहीं पर मनुष्य में जन्म-जात लड़ने का स्वभाव है। अतः सभ्य मनुष्य खेल में लड़ता है। खेल परिष्कृति का सफल और सरल साधन है।

(६) शुद्धिकरण का सिद्धान्त—कुछ विद्वानों का मत है कि मानव में बहुत सी प्रवृत्तियाँ ऐसी होती है जिनके प्रकाशन का सुयोग्य अवसर नहीं मिलता। अतः वह उनका दमन न करके खेलों द्वारा इन प्रवृत्तियों का प्रकाशन कर अन्तःकरण को शुद्ध व निर्मल बनाता है।

(७) अनुकरण का सिद्धान्त—एक मत यह भी है कि खेल केवल अनुकरण प्रवृत्ति का क्रियाशील रूप है। अनुकरण करने में सभी को आनन्द मिलता है। बालक भी जगत् के कार्यों को देखकर उनका अनुकरण करता हुआ आनन्द प्राप्त करता है।

इन सभी सिद्धान्तों के लिए सर पर्सीनन का मत है कि ये सिद्धान्त एक दूसरे के विरोधी नहीं माने जाने चाहिएँ वरन् ये एक दूसरे के पूरक ही प्रतीत होते हैं। वास्तव में खेल शक्ति का संचय भी करते हैं, आचरणों का परिष्कार भी करते हैं, भावी जीवन की तैयारी भी करते हैं, अनुकरणमूलक भी हैं।

खेलों के प्रकार—यद्यपि सभी बालक खेल खेलते हैं पर उनके खेल एक से नहीं होते हैं। उनमें भिन्नता होती है। वातावरण, शारीरिक गठन, मानसिक अवस्था, स्फूर्ति, रुचि, वय, लिंग भेद आदि के कारण बालकों के खेलों में अन्तर होता है। इनके आधार पर कार्लग्रूस महाशय ने खेलों के पाँच भेद किये हैं :—

(१) परीक्षणात्मक खेल—बालकों का वस्तुओं को उठाना, इधर-उधर पलटना आदि परीक्षणात्मक खेल हैं। इनसे बालक इन्द्रियों का विकास करता है, वस्तुओं से परिचय प्राप्त करता है।

(२) धावन खेल—भागने, दौड़ने, छिपने, पकड़ने के खेलों को धावन खेल

कहा जाता है। ये खेल सामूहिक होते है तथा इनसे शरीर का गठन होता है।

(३) **रचनात्मक खेल**—मिट्टी के घरौंदे बनाना, खिलौने बनाना, चित्र का बनाना, स्काउटिंग मे पिरेमिड बनाना आदि रचनात्मक खेल है। इस प्रकार के खेलों में हाथ का काम अधिक होता है। ये खेल कल्पना के विकास में सहायता देते है।

(४) **लड़ाई के खेल**—फुटबाल, हाकी, कबड्डी, कुश्ती आदि लड़ाई के खेल है जिनमें लड़ने की भावना निहित है। ये खेल प्रायः सामूहिक होते हैं। इनमे बालक संगठन की भावना तथा समूह के लिए कार्य करना सीखता है।

(५) **मानसिक खेल**—विचारपूर्वक तथा बुद्धि को अत्यधिक प्रयोग कर खेले जाने वाले मानसिक खेल कहलाते है। कार्लग्रूस ने मानसिक खेल तीन प्रकार के बताये हैं :—

(क) **विचारात्मक खेल**—जिनमें मस्तिष्क का पूरा काम हो जैसे शतरंज, चौपड़, ताश आदि।

(ख) **संवेगात्मक खेल**—भावनाओं की अभिव्यक्ति वाले खेल जैसे नाटक आदि।

(ग) **कृत्यात्मक खेल**—जैसे हँसी की बात पर भी न हंसने का प्रयत्न करना, म्युजिकल चेयर-रेस आदि खेल जिनमें किसी प्रकार की प्रतियोगिताएँ हों।

खेलों का शिक्षा में उपयोग—शिक्षा मे नवीन दृष्टिकोण के अनुसार खेलों का शिक्षा मे प्रयोग होने लगा है। खेल द्वारा शिक्षा दी जाने लगी है। खेल द्वारा शिक्षा देने का तात्पर्य ही यह है कि पढ़ाने की विधि ही ऐसी हो कि बालकों को अध्ययन भारस्वरूप प्रतीत न हो। उन्हे पढ़ने में आनन्द आए, वे पूर्ण रुचि लें। इसी सिद्धान्त के आधार पर शिक्षा की कई नवीन पद्धतियों का प्रादुर्भाव हुआ है। जैसे किंडर गार्टन पद्धति, माटेसरी पद्धति, डाल्टन प्लान, प्रोजेक्ट-पद्धति, बालचर पद्धति आदि सभी पद्धतियाँ खेलो की उपयोगिता के सिद्धान्त पर अवलम्बित हैं। ये पद्धतियाँ शिक्षा की समस्त प्रक्रिया को बालक के आनन्द, उत्साह और खेल के दृष्टि-कोण से देखती हैं। महाशय रोस ने भी लिखा है कि—"समस्त शिक्षा खेल-मूलक होनी चाहिए।" इस प्रकार शिक्षा मे खेल वृत्ति का बड़ा महत्वपूर्ण स्थान है।

शाला में खेलो का प्रबन्ध—खेल बालकों के शारीरिक गठन, मानसिक गठन और चारित्रिक गठन में अप्रत्याशित योग देते हैं। अत. शाला मे खेलों का उचित प्रबन्ध होना आवश्यक है। सभी प्रकार के खेल जैसे धावन खेल, रचनात्मक खेल, लड़ाई के खेल, मानसिक खेल आदि का प्रबन्ध शाला द्वारा किया जाना आवश्यक है। शाला को खेलों के प्रबन्ध में निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए :—

(१) विभिन्न कक्षाओं के लिए खेलों का समय-विभाग-चक्र बनाना चाहिए। यदि शाला में अधिक संख्या ऐसे छात्रों की है जो आस-पास के, दूर के स्थानों व गाँवों से पढ़ने आते हैं तो शाला के दैनिक समय की समाप्ति के साथ ही खेल प्रारम्भ कर दिये जाने चाहिएँ अथवा अध्ययन के लिए बनाए गए दैनिक समय-विभाग-चक्र में ही खेलों को स्थान दिया जाना चाहिए।

(२) प्रत्येक कक्षा को खेल खिलाने के लिए एक अध्यापक को निरीक्षक बनाया जाना चाहिए ताकि वह स्वयं खेल के नियमों से परिचित होकर बालकों से खेल में नियमों का पालन करवायें, जिससे बालकों में नियम पालन की आदत पड़ेगी।

(३) कक्षा में प्रत्येक खेल का एक कप्तान छात्रों द्वारा चुना हुआ होना चाहिए जिससे बालकों में नेतृत्व की भावना तथा नेता के आदेश पालन की भावना का प्रस्फुरण हो।

(४) बालकों की आयु का ध्यान रखकर खेल निश्चित किये जाने चाहियें।

(५) खेल सामूहिक होने चाहिएँ जिनसे सहयोग के साथ दल के प्रति काम करने की भावना उत्पन्न हो।

(६) खेल में पूर्ण स्वतन्त्रता होनी चाहिए।

(७) समय-समय पर अध्यापकों को भी खेलों में भाग लेना चाहिए जिससे बालकों में अध्यापक के प्रति घनिष्ठता बढ़े।

(८) अपने नेता की आज्ञा का पालन, सहयोग, सहनशक्ति, त्याग आदि की भावना बालकों में खेल द्वारा उत्पन्न करनी चाहिए।

(९) खेलों में समृद्धि प्रतियोगिता भी होनी चाहिये: जैसे अन्तर्कक्षीय प्रतियोगिता, अन्तर्शालीय प्रतियोगिता, टूर्नामेंट आदि।

(१०) राष्ट्रीय पर्वों पर तथा शाला के वार्षिकोत्सवों पर खेलों का आयोजन बालकों को अधिक प्रोत्साहन देगा।

बुनियादी शाला में खेल व्यवस्था—खेल के सिद्धान्तों को बुनियादी शिक्षा भी मानती है। पर बुनियादी शिक्षा शरीर का गठन केवल खेलों द्वारा नहीं मानती। शरीर गठन उद्योग कार्य करने से भी होता है। श्री विनोबा भावे ने कहा है:—

"शरीर के तीन घण्टे उद्योग में लगाने और गृह-कृत्य और स्वकृत्य स्वतः करने का नियम रखने के बाद दोनों समय व्यायाम करने की जरूरत नहीं है। फिर भी एक समय अपनी जरूरत के मुताबिक खुली हवा में खेलना, घूमना या कोई विशेष व्यायाम करना उचित है।"

अतः यदि खेल का उद्देश्य केवल शारीरिक गठन ही हो तो ऐसे खेलों को बुनियादी शिक्षा में कोई स्थान नहीं है। क्योंकि शारीरिक गठन अपने उद्योग-कार्य और नित्य-कर्म करने से स्वाभाविक रूप से स्वतः होगा। और इसीलिए जो खेलों द्वारा बालकों का शारीरिक, मानसिक और चारित्रिक विकास तो करती है पर उनको आर्थिक विकास का मार्ग नहीं सुझाती वे योजनायें बुनियादी शिक्षा की दृष्टि से उपयुक्त नहीं है। श्री विनोबा जी ने इसको स्पष्ट करते हुए लिखा है कि:—

"बुनियादी योजना किसी योजना (डाल्टन प्रोजेक्ट, किंडर गार्टन, मांटेसरी) का सुधरा हुआ रूप नहीं है। वह स्वतन्त्र और विशिष्ट योजना है। दूसरी योजनायें (जो खेलों पर आधारित है) लड़कों को कोई उपजाऊ धन्धा नहीं सिखातीं। नई तालीम देश का उत्पादन बढ़ाती है, छात्र को स्वावलम्बी बनाती है और ज्ञान भी देती है। यह पद्धति हमें हिन्दुस्तान की परिस्थिति में सब से सहज सूझी है। उद्योग

द्वारा शिक्षण का विचार मान्य करते हुए भी दूसरी पद्धतियों ने आजीविका सम्पादन द्वारा शिक्षण सिद्ध नहीं किया है।"

परन्तु इसका यह अर्थ न समझ लेना चाहिए कि बुनियादी शिक्षा को खेलों से घृणा है। वस्तुतः बुनियादी शिक्षा महाशय रौस की खेलों की परिभाषा को अपनाती है। महाशय रौस ने लिखा है—"खेल आनन्ददायक, स्वेच्छामूलक, उत्पादक क्रिया है जिसमें मनुष्य को पूर्ण आत्म-व्यंजना प्राप्त होती है।" इसी उत्पादन-क्रिया खेल में बालक की उद्योग-क्रिया की विशेषता निहित है। उद्योग की योजना में बालक स्वयं खेल का-सा ही आनन्द लेता है। जितना आनन्द, रुचि, मनोरंजन एवं विनोद बालक खेल में प्राप्त करता है उतना ही वह रुचि के अनुकूल उद्योग में भी प्राप्त कर सकता है। जीवन की विभिन्न क्रियाओं द्वारा तथा अपने चुने हुए मूलोद्योग की क्रियाओं द्वारा अनेक विषयों का ज्ञान स्वाभाविक रूप से प्राप्त करता रहता है। इस प्रकार बुनियादी शिक्षा का उद्योग-कार्य एक ओर तो खेल का कार्य करता है और दूसरी ओर बालकों को धन्धा सिखाता है जो उनके भावी जीवन में आर्थिक दृष्टिकोण से सहायक होता है। इस प्रकार खेल की भाँति किये गए कार्य का भी मूल्य है।

बुनियादी शिक्षा में स्वायत्त शासन प्रणाली, वाचनालयों का चुनाव, आदर्श प्रजातन्त्र रूप में संगठन, आत्म-उत्कर्ष की सामाजिक महत्ता आदि सभी खेलों के ही विभिन्न स्वरूप हैं। खेल ही खेल में बालक रचनात्मक कार्य सीखता है। खेल ही खेल में अंकों की गणना सीखता है। खेल ही खेल में वन भ्रमण कर पर्वतों, नदियों, घाटियों से भूगोल सीखता है। मठ, मन्दिर तथा प्राचीन भग्नावशेषों में इतिहास की जानकारी करता है। ये सब विशेषतायें बुनियादी शिक्षा में खेल पद्धति का समावेश करती हैं।

इस प्रकार बुनियादी शिक्षा खेल वृत्ति के आधार पर बालक की इन्द्रियों का बलवर्धन करती है, उसके ज्ञान का विकास करती है, उसके चरित्र का विकास करती है, उसे आत्मनिर्भर एवं स्वावलम्बी बनाती है। बुनियादी शिक्षा की प्रणाली खेल और शिक्षा का समन्वय कर शिक्षण पद्धति के सभी दोषों को दूर करने में समर्थ है। केवल शिक्षक में यह विशेषता होनी चाहिए कि वह कार्य की योजना बनाने में इतना सफल हो कि काम में बालक खेल का सा ही आनन्द ले सके। उद्योग-कार्य खेलों में सिखाया जाना चाहिए।

बुनियादी शाला में कम से कम ३ घंटे उद्योग-कार्य कराने पर खेलों की अलग से आवश्यकता न पड़ेगी ऐसा विचार श्री विनोबा भावे का है पर साथ ही आवश्यकतानुसार शाला में खेल व्यवस्था करने की भी सम्मति दी है। वास्तव में खेल की व्यवस्था बुनियादी शाला में भी होनी चाहिए। आधुनिक खेल—फुटबाल, वालीबाल आदि खेलों का प्रयोग भी होता रहना चाहिए। क्योंकि आधुनिकतम सभ्यता के लिए इनकी भी अत्यन्त आवश्यकता है। नवीन प्रकार के खेलों के समावेश से खेलों की दृष्टि से बुनियादी शिक्षा पर लगाए गये पिछड़ेपन के कलंक को भी मिटाया जा सकता है।

सारांश

शारीरिक शिक्षा का स्थान व क्षेत्र—बौद्धिक विकास का उपयोग तभी हो सकता है जब शरीर स्वस्थ हो। इस दृष्टि से शारीरिक शिक्षा को शिक्षा में महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है।

शारीरिक शिक्षा के उद्देश्य—शारीरिक शिक्षा से बालक का अंग सुडौल होता है। उसमें फुर्ती आती है। आसन (पॉश्चर) में सुधार होता है। अधिक योग्यता से काम करने की शक्ति आती है। उसे अच्छे कुटुम्बी बनने और योग्य नागरिक बनने के गुणों के विकास का अवसर मिलता है।

शारीरिक शिक्षा के अंग—शरीर का विकास और मनोरंजन दो महत्व-पूर्ण बिन्दु शारीरिक शिक्षा में आते हैं। किसी प्रवृत्ति में प्रथम प्रमुख रहता है और दूसरा गौण, और किसी में प्रथम गौण रहता है और दूसरा प्रमुख। इसी आधार पर प्रथम प्रकार की प्रवृत्तियाँ व्यायाम और दूसरे प्रकार की प्रवृत्तियाँ खेल कही जाती हैं।

(क) व्यायाम—व्यायाम के अन्तर्गत मुख्यतः दो प्रकार की प्रवृत्तियाँ आती हैं। प्रथम प्रकार की प्रवृत्तियाँ प्राकृतिक प्रवृत्तियाँ और दूसरे प्रकार की प्रवृत्तियाँ शरीर को सुदृढ़ बनाने वाली प्रवृत्तियाँ कही जाती हैं।

(१) प्राकृतिक प्रवृत्तियाँ चलने, दौड़ने, भागने आदि क्रियाओं से सम्बन्धित हैं।

(२) शरीर को सुदृढ़ करने वाली प्रवृत्तियाँ शरीर के विभिन्न अंगों को गति-शील बनाने से सम्बन्धित हैं। इन प्रवृत्तियों में उन अंगों का समावेश किया जाता है जो प्राकृतिक तरीके से पर्याप्त रूप में गतिशील नहीं हो पावें। इन प्रवृत्तियों में टाँग, गर्दन, कमर, भुजा आदि अंगों से सम्बन्धित अभ्यासों का समावेश होता है।

(ख) खेल—खेल मनोरंजन पद्धति से बालक का शरीर विकास करता है।

खेल के सिद्धान्त :—

(१) अतिरिक्त ऊर्जा का सिद्धान्त—प्रकृति द्वारा प्राप्त शक्ति को कार्य में व्यय करने के पश्चात् शेष शक्ति का प्रदर्शन खेल द्वारा किया जाता है।

(२) पुनः प्राप्ति का सिद्धान्त—कार्यों में व्यय की गई शक्ति को, खेलों द्वारा प्राप्त किया जाता है।

(३) भावी जीवन का पूर्वाभिनय सिद्धांत—बालक खेलों द्वारा भावी जीवन के कार्यों का पूर्वाभिनय करता है।

(४) पुनरावर्तन का सिद्धान्त—आदिकाल से मानव विकास का बालक खेलों में प्रदर्शन करता है।

(५) परिष्कृति का सिद्धान्त—पूर्वजों की जंगली प्रवृत्तियों का खेल द्वारा बालक परिष्कार करता है।

(६) शुद्धिकरण का सिद्धान्त—कई प्रवृत्तियों के विकास का सुअवसर न मिलने के कारण उनका प्रदर्शन खेलों में किया जाता है।

(७) अनुकरण का सिद्धान्त—खेल अनुकरण प्रवृत्ति का क्रियाशील रूप है।

इन सभी सिद्धान्तों के लिए सर परसीनन का मत है कि ये सिद्धान्त एक दूसरे के विरोधी नहीं वरन् एक दूसरे के पूरक हैं।

खेलों के प्रकार—(१) परीक्षात्मक खेल, (२) धावन खेल, (३) रचनात्मक खेल, (४) लड़ाई के खेल, (५) मानसिक खेल।

खेलों का शिक्षा में उपयोग—डाल्टन प्लान, प्रोजेक्ट पद्धति, किंडर गार्टन पद्धति, मांटेसरी पद्धति आदि सभी खेलों द्वारा शिक्षा प्रदान करती है।

शाला में खेलों का प्रबन्ध :—

(१) विभिन्न कक्षाओं के खेलों का समय-विभाग-चक्र बनाया जाना चाहिए।
(२) खेल-कार्य अध्यापक के निरीक्षण में होना चाहिए।
(३) प्रत्येक खेल का कक्षा में चुना हुआ कप्तान होना चाहिए।
(४) बालकों की आयु के अनुसार खेल निश्चित किए जाने चाहिएं।
(५) खेल सामूहिक होने चाहिएं।
(६) खेलों में पूर्ण स्वतन्त्रता होनी चाहिए।
(७) अध्यापकों को भी छात्रों के साथ खेलना चाहिए।
(८) नियमों का पालन करना चाहिए।
(९) खेलों में प्रतियोगिताएँ होनी चाहिएं।
(१०) राष्ट्रीय पर्व आदि आयोजनों पर विशेष कार्यक्रम होने चाहिएं।

बुनियादी शाला में खेल व्यवस्था—श्री विनोबा जी की विचारधारा है कि प्रतिदिन कम से कम ३ घण्टे उद्योग-कार्य तथा नित्य कर्म करने के पश्चात् बालक को खेल, व्यायाम आदि की आवश्यकता नहीं रहती तथा बुनियादी शाला में आवश्यकता हो तो खेलों में थोड़ा समय दिया जाना चाहिए। वस्तुतः उद्योग-कार्य प्रणाली ही ऐसी होनी चाहिए जो खेल के सभी गुणों का समावेश अपने में कर ले। उद्योग कार्य को छात्र खेल के ही रूप में समझ कर कार्य करें।

अभ्यासार्थ प्रश्न

(१) बुनियादी शाला में शारीरिक शिक्षा का महत्त्व स्पष्ट कीजिए। यह भी बताइये कि यहाँ शारीरिक शिक्षा का क्या उद्देश्य है?
(२) व्यायाम और खेल में अन्तर स्पष्ट करते हुए यह बताइये कि ये दोनों एक दूसरे के किस प्रकार पूरक हैं?
(३) बुनियादी शाला में शारीरिक शिक्षण की व्यवस्था आप किस प्रकार करेंगे? इस विषय पर एक लेख लिखिए जो छः पृष्ठों से कम न हो।
(४) खेल जीवन में किन किन गुणों का समावेश करते हैं? विस्तार से लिखिए।

अंग्रेजी शिक्षण पद्धति

प्रस्तावना—भारत की स्वतन्त्रता के बाद ही यह विचार बल पकड़ता च गया कि हमारे देश की राज्यभाषा का स्थान हिन्दी ग्रहण करे। इसी दृष्टिकोण आधार पर यह महसूस किया जाता रहा है कि उच्च शिक्षा का माध्यम भी अंग्रे की बजाय हिन्दी बने। फिर भी लोग अंग्रेजी के विशिष्ट महत्व को स्वीकार क हैं। वे यह नहीं चाहते कि भारत में अंग्रेजी का स्तर गिरे। यह भावना व्यक्त क हुए यह कहा जाता है कि अंग्रेजी संसार की एक ऐसी महत्वपूर्ण भाषा है कि जिस अध्ययन में शिथिलता देश के लिए अहितकारी हो सकती है। इस सम्पूर्ण कथन बावजूद भी यह तो सत्य है कि भारत की स्वतन्त्रता के पश्चात् अंग्रेजी भाषा भारत वह स्थान ग्रहण किये हुए नहीं रह सकती, जो स्थान इसने भारत की स्वतन्त्रता के पू ग्रहण कर रखा था। भारत की स्वतन्त्रता के पूर्व यह भाषा शिक्षा का माध्यम थी राष्ट्रीय स्तर पर विचारों के आदान-प्रदान के लिए काम में आती थी। देश के सरकारी भाषा के रूप में और अन्तर्राष्ट्रीय विचार-विनिमय में भी इसका प्रयोग होता था। परन्तु आज अंग्रेजी की स्थिति दूसरी है। पहले की तरह अब वह शिक्षा का माध्यम नहीं रह सकती। राष्ट्रीय स्तर पर विचारों के आदान-प्रदान का माध्यम भी वह नहीं रह सकती। देश की सरकारी भाषा हिन्दी बन ही चुकी है। ऐसी दशा में अंग्रेजी भाषा का अब क्या महत्व रह गया है, जिससे कि इसको पढ़ाया जाना चालू रहे, यह प्रश्न पैदा होता है। इस दृष्टि से हमारे देश के प्रतिभाशाली विशेषज्ञों द्वारा व्यक्त मतानुसार निम्न बिन्दु महत्वपूर्ण हैं :—

(१) विज्ञान, तकनीकी और कृषि की उच्च शिक्षा देना अंग्रेजी के माध्यम के बिना अत्यन्त कठिन है।

(२) यह भाषा संसार के अन्य महत्वपूर्ण देशों में पढ़ाई जाती है, और संसार की एक महत्वपूर्ण भाषा है। अतः यह भारत में भी पढ़ाई जावे।

(३) हमारे देश की एकता का माध्यम अब तक अंग्रेजी रही है। हिन्दी के इसी स्तर पर आने के पूर्व ही अंग्रेजी को हटा देना एक खतरे को मोल लेना है।

(४) इसमें कोई सन्देह नहीं कि हमारे देश में अन्ततोगत्वा हिन्दी ही अंग्रेजी का स्थान लेगी, परन्तु यह परिवर्तन यकायक सम्भव नहीं।

हमारे देश में अंग्रेजी का स्थान—इस दृष्टि से प्रश्न पैदा होता है, कि अंग्रेजी भाषा को हमारे देश में किस स्थान पर स्वीकार किया जावे। यह स्पष्ट है कि मातृभाषा हमारी शालाओं के पाठ्यक्रम में प्रथम भाषा का स्थान रखती है, हिन्दी राष्ट्र-भाषा के रूप में अनिवार्य द्वितीय भाषा के स्थान को ग्रहण किए हुये है, और अंग्रेजी का भारत के विद्यालयों एवं महाविद्यालयों में अब तृतीय स्थान है।

प्रान्तीय सरकारें एवं केन्द्रीय सरकार इस बात की सावधानी बरत रही है, कि अंग्रेजी का स्तर गिरने न पावे। यह भाषा साधारणतः कक्षा छः से पढाई जाती है, और कहीं कहीं तो कक्षा पाँच में ही अंग्रेजी का शिक्षण शुरू कर दिया जाता है। यही कारण है कि 'अंग्रेजी भाषा की शिक्षण पद्धति' भी शिक्षण-प्रशिक्षण-विद्यालयों एवं महाविद्यालयों के पाठ्यक्रम में महत्त्वपूर्ण स्थान ग्रहण किए हुए है।

अंग्रेजी भाषा की शिक्षण पद्धति—यद्यपि अंग्रेजी एक विदेशी भाषा है तथापि हिन्दी की तरह यह भी एक भाषा ही है। इस दृष्टि से 'भाषा शिक्षण पद्धति' नामक पाठ के अन्तर्गत पर्याप्त विस्तार के साथ चर्चा की जा चुकी है, जिसको यहाँ दुहराना किसी भी दशा में उपयुक्त नहीं जान पड़ता। इसी कारण यहाँ पर अंग्रेजी की शिक्षा के अवसर पर प्रयोग में की जाने वाली कुछेक विशिष्ट पद्धतियों का ही विस्तार से ब्योरा दिया जा रहा है।

भाषान्तर प्रणाली (ट्रांसलेशन मेथड)—इस पद्धति में अनुवाद और व्याकरण महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। इसी कारण इस पद्धति को 'अनुवाद-व्याकरण-पद्धति' भी कहा जाता है। जैसे कि इसके नाम से ही स्पष्ट है—अंग्रेजी के प्रत्येक शब्द या शब्द-समुदाय का मातृभाषा में अर्थ या अनुवाद करना इस प्रणाली का प्रथम अंग होता है। इसके पश्चात् प्रत्येक वाक्य के मातृभाषा में अनुवाद की बारी आती है। बालक जब अंग्रेजी पढ़ना शुरू करता है, तो अंग्रेजी के वाक्य या अनुच्छेद को अंग्रेजी में पढ़ता है और फिर उसका मातृभाषा में अनुवाद करता जाता है। इस तरीके से मोटे रूप में यह लाभ है कि बालक विदेशी विचारों को पूर्ण रूपेण समझता जाता है एवं विदेशी भाषा के वाक्यों के ढाँचे की मातृभाषा के वाक्यों के ढाँचे के साथ तुलना का भी अवसर पाता रहता है।

इस पद्धति में सबसे बड़ी कमी यह है कि बालक को इस भाषा के पढ़ने के अलावा, इस भाषा में बातचीत करने का अवसर नहीं मिल पाता। अब यह भी महसूस किया जाने लगा है कि एक देश की सांस्कृतिक भिन्नता के अनुसार उस देश के तौर-तरीके और वातावरण भी दूसरे से अलग तरह के होना स्वाभाविक है। अतः जब अनुवाद पद्धति चलाई जाती है तो यह स्वाभाविक है कि विदेशी भाषा में निहित भाव, विचार, अनुभव एवं रीति-रिवाजों को ठीक वैसा का वैसा मातृभाषा में नहीं उतारा जा सके, क्योंकि एक विदेशी भाषा के शब्दों, अनुच्छेदों एवं वाक्यों के पूर्णतः समान शब्द मातृभाषा में भी मिल जावें यह जरूरी नहीं है।

इसके अतिरिक्त दो भाषाओं में वाक्यों के ढाँचे में भिन्नता होती है। एक वाक्य को एक बार विदेशी भाषा में पढ़ने और फिर मातृभाषा में अनुवाद करने से विदेशी भाषा के धारा प्रवाह पढ़ने में अवरोध पैदा होता है। बालकों को हर बात रटनी पड़ती है और स्मरण-शक्ति पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

वैसे भाषा की शिक्षा के उद्देश्यों के अन्तर्गत यह स्वीकार किया जाता है कि बालक को उस भाषा का बोलना और लिखना-पढ़ना तो आवे ही, परन्तु वह उस भाषा में सोचने-विचारने में भी दक्ष हो। अनुवाद-पद्धति बालक को अंग्रेजी भाषा

बोलने और उसी भाषा में सोचने-विचारने का अवसर नहीं देती है। इसी कारण यह प्रणाली और अपूर्ण मानी जाती है।

प्रत्यक्ष प्रणाली (डाइरेक्ट मेथड)—जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, यह प्रणाली नई भाषा को मातृभाषा के माध्यम के द्वारा सिखाने के पक्ष में होने की बजाय, उसकी विरोधी है। मातृभाषा के माध्यम से रहित होने के ही कारण इसे "निर्माध्यम प्रणाली" भी कहते हैं। बालक जिस प्रकार से प्रत्यक्ष अनुभवों द्वारा अपनी मातृभाषा पर अधिकार प्राप्त करता है, वैसे ही अनुभव बालक को इस प्रणाली के अन्तर्गत कक्षा में, शाला-वातावरण में या शिक्षक की मदद से समाज में देने की सुनिश्चित योजना बनाई जाती है, और फिर उसे कार्यान्वित करते हैं। चुने हुए शब्द जिस वस्तु या कार्य को जाहिर करते हैं उसका बालकों के सामने प्रदर्शन किया जाता है। अगर वह वस्तु बालकों के सामने प्रदर्शित न हो सके तो चित्र का उपयोग होता है, परन्तु मातृभाषा का उपयोग इस प्रणाली के द्वारा पढ़ाये जाने वाले पाठ में पूर्णतः वर्जित रहता है अतः मातृभाषा में अनुवाद करने की स्थिति कभी पैदा ही नहीं होती। जरूरत के अनुसार व्याकरण का प्रयोग अवश्य होता है परन्तु व्याकरण से परिभाषाओं आदि को महत्व न देकर, केवल यही समझाया जाता है कि विभिन्न प्रकार के शब्द विभिन्न परिस्थितियों में, किस प्रकार से उपयोग में लाये जाकर, अलग-अलग कार्य करते हैं।

संक्षेप में इस प्रणाली की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं :—

(१) अनुवाद की बजाय सीधे अंग्रेजी में ही पढ़ाने के कारण शब्दों तथा अनुभवों का वस्तु या कार्य से सीधा सम्बन्ध स्थापित होता है।

(२) बालकों को नई भाषा में बार-बार बोलने का अवसर मिलता है अतः धारा-प्रवाह बोलने का प्रशिक्षण मिलता रहता है।

(३) लगातार बोलने का अवसर मिलने से उसी भाषा में विचार करने का प्रशिक्षण भी मिलता जाता है।

(४) अध्यापक द्वारा नई भाषा में प्रश्न पूछने और बालकों द्वारा उसी भाषा में उत्तर देते हुए पढ़ाने का क्रम चालू रहता है। लगातार प्रश्न और उनके उत्तर का क्रम साधारणतः सम्पूर्ण घण्टी (Period) बना रहता है। इससे बालकों को नई भाषा के शब्दों और वाक्यों के ढाँचे को समझने और उनको प्रयोग में लाने का अवसर मिलता है। बातचीत के इस क्रम के पश्चात् ही विदेशी भाषा को पढ़ने और लिखने की बारी आती है।

(५) शुद्ध उच्चारण की दृष्टि से बालकों को पर्याप्त मार्ग-दर्शन प्राप्त होता है।

उपरोक्त विशेषताओं के आधार पर यह तो स्पष्ट है कि यह पद्धति 'अनुवाद पद्धति' की तुलना में श्रेष्ठ है, परन्तु इसमें भी कुछेक कमियाँ हैं। इस दृष्टि से प्रमुख बिन्दु निम्नलिखित हैं :—

(१) मौखिक पाठ में अधिक समय लग जाने के कारण पढ़ने और लिखने

पर पर्याप्त बल नहीं दिया जा पाता है। अतः भाषा का यह पक्ष कमजोर रह जाता है।

(२) इस पद्धति से पढ़ाये जाने की सुविधाओं की दृष्टि से हमारे स्कूल पर्याप्त साधन-सम्पन्न नहीं है।

(३) यद्यपि प्रतिभाशाली छात्रों को इस प्रणाली में अच्छा लाभ पहुँचता है परन्तु पिछड़े छात्रों को पूरा लाभ नहीं पहुँच पाता है।

(४) हमारे देश में अधिकांश अध्यापक ऐसे हैं जिन्हें अंग्रेजी पर उतना अधिकार नहीं है, जितना कि इस प्रणाली को अपनाने वाले अध्यापकों को होना चाहिए। उपरोक्त कारणों से हमारे देश में 'प्रत्यक्ष प्रणाली' भी अंग्रेजी भाषा के शिक्षण में अधिक सफल नहीं हो सकी।

वाक्य प्रणाली (स्ट्रक्चरल मेथड)—जब शब्दों को याद करने और उनके अर्थों को मातृभाषा में समझ लेने का तरीका असफल रहा और प्रोफेसर के० जी० फ्रेंच के शब्दों में यह स्वीकार किया जाने लगा—"एक शब्द-कोष भाषा नहीं है", जब नवीनतम शोध के आधार पर यह भी स्वीकार किया जाने लगा कि भाषा की शिक्षा का तरीका ऐसा हो कि जिसमें बालक के बोलने के साथ-साथ वाक्य स्वतः स्वाभाविक रूप से ही उसके मुँह से निकलने लगें, तो शब्दों के उपयुक्त जमाव को महत्व देने की शुरुआत हुई। तभी यह भी स्वीकार किया जाने लगा कि अंग्रेजी भाषा के शिक्षण में शब्दों को क्रम से जमाना सिखाना ही महत्वपूर्ण है और 'वाक्य प्रणाली' के युग का श्रीगणेश हुआ।

वाक्य प्रणाली को महाशय एल० ए० हिल इन शब्दों में स्पष्ट करते हैं— "वाक्य प्रणाली में एक निश्चित समय पर, छात्र जिन शब्दों को जानते हैं उनका क्रमवार विभाजन या उनके (शब्दों के) आधार पर वाक्यों के निर्माण के बजाय, वाक्यों का चुनाव और उनका क्रमवार विभाजन होता है।" इस आधार पर वाक्य प्रणाली के प्रमुख बिन्दु निम्नलिखित हैं :—

(१) भाषा के शिक्षण में शब्दों को याद कराने की बजाय वाक्यों की बनावट या ढाँचा समझाना अधिक महत्वपूर्ण है।

(२) प्रत्येक ढाँचा या क्रम जब बालक हृदयगम करले तभी नया ढाँचा और शब्द शुरू किया जावे।

(३) नई भाषा के बोलने को अधिक बल देने की दृष्टि से यह प्रणाली विशेष प्रकार से महत्वपूर्ण है।

(४) शिक्षण के क्रम में एक वाक्य, एक इकाई का स्थान ग्रहण करता है।

(५) व्याकरण का शिक्षण औपचारिक रूप से न होकर आवश्यकतानुसार केवल अनौपचारिक रूप से ही चलाया जाता है।

(६) इस प्रणाली में छात्रों की चंचलता लगातार बनी रहती है।

भारतीय स्थितियाँ और वाक्य प्रणाली—वाक्य प्रणाली का हमारे देश के कुछेक प्रान्तों में बड़ी सफलता के साथ प्रयोग किया जा चुका है। परन्तु इसको

शुरू करने में कुछेक कठिनाइयाँ भी हैं, जिनको दृष्टि में रखकर इस काम को आगे बढ़ाया जाना ही हितकर होगा :—

(१) शिक्षकों का प्रशिक्षित होना जरूरी है।

(२) पाठ्य-पुस्तकें इस प्रणाली के अनुकूल होने पर ही यह प्रणाली सफल हो सकती है।

(३) एक प्रकार के वाक्य को बार-बार दुहराने के कारण छात्रों में रुचि का अभाव पैदा होने का भी खतरा रहता है।

उपसंहार—इसमें कोई सन्देह नहीं कि वाक्य प्रणाली, अंग्रेजी भाषा के शिक्षण की एक ऐसी प्रणाली है जिसमें नई भाषा के शिक्षण को प्राकृतिक तरीके से चलाने का प्रयत्न निहित है। इसके साथ-साथ इससे बालक को तत्काल लाभ भी होता है। अतः बालक अधिकाधिक उत्साह से कार्यरत रहता है, और सफलता प्राप्त करता है।

सारांश

प्रस्तावना—भारत की स्वतन्त्रता के पश्चात् भी विज्ञान, तकनीकी और कृषि की शिक्षा में अंग्रेजी के बिना काम चल पाना कठिन है। यह संसार की एक महत्त्वपूर्ण भाषा है और हमारे देश में अनेकों भाषाओं के होने के कारण यह भाषा अब भी एकता का प्रमुख माध्यम बनी हुई है।

हमारे देश में अंग्रेजी का स्थान- हमारे यहां मातृभाषा प्रथम भाषा, राष्ट्रभाषा द्वितीय भाषा और अंग्रेजी तृतीय भाषा का स्थान ग्रहण किये हुए है।

अंग्रेजी भाषा की शिक्षण पद्धति—अंग्रेजी भी एक भाषा होने के कारण इसके शिक्षण का तरीका हिन्दी से मेल खाता है, फिर भी कुछेक ऐसी प्रणालियां हैं, जिनका अंग्रेजी शिक्षण की दृष्टि से भारी महत्त्व है।

•भाषान्तर प्रणाली—प्रत्येक शब्द, शब्द समुदाय या वाक्य का मातृभाषा में अर्थ या अनुवाद करना इस प्रणाली का महत्वपूर्ण अंग है।

प्रत्यक्ष प्रणाली—बालक को प्रत्यक्ष अनुभवों के द्वारा अंग्रेजी भाषा का ज्ञान दिया जाता है। मातृभाषा की इस काम में मदद नहीं ली जाती है।

वाक्य प्रणाली—शब्दों पर बल देने की बजाय, वाक्य पर एवं उसके ढांचे पर बल देना ही इस प्रणाली का आधार है। वाक्यों के उपयुक्त चुनाव और उनके क्रमवार विभाजन पर ही इस प्रणाली की सफलता निर्भर करती है।

उपसंहार—अंग्रेजी भाषा के शिक्षण में वाक्य प्रणाली नवीनतम प्रणाली है, जिसके प्रयोग हमारे देश में अनेक स्थानों पर हो रहे हैं, और ऐसी आशा की जाती है कि यह प्रणाली अंग्रेजी की शिक्षा की दृष्टि से सर्वाधिक सफल होगी।

अभ्यासार्थ प्रश्न

(१) स्वतन्त्र भारत में अंग्रेजी भाषा के महत्व पर विस्तार से चर्चा कीजिए।

(२) अंग्रेजी भाषा को पढ़ाने की प्रणालियों का संक्षेप में ब्यौरा देते हुए, किसी एक प्रणाली पर, जिसे आप सर्वोत्तम समझते हैं, विस्तार से चर्चा कीजिये।